JOTI JOURNAL

Silver Jubilee Edition (BI-MONTHLY)

JUNE 2019

Silver Jubilee Year 1994-2019

MADHYA PRADESH STATE JUDICIAL ACADEMY

HIGH COURT OF MADHYA PRADESH, JABALPUR - 482 007

TRAINING COMMITTEE
MADHYA PRADESH STATE JUDICIAL ACADEMY

1.	Hon'ble Shri Justice S.K. Seth	Chief Justice & Patron
2.	Hon'ble Shri Justice R.S. Jha	Judge Incharge, Judicial Education
3.	Hon'ble Shri Justice Rohit Arya	Member
4.	Hon'ble Shri Justice Atul Sreedharan	Member
5.	Hon'ble Shri Justice Rajeev Kumar Dubey	Member
6.	Hon'ble Shri Justice Subodh Abhyankar	Member

•

FOUNDER OF THE INSTITUTE AND JOTI JOURNAL

Hon'ble Shri Justice U.L. Bhat

Former Chief Justice,
High Court of M.P., Jabalpur

•

ASSOCIATE EDITOR
Sudeep Kumar Shrivastava
Additional Director

EDITOR
Pradeep Kumar Vyas
Director

JOTI JOURNAL JUNE - 2019

SUBJECT- INDEX

संपादकीय 111

PART-I

(ARTICLES & MISC.)

1. Photographs 113
2. Hon'ble Shri Justice Huluvadi G. Ramesh demits office 118
3. इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख: विधि एवं प्रक्रिया - साक्ष्य में ग्राह्यता, साक्ष्य लेखबद्ध किया जाना, प्रमाण, साक्ष्यिक मूल्य एवं प्रकीर्ण विषय 119

PART-II

(NOTES ON IMPORTANT JUDGMENTS)

ACT/ TOPIC	NOTE NO.	PAGE NO.

ACCOMMODATION CONTROL ACT, 1961 (M.P.)

स्थान नियंत्रण अधिनियम, 1961 (म.प्र.)

Sections 12 (1)(a), 12 (1)(f), 12 (2), 13 and 23J – (i) Composite suit for eviction by special category of landlord including ground of bonafide requirement and also other grounds specified in the Act is maintainable in Civil Court.
(ii) Where notice sent by counsel directed that arrears of rent should be paid to his client, tenant is required to tender rent to landlord and refusal by counsel to accept rent is valid.
(iii) Plaintiff is entitled to decree of eviction in default in deposit of rent during pendency of proceedings.

धाराएं 12 (1)(क), 12 (1)(च), 12 (2), 13 एवं 23´ - (i) विशेष श्रेणी के भवन स्वामी द्वारा सद्भाविक आवश्यकता के आधार सहित तथा अधिनियम में वर्णित अन्य आधारों पर भी निष्कासन के लिए सम्मिश्रित वाद सिविल न्यायालय में प्रचलनीय है।
(ii) जहां अभिभाषक द्वारा प्रेषित सूचना पत्र में यह निर्देश दिया जाता है कि अवशेष किराए का भुगतान उसके पक्षकार को किया जाना चाहिए, वहां किरायेदार को किराए का भुगतान भवन स्वामी को करना चाहिए तथा अभिभाषक द्वारा ऐसा निविदत्त किराया स्वीकार न करना उचित है।
(iii) वाद लंबन के दौरान किराया अदायगी में व्यतिक्रम, वादी को निष्कासन की आज्ञप्ति का अधिकारी बनाता है।

101 179

Sections 12 (1)(c) and 12 (1)(f) – (i) Tenant is estopped from raising plea regarding title and liable to be evicted under Section 12(1)(c) where relationship of landlord and tenant is admitted in various documents and duly proved by landlord.

(ii) Age of landlord is not a bar to seek relief of eviction under Section 12(1)(f).

(iii) Assessment of *bonafide* requirement should be on the basis of subjective satisfaction of the landlord – Once *bonafide* need is established, the suitability of accommodation cannot be interfered by Court.

(iv) *Bonafide* requirement on the ground of expansion of business cannot be inferred only through statistics and a person with reduced sale over the years can undertake expansion.

धाराएं 12 (1)(ग) एवं 12 (1)(च) - (i) किरायेदार स्वत्व को चुनौती देने से विबंधित है तथा धारा 12 (1)(सी) के अधीन निष्कासन के लिए उत्तरदायी है जब भवन स्वामी और किरायेदार के संबंध विभिन्न दस्तावेजों में स्वीकार किए गए और भवन स्वामी द्वारा विधिवत प्रमाणित किए गए।

(ii) भू-स्वामी की आयु धारा 12(1)(च) के अधीन निष्कासन का अनुतोष मांगने के लिए बाधा नहीं है।

(iii) सद्भाविक आवश्यकता का मूल्यांकन भवन स्वामी की व्यक्तिपरक संतुष्टि के आधार पर किया जाना चाहिए - एक बार यदि सद्भाविक आवश्यकता स्थापित हो जाती है, तो स्थान की उपयुक्तता पर न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

(iv) व्यवसाय के विस्तार के आधार पर सद्भाविक आवश्यकता को केवल आंकड़ों के आधार पर आंकलित नहीं किया जा सकता है तथा कई वर्षों से कम बिक्री वाला व्यक्ति अपने व्यवसाय का विस्तार कर सकता है।

102 181

Section 12 (1)(f) – See Order 6 Rule 17 of the Civil Procedure Code, 1908.

धारा 12 (1)(च) - देखें सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 6 नियम 17।

109* 190

ARBITRATION AND CONCILIATION ACT, 1996

माध्यस्थम् एवं सुलह अधिनियम, 1996

Sections 7 and 11 – (i) While interpreting arbitration agreement, it must be construed strictly.

(ii) When arbitration clause specifically excludes any dispute where the insurance company had denied the liability, such a dispute is not referable to arbitration and the only remedy is to institute a civil suit.

धाराएं 7 एवं 11 - (i) मध्यस्थता अनुबंध की व्याख्या करते समय, उसका निर्वचन कठोर अर्थ में किया जाना चाहिए।

(ii) जब मध्यस्थता खंड विशेष रूप से उन विवादों को अपवर्जित करता था जहां बीमा कंपनी ने दायित्व से इंकार किया था, ऐसा विवाद मध्यस्थता के लिए संदर्भित योग्य नहीं है तथा एक मात्र अनुतोष सिविल वाद संस्थित करना है। **103** **183**

CIVIL PROCEDURE CODE, 1908

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908

Sections 21 and 47 – Objection as to the territorial jurisdiction and pecuniary jurisdiction cannot be allowed by the Executing Court.

धाराएं 21 एवं 47 - निष्पादन न्यायालय द्वारा क्षेत्रीय अधिकारिता और आर्थिक अधिकारिता के संबंध में आपत्ति अनुज्ञात नहीं की जा सकती है। **104*** **185**

Section 144 – Application for restitution under Section 144 lies where a decree or an order is varied or reversed in appeal, revision or any other proceeding or is set aside or modified in any suit instituted for the purpose.

धारा 144 - धारा 144 के तहत प्रत्यास्थापन के लिये आवेदन तब प्रस्तुत हो सकता है जब किसी डिक्री या आदेश को अपील, पुनरीक्षण या अन्य कार्यवाही में बदला या अपास्त किया जाए अथवा इस प्रयोजन के लिए संस्थित किसी वाद में अपास्त किया जाए या उपान्तरित किया जाए।

105 **186**

Order 6 Rule 17 – Amendment of plaint cannot be allowed after commencement of trial unless Court is satisfied that inspite of due diligence, party could not have raised the matter before the comencement of trial and amendment may be refused if it introduces a totally different, new and inconsistent case, or challenges the fundamental character of the suit or is malafide or causes prejudice to other side which cannot be compensated adequately in terms of money.

आदेश 6 नियम 17 - वादपत्र में संशोधन विचारण प्रारंभ होने के पश्चात् अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है जब तक कि न्यायालय का यह समाधान नहीं हो जाता कि सम्यक् सतर्कता के उपरांत भी पक्षकार विचारण प्रारंभ होने के पूर्व विषय को नहीं उठा सका था तथा ऐसा संशोधन तब अस्वीकार किया जा सकता है यदि वह सर्वथा नवीन और असंगत मामला प्रस्तुत करता हो या वाद के मूलभूत स्वरूप को ही चुनौती देता हो या विद्वेषपूर्ण हो या दूसरे पक्ष को ऐसी हानि कारित करता हो जिसकी धन के रूप में युक्तियुक्त क्षतिपूर्ति नहीं हो सकती हो। **106** **187**

Order 6 Rule 17 – When amendment application was already pending, evidence was also led on proposed pleadings and plaintiff also giving undertaking that no new evidence shall be led by him, amendment application can be allowed even after trial had concluded and suit was fixed for final arguments.

आदेश 6 नियम 17 - जब संशोधन आवेदन पहले से ही लंबित था, प्रस्तावित अभिवचनों पर भी साक्ष्य प्रस्तुत की गई थी तथा वादी ने यह वचन भी दिया कि वह अपने पक्ष में कोई भी नवीन

साक्ष्य प्रस्तुत नहीं करेगा, तब संशोधन आवेदन स्वीकार किया जा सकता है यद्यपि विचारण समाप्त हो चुका हो तथा दावा अंतिम तर्क के लिए नियत कर दिया गया हो।

107* **189**

Order 6 Rule 17 – (i) Amendment of written statement stands on a different footing than amendment of plaint and Courts should be more liberal while allowing amendments of a written statement.

(ii) Application for amendment should not have been rejected for want of affidavit and trial Court should have given an opportunity to file such an affidavit.

आदेश 6 नियम 17 - (i) लिखित कथन का संशोधन, वादपत्र के संशोधन की तुलना में एक पृथक पायदान पर होता है तथा लिखित कथन के संशोधन की अनुमति देते समय न्यायालयों को अधिक उदार होना चाहिए।

(ii) संशोधन हेतु आवेदन शपथपत्र के अभाव में खारिज नहीं किया जाना चाहिए था तथा विचारण न्यायालय को ऐसा शपथपत्र प्रस्तुत करने का अवसर देना चाहिए था। **108*** **189**

Order 6 Rule 17 – In eviction suit, amendment for change of beneficiary from unmarried daughter to unemployed son, for whose *bonafide* requirement the eviction is sought, would not change the nature of suit.

आदेश 6 नियम 17 - निष्कासन के वाद में, लाभार्थी जिसकी सद्भाविक आवश्यकता के लिए निष्कासन मांगा गया था, का अविवाहित पुत्री से बेरोजगार पुत्र में परिवर्तन, वाद की प्रकृति को नहीं बदलता।

109* **190**

Order 9 Rule 9 – While considering application for restoration of suit dismissed in default, it has to be determined whether party to the suit honestly and sincerely intended to remain present before the Court when it was called on and did its best to do so.

आदेश 9 नियम 9 - व्यतिक्रम में खारिज वाद के पुनस्थापन के आवेदन पर विचार करते समय यह निर्धारित किया जाना चाहिए कि क्या वाद का पक्षकार निष्ठापूर्वक एवं ईमानदारी से न्यायालय के समक्ष उपस्थित रहना चाहता था जब उसे पुकारा गया था और ऐसा करने के लिए उसने वह सर्वोत्तम किया था जो वह कर सकता था। **110** **190**

Order 21 Rule 10 and Order 41 Rule 5 – (i) Ordinarily, execution proceedings of money decree shall not be stayed unless there are special circumstances.

(ii) Appellate Court can stay execution procedings after complying with provisions of Order 41 Rule 5 sub-Rule (3) CPC – Order of appellate Court staying execution without directing judgment debtor to furnish security or deposit amount, held to be not good.

आदेश 21 नियम 10 एवं आदेश 41 नियम 5 - (i) सामान्यतया, धन की आज्ञप्ति की निष्पादन कार्यवाहियां स्थगित नहीं करना चाहिए जब तक कि विशेष परिस्थितियां न हों।

(ii) अपीलीय न्यायालय आदेश 41 नियम 5 उप-नियम (3) सि.प्र.सं. के प्रावधानों का पालन करने के बाद आज्ञप्ति का निष्पादन स्थगित कर सकता है - अपीलीय न्यायालय द्वारा निर्णीत ऋणी

को प्रतिभूति प्रस्तुत करने अथवा राशि अदा करने का आदेश दिए बिना ही आज्ञप्ति का निष्पादन स्थगित करने का आदेश सही न होना अवधारित किया गया। **111** **192**

Order 21 Rules 97, 100 and 102 – (i) Order 21 Rule 102 prohibits a transferee *pendente lite* from resisting the execution of a decree.
(ii) When decree-holder complains of resistance of execution, executing Court should decide whether the question raised by objector or resistor legally arises between the parties and can also decide whether the objector or resistor is bound by the decree and refuses to obey it – This determination need not always require recording of evidence and Court can decide it on the basis admissions.

आदेश 21 नियम 97, 101 एवं 102 - (i) आदेश 21 नियम 102 वादकालीन अंतरिती को आज्ञप्ति के निष्पादन का विरोध करने से प्रतिबंधित करता है।

(ii) जब आज्ञप्तिधारक निष्पादन के प्रतिरोध की शिकायत करता है, तो निष्पादन न्यायालय को यह तय करना चाहिए कि क्या आपत्तिकर्ता या प्रतिरोधक द्वारा उठाये गये प्रश्न पक्षकारों के मध्य विधिक रूप से उत्पन्न होते हैं तथा निष्पादन न्यायालय यह भी तय कर सकता है कि क्या आपत्ति करने वाला या प्रतिरोध करने वाला व्यक्ति आज्ञप्ति से बाध्य है और इसे मानने से इंकार कर रहा है - इस निर्धारण के लिए सदैव साक्ष्य अभिलिखित करने की आवश्यकता नहीं होती है और न्यायालय इसे स्वीकारोक्तियों के आधार पर निर्धारित कर सकता है। **112** **194**

CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973

Section 31 – When Magistrate convicts and sentences an accused for two offences in a trial and imposes two sentences for each offence, it is necessary for him to specify that the sentences would run concurrently or consequently.

धारा 31 - जब मजिस्ट्रेट किसी विचारण में एक अभियुक्त को दो अपराधों के लिए दोषसिद्ध और दण्डादिष्ट करता है और प्रत्येक अपराध के लिए दो दण्ड अधिरोपित करता है, वहां यह आवश्यक है कि वह यह विनिर्दिष्ट करे कि दण्ड एक साथ भोगे जाएंगे अथवा एक के बाद एक प्रारंभ होंगे।

113 **196**

Section 125 – (i) If the husband is an able-bodied person, he cannot refuse to maintain his wife on ground that he is not having sufficient income.
(ii) Husband not ready and willing to keep his wife with him without any reasonable cause, in absence of any complaint made by husband regarding misbehavior of wife or an application u/S 9 of Hindu Marriage Act, wife is entitled for maintenance.

धारा 125 - (i) यदि पति शारीरिक रूप से सक्षम व्यक्ति है, तो वह अपनी पत्नी का भरणपोषण करने से इस आधार पर इंकार नहीं कर सकता कि उसकी पर्याप्त आय नहीं है।

(ii) पति बिना किसी पर्याप्त कारण के उसकी पत्नी को अपने साथ रखने के लिये तत्पर एवं रजामंद नहीं है, तब पत्नी के दुर्व्यवहार के संबंध में पति द्वारा किसी परिवाद के या हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 9 के अंतर्गत आवेदन के अभाव में, पत्नी भरण-पोषण की हकदार है।

114* **197**

Sections 154 and 156 – High Court should not be approached u/S 482 CrPC directly without exhausting remedy available under Section 156(3).

धाराएं 154 एवं 156 - धारा 156(3) के अधीन उपलब्ध उपचार का उपयोग किए बिना दं.प्र.सं. की धारा 482 के अधीन सीधे उच्च न्यायालय में याचिका नहीं लगाई जानी चाहिए।

115* **198**

Sections 216, 386 and 464 – (i) Appellate Court can alter charge.

(ii) If some of the co-accused, charged with Section 149 IPC are acquitted and the remaining accused are less than five in number, then charge under Section 149 IPC against remaining accused collapses – However, they can be convicted with the aid of Section 34 IPC if evidence of common intention is available.

धाराएं 216, 386 एवं 464 - (i) अपीलीय न्यायालय आरोप परिवर्तित कर सकता है।

(ii) यदि धारा 149 भा.दं.सं. से आरोपित कुछ सहअभियुक्त दोषमुक्त हो जाते हैं और शेष अभियुक्त संख्या में पांच से कम हैं, तो शेष अभियुक्तगण के संबंध में धारा 149 भा.दं.सं. का आरोप निष्फल हो जाएगा - हालांकि, यदि सामान्य आशय की साक्ष्य उपलब्ध हो तो वे भा.दं.वि. की धारा 34 की सहायता से दोषसिद्ध किए जा सकते हैं। **116** **198**

Section 313 – See Sections 34, 302 and 364 of Indian Penal Code, 1860

धारा 313 - देखें भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धाराएं 34, 302 एवं 364।

128 **216**

Section 319 – When summoning an additional accused, test to be applied is of a degree of satisfaction that the evidence, if goes unrebutted, may lead to conviction of the proposed accused, which is more than that of a *prime facie* case as exercised at the time of framing of charge.

धारा 319 - अतिरिक्त अभियुक्त को समन करते समय, लागू होने वाला परीक्षण समाधान की ऐसी कोटि का होना चाहिए कि यदि साक्ष्य अखंडित रहती है तो प्रस्तावित अभियुक्त की दोषसिद्धि की जा सकती है, जो आरोप विरचना के समय प्रयुक्त प्रथम दृष्टया मामले से अधिक हो।

117 **200**

Section 319 – (i) Court can summon as additional accused a person, whose name was not included in FIR but who could be tried together with accused.

(ii) Exercise of jurisdiction under Section 319 CrPC requires satisfaction of the Court about more than *prima facie* case as exercised at the time of framing of charge.

धारा 319 - (i) न्यायालय अतिरिक्त अभियुक्त के रूप में किसी व्यक्ति को, जिसका नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में शामिल नहीं है किंतु जिसे अभियुक्त के साथ विचारित किया जा सकता है, समन कर सकती है।

(ii) धारा 319 दंप्रसं के तहत अधिकारिता का प्रयोग, अपराध की विरचना के समय प्रयुक्त प्रथम दृष्टया मामले से अधिक समाधान की अपेक्षा करता है।

118 201

Section 397 – (i) In every criminal revision, the party/complainant on whose application the impugned order was passed, is a necessary party along with State and such party/complainant should also be impleaded as respondent in the revision petition.

(ii) Direction by the High Court to Sessions Judge to "consider and allow" the bail application of accused persons amounts to usurping the powers and interfering in the discretionary power of the subordinate Courts and is not legal.

धारा 397 - (i) प्रत्येक आपराधिक पुनरीक्षण में, आवेदक/परिवादी, जिसके आवेदन पर आक्षेपित आदेश पारित किया गया था, राज्य के साथ एक आवश्यक पक्षकार होता है तथा ऐसे आवेदक/परिवादी को भी संशोधन याचिका में प्रत्यर्थी के रूप में संयोजित किया जाना चाहिए।

(ii) उच्च न्यायालय का सत्र न्यायाधीश को अभियुक्तगण की जमानत अर्जी पर ''विचार कर उसे स्वीकार करने'' का निर्देश अधीनस्थ न्यायालयों की शक्ति का अतिक्रमण है एवं उनकी वैवेकीय शक्ति में हस्तक्षेप करने के समान है तथा विधिसम्मत नहीं है। **119 203**

Section 437(6) – There need to be something more serious reasons for denying bail under Section 437(6) than mere grounds on which the bail may be refused under Section 437(1).

धारा 437(6) - धारा 437(6) के अधीन जमानत आवेदन अस्वीकार करने के लिए धारा 437(1) के अधीन प्रस्तुत जमानत आवेदन अस्वीकार करने के आधारों से कुछ अधिक गंभीर कारण होने आवश्यक हैं।

120 205

Section 456 – (i) Trial Court can pass an order for restoration of the possession of the property to the person who was forcibly dispossessed while convicting the accused of trespass and if the trial Court had not passed such order while convicting the accused, the order may be passed within one month from the date of conviction.

(ii) No limitation has been provided for appellate or revisional Court to make such order to restore possession of immovable property.

धारा 456 - (i) अतिचार के लिए अभियुक्त को दोषसिद्ध करते समय विचारण न्यायालय सम्पत्ति के आधिपत्य के पुनस्थापन के लिए ऐसे व्यक्ति के पक्ष में आदेश कर सकता है जो बलपूर्वक आधिपत्यच्युत किया गया है तथा यदि विचारण न्यायालय अभियुक्त की दोषसिद्धि के समय ऐसा आदेश नहीं करता है तो ऐसा आदेश दोषसिद्धि की तिथि से एक माह के भीतर किया जा सकता है।

(ii) स्थावर सम्पत्ति के आधिपत्य के पुनस्थापन हेतु अपीलीय अथवा पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा ऐसा ओदश करने के लिए कोई परिसीमा विहित नहीं की गई है । **136** **230**

CRIMINAL TRIAL:

आपराधिक विचारण:

– Judge should not make unmerited and undeserving remarks affecting character and reputation, specially in case of witnesses or the parties who are not before him, unless it is absolutely necessary for just and proper decision of the case and that too after affording an opportunity of explaining or defending, to that witness or the party.

- न्यायाधीश को चरित्र तथा प्रतिष्ठा को प्रभावित करने वाली अनुपयुक्त व अयोग्य टिप्पणियां न करने का एक तत्स्थानी कत्र्तव्य भी होता है, विशेषकर ऐसे साक्षियों और पक्षकारों के मामले में जो उसके समक्ष नहीं हैं, जब तक कि यह मामले के ऋजु व उचित निर्णय के लिए आवश्यक न हो और वह भी ऐसे साक्षी या पक्षकार को समझाने अथवा बचाव करने का अवसर प्रदान करने के बाद ही। **121** **206**

– See Sections 3, 9 and 27 of the Evidence Act, 1872.

- देखें साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धाराएं 3, 9 एवं 27। **135** **226**

DISSOLUTION OF MUSLIM MARRIAGE ACT, 1939

मुस्लिम विवाह विघटन अधिनियम, 1939

Section 2 – See Sections 12, 26 and 36 of the Protection of Women from Domestic Violence Act, 2005.

धारा 2 - देखें घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 की धाराएं 12, 26 एवं 36।

145* **249**

DRUGS AND COSMETICS ACT, 1940

औषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940

Sections 18, 27 and 28 – (i) Before a person is convicted under Section 18(c) read with Section 27(b)(ii) of Act, prosecution must establish that drugs are stocked or stored for sale without licence.

धाराएं 18, 27 एवं 28 - (i) अधिनियम की धारा 27(ख)(ii) सहपठित धारा 18(ग) के अधीन दोषसिद्ध किए जाने के पूर्व अभियोजन द्वारा यह स्थापित किया जाना चाहिए कि उन औषधियों को बिना अनुज्ञप्ति विक्रय हेतु संग्रहीत या स्टाॅक किया गया था। **122 (i)** **209**

ELECTRICITY ACT, 2003

विद्युत अधिनियम, 2003

Sections 126 and 135 – Distinction between 'unauthorised use of electricity u/S 126' and 'theft of electricity u/S 135' explained.

धाराएं 126 एवं 135 - धारा 126 के अधीन विद्युत के अनाधिकृत उपयोग एवं धारा 135 के अधीन विद्युत की चोरी में विभेद समझाया गया। **123*** **210**

EVIDENCE ACT, 1872

साक्ष्य अधिनियम, 1872

Sections 3 and 32 – (i) A related witness cannot be said to be an ‘interested’ witness merely by virtue of being a relative of the victim.
(ii) Distinction between 'interested witness' and 'related witness'.
(iii) Appreciation of evidence of related witness.
(iv) Reliability of dying declaration.

धाराएं 3 एवं 32 - (i) संबंधी साक्षी को मात्र इस कारण हितबद्ध साक्षी नहीं कहा जा सकता है कि वह पीड़ित का संबंधी है।
(ii) संबंधी साक्षी तथा हितबद्ध साक्षी में भेद।
(iii) संबंधी साक्षी की साक्ष्य का मूल्यांकन।
(iv) मृत्युकालिक कथन की विश्वसनीयता। **124** **211**

Sections 3, 9 and 27 – (i) Proof of dacoity with murder.
(ii) Evidentiary value of Statements under Section 27.
(iii) Effect of failure to hold Test Identification Parade during investigation and non-identification of accused by prosecution witnesses.
(iv) Effect of failure to establish motive of the accused.

धाराएं 3, 9 एवं 27 - (i) हत्या के साथ डकैती का सबूत।
(ii) धारा 27 के अंतर्गत कथनों का मूल्य।
(iii) विवेचना के दौरान पहचान परेड कराने में असफल रहने तथा अभियोजन साक्षियों द्वारा अभियुक्त की पहचान न करने, का प्रभाव।
(iv) अभियुक्त के हेतु को स्थापित करने में चूक का प्रभाव। **135** **226**

Sections 3 and 106 – See Sections 134, 166 and 187 of Motor Vehicles Act, 1988.

धाराएं 3 तथा 106 - देखें मोटर यान अधिनियम, 1988 की धाराएं 134, 166 तथा 187। **138** **233**

Section 30 – See Sections 21(c), 29 and 67 of the N.D.P.S. ACT, 1985.

धारा 30 - देखें स्वापक औषधि एवं मनः प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 की धाराएं 21(ग), 29 एवं 67। **141** **239**

Section 32 – (i) Evidentiary value of dying declaration.
(ii) Identification of accused in dying declaration.
(iii) Effect of interpolation of date in FIR/***Dehati Nalishi***.
धारा 32 - (i) मृत्युकालिक कथन का साक्ष्यिक मूल्य।
(ii) मृत्युकालिक कथन में अभियुक्त की पहचान।
(iii) प्रथम सूचना रिपोर्ट/देहाती नालिशी में तिथि के अंतरवेषण का प्रभाव।
132 219

Section 32 – (i) Relevancy of dying declaration.
(ii) Reliability of two dying declarations.
धारा 32 - (i) मृत्युकालिक कथन की सुसंगतता।
(ii) दो मृत्युकालिक कथनों की विश्वसनीयता। **125*** **214**

Section 62 – (ii) Under section 62 of the Indian Evidence Act, carbon copies can be taken into consideration as primary evidence.
धारा 62 - (ii) भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 62 के अधीन, कार्बन प्रति को प्राथमिक साक्ष्य के रूप में विचार में लिया जा सकता है। **122 (ii) 209**

Section 101 – See Section 64 of Limitation Act, 1963.
धारा 101 - देखें परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 64। **137 231**

Section 101 – See Section 38 of the Specific Relief Act, 1963.
धारा 101 - देखें विर्निदिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 38। **149 253**

Section 116 – See Sections 12(1)(c) and 12(1)(f) of the Accommodation Control Act, 1961 (M.P.)
धारा 116 - देखें स्थान नियंत्रण अधिनियम, 1961 (म.प्र.) की धाराएं 12(1)(ग) एवं 12(1)(च)।
102 181

Section 134 – (i) Appreciation of evidence in sexual offences.
(ii) Effect of delay in FIR in sexual offences.
धारा 134 - (i) लैंगिक अपराधों में साक्ष्य का मूल्यांकन।
(ii) लैंगिक अपराधों में प्रथम सूचना रिपोर्ट में विलंब का प्रभाव। **134 224**

EXCISE ACT, 1915 (M.P.)

आबकारी अधिनियम, 1915 (म.प्र.)

Sections 34 (2), 44 and 61 – According to provision of Section 61 of the Act of 1915, Magistrate shall take cognizance of such an offence only upon complaint filed by Collector or Excise Officer not below the rank of District Excise Officer.

धाराएं 34 (2), 44 एवं 61 - 1915 के अधिनियम की धारा 61 के प्रावधान के अनुसार, मजिस्ट्रेट ऐसे अपराधों का संज्ञान केवल कलेक्टर या जिला आबकारी अधिकारी से अनिम्न श्रेणी के आबकारी अधिकारी द्वारा किये गये परिवाद पर ही लेगा। **126*** **215**

HINDU SUCCESSION ACT, 1956

हिन्दु उत्तराधिकार अधिनियम, 1956

Section 30 – A coparcener can dispose of his undivided share in Mitakshara joint family property by Will or any testamentary disposition.

धारा 30 - कोई सहदायिक, मिताक्षरा संयुक्त परिवार की सम्पत्ति में अपने अविभाजित अंश को इच्छापत्र अथवा किसी वसीयती व्ययन द्वारा व्ययनित कर सकता है। **127** **215**

INDIAN PENAL CODE, 1860

भारतीय दण्ड संहिता, 1860

Sections 34 and 149 – See Sections 216, 386 and 464 of Criminal Procedure Code, 1973.

धाराएं 34 एवं 149 - देखें धाराएं 216, 386 एवं 464 दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973। **116** **198**

Sections 34, 302 and 364 – (i) When 'last seen' theory alongwith other circumstances are established by prosecution, mere denial of his involvement in crime by accused would not suffice but it is duty of the accused to explain these circumstance in his examination.

(ii) Death of one of the main co-accused sharing common intention while committing crime would not exonerate the other co-accused from prosecution.

धाराएं 34, 302 एवं 364 - (i) अन्य परिस्थितियों के साथ-साथ अभियोजन पक्ष द्वारा जब 'अंतिम बार साथ देखा जाना' भी स्थापित कर दिया जाए, अभियुक्त द्वारा मात्र अपराध में अपनी भागीदारी से इंकार करना पर्याप्त न होगा बल्कि अभियुक्त का यह कत्र्तव्य है कि वह परीक्षण में इन परिस्थितियों का स्पष्टीकरण दे।

(ii) अपराध करते समय सामान्य आशय रखने वाले मुख्य सह-अभियुक्त की मृत्यु अन्य सह-अभियुक्त को अभियोजन से मुक्त नहीं करेगी। **128** **216**

Section 302 – Medical evidence *versus* direct evidence in case of murder.

धारा 302 - हत्या के मामले में चिकित्सीय साक्ष्य बनाम प्रत्यक्ष साक्ष्य। **129*** **217**

Section 302 – An accused cannot be acquitted on the sole ground that the other co-accused have been acquitted.

धारा 302 - कोई अभियुक्त इस एकमेव आधार पर दोषमुक्त नहीं किया जा सकता है कि अन्य सह अभियुक्तगण दोषमुक्त कर दिए गए हैं। **130*** **218**

Section 302 – (i) Evidence cannot be rejected just because it is partisan.

(ii) Facts of recovery cannot be disregarded merely because it was not made before independent witness.

(iii) As regards value of evidence of police officials, there is no such legal proposition that the evidence of police officials unless supported by independent witness is unworthy of acceptance or the evidence of police officials can be outrightly disregarded.

धारा 302 - (i) साक्ष्य केवल इस आधार पर अस्वीकार नहीं की जा सकती है कि वह पक्षपोषी है।

(ii) अभिग्रहण का तथ्य मात्र इस कारण अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि वह स्वतंत्र साक्षियों के समक्ष नहीं किया गया था।

(iii) पुलिस अधिकारियों की साक्ष्य के मूल्य के संबंध में, ऐसी कोई विधिक प्रतिपादना नहीं है कि पुलिस अधिकारियों की साक्ष्य जब तक कि स्वतंत्र साक्षियों से अनुसमर्थित न हो, स्वीकृति के अयोग्य है अथवा पुलिस अधिकारियों की ऐसी साक्ष्य पूर्णतः अस्वीकार कर देनी चाहिए।

131* **218**

Section 302 – See Section 32 of Evidence Act, 1872.

धारा 302 - देखें साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32। **132** **219**

Section 307 – Proof of grievous or life-threatening hurt is not a *sine qua non* for the offence punishable under S. 307 but intention of the accused is important which can be ascertained from the actual injury and surrounding circumstances including nature of weapon used and severity of blows inflicted.

धारा 307 - घोर या जीवन संकटापित करने वाली उपहति का सबूत धारा 307 के अधीन दण्डनीय अपराध हेतु अनिवार्य नहीं है किंतु अभियुक्त का आशय महत्वपूर्ण है जिसे वास्तविक क्षति और प्रयुक्त आयुध व कारित प्रहारों की गंभीरता सहित प्रतिवेशी परिस्थितियों से अभिनिर्धारित किया जा सकता है।

133 **222**

Section 354 – See Section 134 of Evidence Act, 1872.

धारा 354 - देखें साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 134। **134** **224**

Section 396 – See Sections 3, 9 and 27 of the Evidence Act, 1872.

धारा 396 - देखें साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धाराएं 3, 9 एवं 27। **135** **226**

Section 448 – See Section 456 of the Criminal Procedure Code, 1973.

धारा 448 - देखें दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 456। **136** **230**

LIMITATION ACT, 1963

परिसीमा अधिनियम, 1963

Section 64 – (i) Distinction between 'suit based on possessory title' and 'suit based on proprietary title' expalined.

(ii) Settled possession or effective possession of person without title entitles such person to protect his possession as if he were true owner.

(iii) For proof of possessory title, person who asserts possessory title over particular property will have to show that he is under settled or established possession of said

property and merely stray or intermittent acts of trespass do not give such right against true owner.
(iv) Burden of proof is on the plaintiff to prove his case to the satisfaction of the Court and he cannot rely on weaknesses of the defendant.

धारा 64 - (i) आधिपत्य विषयक स्वत्व पर आधारित वाद तथा स्वामित्व आधारित स्वत्व पर आधारित वाद में भेद समझाया गया।

(ii) बिना स्वत्व के व्यक्ति का सुस्थापित या प्रभावी आधिपत्य ऐसे व्यक्ति को अपने आधिपत्य की संरक्षा हेतु इस प्रकार अधिकृत करता है जैसे कि वह वास्वतिक स्वामी हो।

(iii) आधिपत्य विषयक स्वत्व के सबूत हेतु कोई व्यक्ति जो किसी विनिर्दिष्ट सम्पत्ति पर आधिपत्य विषयक स्वत्व का दावा करता है, उसे यह दर्शित करना होगा कि वह उस सम्पत्ति के सुस्थापित आधिपत्य में है तथा मात्र अतिचार के एकल या अंतरायिक (बीच-बीच के) कार्य वास्तविक स्वामी के विरूद्ध ऐसा अधिकार नहीं देते हैं।

(iv) सबूत का भार वादी पर होता है कि वह अपना मामला न्यायालय के समाधान पर साबित करे और वह प्रतिवादी की दुर्बलताओं पर भरोसा नहीं कर सकता है। **137** **231**

MOTOR VEHICLES ACT, 1988

मोटर यान अधिनियम, 1988

Sections 134, 166 and 187 – (i) Standard of proof for Motor Accident Claim Cases must be of preponderance of probability and not strict standard of proof beyond all reasonable doubt as followed in criminal cases.
(ii) If presence of a witness at the time and place of the accident proved, the entire version of his evidence cannot be discarded only on the ground of his inability to identify the age of the pillion rider.
(iii) Non-examination of best witness as pillion rider would not be fatal in accident claim cases.
(iv) Evaluation of evidence in claim cases explained.
(v) In determination of compensation, objection about deduction of income tax from calculated income is not sustainable in view of the law laid down in ***National Insurance Company Limited v. Pranay Sethi and others, (2017) 16 SCC 680***.

धाराएं 134, 166 एवं 187 - (i) वाहन दुर्घटना दावा मामलों के लिए सबूत का स्तर अधिसंभाव्यता की प्रबलता का होना चाहिए और न कि सभी संदेह से परे होने का ऐसा कठोर स्तर जिसे आपराधिक मामलों में अनुसरित किया जाता है।

(ii) यदि दुर्घटना के समय और स्थान पर साक्षी की उपस्थिति साबित हो जाती है, तो पिछली सीट पर बैठे व्यक्ति की आयु बताने में अक्षमता मात्र के आधार पर उसकी सम्पूर्ण साक्ष्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

(iii) सर्वोत्तम साक्षी यथा पिछली सीट पर बैठे व्यक्ति की परीक्षा न कराया जाना दुर्घटना दावा प्रकरण के लिए घातक नहीं होगा।

(iv) दावा प्रकरणों में साक्ष्य का मूल्यांकन समझाया गया।

(v) प्रतिकर का निर्धारण करते समय संगणित आय से आयकर विकलित करने के संबंध में आपत्ति ***नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड विरूद्ध प्रणय सेठी तथा अन्य, (2017) 16 एससीसी 680,*** के मामले में प्रतिपादित विधि के आलोक में पोषणीय नहीं है। **138 233**

Sections 140 and 168 – (i) In collision of car behind a running truck, distance of 10-15 feet between the two vehicles held not to be a safe distance and driver of car held to be rash and negligent in driving.
(ii) Question of contributory negligence arises only when both the parties were rash and negligent while driving.
(iii) Liability of owner under Section 140 is regardless of the fact that vehicle was not driven rashly and negligently.

धाराएं 140 एवं 168 - (i) एक चलते हुए ट्रक के पीछे कार के टकराने में, दोनों वाहनों के बीच की दूरी मात्र 10-15 फीट एक सुरक्षित दूरी न होना अभिनिर्धारित की गई और कार चालक का उतावलेपन व उपेक्षापूर्ण चालन करना अवधारित किया गया।

(ii) योगदायी उपेक्षा का प्रश्न तभी उठता है जब दोनों पक्ष वाहन चलाते समय उतावलेपन व उपेक्षापूर्ण रहे हों।

(iii) धारा 140 के अधीन वाहन स्वामी का दायित्व इस तथ्य पर निर्भर नहीं करता है कि वाहन को उतावलेपन व उपेक्षापूर्वक नहीं चलाया गया था। **139 236**

Section 166 – When claimant suffered permanent disability by amputation of his left leg, his disability assessed to 90% as with the amputated leg, claimant, cannot pursue his livelihood as driver or daily wage labourer.

धारा 166 - जब दावाकर्ता के बाएं पैर के विच्छेदन के कारण स्थाई विकलांगता कारित हुई, उसकी विकलांगता 90 प्रतिशत आंकलित की गई क्योंकि, विच्छेदित पैर के साथ, दावाकर्ता, वाहन चालक या दिहाड़ी मजदूर के रूप में अपनी आजीविका अर्जित नहीं कर सकता है। **140* 238**

N.D.P.S. ACT, 1985

स्वापक औषधि एवं मनः प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985

Sections 21(c), 29 and 67 – Confessional statement of co-accused recorded under Section 67 of the N.D.P.S. Act cannot form the sole basis of conviction of another co-accused.

धाराएं 21(ग), 29 एवं 67 - स्वापक औषधि एवं मनः प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 की धारा 67 के तहत अभिलिखित सहअभियुक्त के संस्वीकृति कथन, अन्य सहअभियुक्त की दोषसिद्धि का एकमात्र आधार नहीं हो सकते हैं।

141 239

NEGOTIABLE INSTRUMENTS ACT, 1881

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881

Sections 118, 138 and 139 – Complainants/appellants case found to be proved that the two cheques were issued towards the discharge of an existing liability and legally enforceable debt – Respondent also admitted his signature in cheques and pronote – Held, presumption under Section 139 would operate – But respondent failed to produce any credible evidence to rebut the statutory presumption – Hence, conviction held proper.

धाराएं 118, 138 एवं 139 - आवेदकगण/अपीलार्थीगण का मामला, कि दो चैक विद्यमान दायित्व तथा वैध रूप से प्रवर्तनीय ऋण के उन्मोचन के लिए जारी किए गए थे, प्रमाणित पाया गया - प्रत्यर्थी ने भी चैकों व प्रोनोट पर अपने हस्ताक्षर स्वीकार किए - अभिनिर्धारित, धारा 139 के तहत उपधारणा प्रवर्तनीय होगी - पर वैधानिक उपधारणा के खंडन में विश्वसनीय साक्ष्य प्रस्तुत करने में प्रत्यर्थी असफल रहा - अतः, दोषसिद्धी उचित ठहराई गई। **142 244**

Section 138 – Quantum of sentence – Accused was sentenced to undergo two months simple imprisonment, Rs. 10,000/- fine and further directed to pay compensation of Rs. 6,00,000/- – She deposited the fine and amount of compensation – Considering that she was just 24 years of age and the only earning member in her family, her father was unwell and physically incapable of doing any work, she was serving as a teacher and her monthly income was around Rs. 4,000/- – If she is compelled to undergo the sentence of two months, she would lose her job and her entire family would suffer penury situation – Jail sentence was modified to additional compensation of Rs. 50,000/-.

धारा 138 - दण्ड की मात्रा - अभियुक्त को दो माह के साधारण कारावास के साथ रूपये 10,000/- का अर्थदण्ड एवं रूपये 6,00,000/- का प्रतिकर अदा करने का निर्देश दिया गया - उसने अर्थदण्ड और प्रतिकर की राशि जमा कर दी - इन तथ्यों पर विचार करते हुए कि अभियुक्त मात्र 24 वर्ष की थी और अपने परिवार की एकमात्र आय अर्जित सदस्य थी, उसके पिता अस्वस्थ थे और शारीरिक रूप से कोई भी काम करने में असमर्थ थे, वह एक शिक्षक के रूप में सेवा कर रही थी और उसकी मासिक आय लगभग रूपये 4000/- थी - यदि उसे दो माह का कारावास भुगतने के लिए भेजा जाता है, तो वह अपनी नौकरी खो देगी और उसके पूरे परिवार को दरिद्रता की स्थिति भुगतनी होगी - अतः कारावासीय दण्ड को रूपए रूपये 50,000/- के अतिरिक्त प्रतिकर में बदल दिया गया। **143* 246**

PROTECTION OF CHILDREN FROM SEXUAL OFFENCES ACT, 2012

लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012

Sections 2 (1)(d) and 27 – (i) Definition of “child” under Section 2(1)(d) of the POCSO Act means any person below the age of 18 years and does not engulf and embrace, in its connotative expanse, “mental age” of a person irrespective of his or her biological age.
(ii) Medical examination of child is mandatory whether POCSO Act is mentioned in FIR or not.

(iii) POCSO Act is beneficial legislation and its provisions must be construed to help in carrying out the beneficial purpose of the Act and should not unduly expand the scope of a provision.

धारा 2 (1)(घ) एवं 27 - (i) पॉक्सो अधिनियम की धारा 2(1)(घ) के तहत ''बालक'' की परिभाषा का अर्थ 18 वर्ष से कम आयु के किसी भी व्यक्ति से है तथा यह अपने सहवर्ती विस्तार में, किसी व्यक्ति की 'मानसिक आयु' को भी सम्मिलित एवं अंतर्विष्ट नहीं करती है, चाहे ऐसे व्यक्ति की जैविक आयु कुछ भी हो।

(ii) बालक का चिकित्सीय परीक्षण अनिवार्य है चाहे पॉक्सो अधिनियम का उल्लेख एफआईआर में हो अथवा नहीं।

(iii) पॉक्सो अधिनियम हितकारी विधि है तथा उसके उपबंधों का अर्थान्वयन हितकारी उद्देश्य को पूरा करने में सहायता करने के लिए किया जाना चाहिए और प्रावधान के विषय क्षेत्र का अनुचित विस्तार नहीं करना चाहिए। **144** **246**

PROTECTION OF WOMEN FROM DOMESTIC VIOLENCE ACT, 2005

घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005

Sections 12, 26 and 36 – (i) Muslim women can claim relief under Protection of Women from Domestic Violence Act.
(ii) Proceeding initiated by wife for divorce under Dissolution of Muslim Marriage Act, does not disentitle wife to claim relief under DV Act.

धाराएं 12, 26 एवं 36 - (i) एक मुस्लिम महिला घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम के अंतर्गत अनुतोष की मांग कर सकती है।

(ii) पत्नी द्वारा मुस्लिम विवाह विघटन अधिनियम के अंतर्गत विवाह विच्छेद हेतु प्रारंभ की गई कार्यवाही, पत्नी को घरेलू हिंसा अधिनियम के अंतर्गत अनुतोष की मांग से वंचित नहीं करती है।

145* **249**

PUBLIC PREMISES (EVICTION OF UNAUTHORIZED OCCUPANTS) ACT, 1971

सरकारी स्थान (अप्राधिकृत अधिभोगियों की बेदखली) अधिनियम, 1971

Section 3 (b) – Estate Officer has to exercise its jurisdiction in relation to the public premises falling in the local limits specified in the notification issued under Section 3 of the Act

धारा 3 (ख) - अधिनियम की धारा 3 के तहत जारी अधिसूचना में निर्दिष्ट स्थानीय सीमाओं में आने वाले सरकारी स्थान के संबंध में संपदा अधिकारी को क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना है।

146 **250**

SERVICE LAW:

सेवा विधि:

– (i) Right for compassionate appointment is not a vested right.

(ii) While considering an application for Compassionate Appointment, policy prevailing at time of consideration of the application is applicable.

- (i) अनुकम्पा नियुक्ति का अधिकार निहित अधिकार नहीं है।

(ii) अनुकंपा नियुक्ति हेतु आवेदन पर विचार करते समय, आवेदन पर विचार के समय अभिभावी नीति लागू होती है। **147*** **251**

SPECIFIC RELIEF ACT, 1963

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963

Section 20 – To have a relief of specific performance of unregistered agreement to sale, proof of execution of agreement is a must and where factum of execution of agreement itself is doubted, plaintiff/appellant is not entitled to the relief of specific performance.

धारा 20 - अपंजीकृत विक्रय करार के विनिर्दिष्ट पालन की सहायता प्राप्त करने के लिए, करार के निष्पादन का सबूत आवश्यक है तथा जहां करार के निष्पादन का तथ्य स्वमेव में संदेहास्पद है, वादी/अपीलार्थी विनिर्दिष्ट अनुपालन की सहायता प्राप्त करने का हकदार नहीं है।

148* **252**

Section 38 – (i) Relief of perpetual injunction can only be granted to a person who is in actual and lawful possession of suit property on the date of suit.

(ii) Burden of proof lies upon plaintiff to prove that he was in actual and physical possession of the property on the date of suit and the fact of possession of the plaintiff cannot be inferred from circumstances and plaintiff is bound to prove it.

(iii) A person who is not paying rent for more than fifteen years cannot be said to be in lawful possession.

धारा 38 - (i) शाश्वत व्यादेश का अनुतोष केवल ऐसे व्यक्ति को ही अनुदत्त किया जा सकता है जो वाद की तिथि पर वादग्रस्त सम्पत्ति के वास्तविक एवं विधिपूर्ण आधिपत्य में हो।

(ii) सबूत का भार वादी पर होता है कि वह यह साबित करे कि वह वाद की तिथि पर सम्पत्ति के वास्तविक एवं भौतिक आधिपत्य में था तथा वादी के आधिपत्य के तथ्य का परिस्थितियों से अनुमान नहीं निकाला जा सकता है और वादी इसे साबित करने के लिए आबद्ध है।

(iii) ऐसा व्यक्ति जो विगत पंद्रह वर्षों से भाटक संदाय नहीं कर रहा है, विधिपूर्ण आधिपत्य में नहीं कहा जा सकता है। **149** **253**

TRANSFER OF PROPERTY ACT, 1882

संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882

Section 43 – Transfer by unauthorised person – The transfer was under fraudulent / erroneous representation about being authorised to transfer – Such person subsequently acquires interest in property transferred – In the circumstances, the suit by the heirs of the transferor for cancellation of the sale deed would not be maintainable – Rights of transferee would be protected by operation of Section 43 of the Act.

धारा 43 - अनधिकृत व्यक्ति द्वारा अंतरण - अंतरण करने के लिए अधिकृत होने के संबंध में कपटपूर्ण/मिथ्या प्रदर्शन के अधीन अंतरण - तत्पश्चात अंतरित सम्पत्ति में ऐसा व्यक्ति हित अर्जित करता है - ऐसी परिस्थितियों में अंतरणकर्ता के उत्तराधिकारियों के द्वारा विक्रयपत्र को निरस्त करने का वाद संधारणीय नहीं होगा - अधिनियम की धारा 43 के प्रवर्तन द्वारा अंतरिती के अधिकार संरक्षित होंगे।

150 254

Section 52 – See Order 21 Rules 97, 100 and 102 of the Civil Procedure Code, 1908.

धारा 52 - देखें सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 21 नियम 97, 101 एवं 102।

112 194

PART – IIA

(GUIDELINES)

1. Directives issued by the Supreme Court for the effective implementation of Witness Protection Scheme, 2018 **257**

PART – IV

IMPORTANT CENTRAL/STATE ACTS & AMENDMENTS

1. Amendments in the High Court of Madhya Pradesh Rules, 2008 13
2. Amendments in the Madhya Pradesh Civil Court Rules, 1961 13
3. Amendment in the Madhya Pradesh Rules and Orders (Criminal) 14
4. Amendments in the District Courts of Madhya Pradesh Digitization of Records Rules, 2016 14
5. Madhya Pradesh Video Conferencing Rules, 2018 15
6. The Madhya Pradesh Excise (Amendment) Act, 2014 26

संपादकीय

प्रदीप कुमार व्यास
संचालक

सम्माननीय पाठकगण,

यह मेरे लिए अत्यंत हर्ष का विषय है कि इस संस्था ने अप्रैल 2019 में 25 वर्ष पूर्ण कर लिए हैं और संस्था के रजत जयंती वर्ष का शुभारंभ सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायमूर्ति श्री शरद ए. बोबड़े साहब के करकमलों से 27 अप्रैल, 2019 को संपन्न हुआ। मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय के माननीय मुख्य न्यायाधिपति श्री एस.के. सेठ एवं जज इंचार्ज, ज्यूडिशियल एजुकेशन, माननीय न्यायमूर्ति श्री आर.एस. झा साहब की गरिमामय उपस्थिति में उक्त कार्यक्रम संपन्न हुआ। रजत जयंती वर्ष के शुभारंभ का प्रसारण प्रदेश भर में किया गया था, जिसके आप भी साक्षी बने हैं।

यह मध्य प्रदेश न्यायपालिका के लिए अत्यंत गौरव का विषय है कि इस पावन संस्था ने अपने 25 वर्ष पूर्ण कर लिए हैं। इस रजत जयंती वर्ष में ''प्रेरणा'' के नाम से Lecture Series भी रखी जाना है और रजत जयंती वर्ष का समापन अप्रैल, 2020 में प्रस्तावित है। रजत जयंती वर्ष के शुभारंभ कार्यक्रम में मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय के माननीय न्यायमूर्तिगण, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायमूर्तिगण श्री पी.पी. नावलेकर साहब, श्री डी. एम. धर्माधिकारी साहब, जबलपुर में निवासरत माननीय उच्च न्यायालय के सेवानिृत्त माननीय न्यायमूर्तिगण, संस्था के पूर्व संचालकगण माननीय न्यायमूर्ति श्री सी. व्ही. सिरपुरकर साहब, माननीय न्यायमूर्ति श्री वेद प्रकाश शर्मा साहब, माननीय न्यायमूर्ति श्री जे. पी. गुप्ता साहब, माननीय न्यायमूर्ति श्री शैलेन्द्र शुक्ला साहब, माननीय श्री मनोहर ममतानी साहब, प्रमुख सचिव विधि एवं विधायी कार्य विभाग श्री सत्येन्द्र सिंह साहब, प्रदेश भर के सभी सम्माननीय जिला एवं सत्र न्यायाधीश महोदय, रजिस्ट्री जबलपुर एवं इंदौर में पदस्थ सम्माननीय न्यायाधीशगण, राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण में पदस्थ सम्माननीय न्यायाधीशगण, धर्मशास्त्र राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय में पदस्थ सम्माननीय न्यायाधीशगण, जबलपुर में पदस्थ सम्माननीय अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीशगण, अकादमी के सम्माननीय नियमित फैकल्टी के सदस्यगण, अकादमी में पदस्थ सभी सम्माननीय न्यायाधीशगण, अभिभाषक संघ जबलपुर के सम्माननीय सदस्यगण, इस अकादमी में कार्यरत् सभी सम्माननीय कर्मचारीगण भी उपस्थित हुए और उन्होंने इस ऐतिहासिक कार्यक्रम की शोभा बढ़ाई।

शुभारंभ कार्यक्रम के बाद अकादमी में पदस्थ रहे सभी सम्माननीय पूर्व संचालकगण की गरिमामय उपस्थिति में दो वर्किंग सेशन रखे गए थे जिसमें संस्था के सभी पूर्व संचालकगण ने अपने बहुमूल्य विचार रखे। संस्था में पदस्थ रहने के दौरान उनके अनुभव बतलाए। इन बहुमूल्य सुझावों को हम भविष्य में लागू करेंगे।

मैं इस ऐतिहासिक और गरिमामय कार्यक्रम में उपस्थित हुए सभी सम्माननीय आगंतुकों का आभार व्यक्त करता हूं कि उन्होंने अकादमी के लिए समय निकाला।

इन दो माहों में नव नियुक्त अपर जिला जज के प्रशिक्षण का द्वितीय चरण 29 अप्रैल, 2019 से 9 मई, 2019 तक रखा गया था। इसी प्रकार किशोर न्याय बोर्ड के पूरे प्रदेश के प्रधान मजिस्ट्रेट के लिए दो दिवसीय कार्यशाला, 4 एवं 5 मई, 2019 को रखी गई थी। वर्ष 2015 बैच के व्यवहार न्यायाधीशगण का द्वितीय Refresher Course 13 मई, 2019 से 17 मई, 2019 तक रखा गया था।

पूरे प्रदेश के कार्यालय अधीक्षकों के लिए 27 मई एवं 28 मई, 2019 को एक दो दिवसीय कार्यशाला रखी गई है। इसी प्रकार पूरे प्रदेश के लेखापालों की 3 जून, 2019 व 4 जून, 2019 को दो दिवसीय कार्यशाला रखी गई है ताकि जिला न्यायालयों की प्रशासकीय कार्यक्षमता में वृद्धि हो सके।

एक, दो दिवसीय कार्यशाला परक्राम्य लिखत अधिनियम पर 22 एवं 23 जून को एवं मोटरयान अधिनियम पर एक, दो दिवसीय कार्यशाला 29 एवं 30 जून को रखी गई है।

इस प्रकार अकादमी में न केवल रजत जयंती वर्ष का शुभारंभ हुआ है अपितु विभिन्न विषयों पर उक्त कार्यशालाएं भी संपन्न हुई हैं। रजत जयंती वर्ष के अन्य कार्यक्रमों में ये प्रयास किया जायेगा कि प्रदेश के अन्य न्यायाधीशों को भी शामिल होने का अवसर मिले।

पत्रिका के बारे में आपके अमूल्य सुझाव सादर आमंत्रित हैं।

•

henever there is prolongation of litigation, ultimate sufferers are the litigating parties and inevitably the justice delivery system, Resultant is miscarriage of justice".

Dr. Arjit Pasayat, J. in Goodwill Girls High School v. J. Mary Susheela, (2003) 9 SCC 106, para 1

MADHYA PRADESH STATE JUDICIAL ACADEMY,
HIGH COURT OF M.P., JABALPUR

**Glimpses of the Inaugural Function of Year long
Silver Jubilee Celebrations of Madhya Pradesh State Judicial Academy
held on 27.04.2019 in the Academy**

**Chief Guest of the Inaugural Function of the Year
long Silver Jubilee Celebration Hon'ble Mr. Justice S.A. Bobde,
Judge, Supreme Court of India lighting the lamp on the occasion**

**Hon'ble Shri Justice S.K. Seth, Chief Justice of Madhya Pradesh welcoming
Hon'ble Mr. Justice S.A. Bobde, Judge, Supreme Court of India**

MADHYA PRADESH STATE JUDICIAL ACADEMY, HIGH COURT OF M.P., JABALPUR

Glimpses of the Inaugural Function of Year long Silver Jubilee Celebrations of Madhya Pradesh State Judicial Academy held on 27.04.2019 in the Academy

Hon'ble Justice Shri R.S. Jha, Judge Incharge, Judicial Education, greeting Hon'ble Mr. Justice S.A. Bobde, Judge, Supreme Court of India

Hon'ble Mr. Justice S.A. Bobde, Judge, Supreme Court of India addressing the gathering on the occasion

MADHYA PRADESH STATE JUDICIAL ACADEMY, HIGH COURT OF M.P., JABALPUR

Glimpses of the Inaugural Function of Year long Silver Jubilee Celebrations of Madhya Pradesh State Judicial Academy held on 27.04.2019 in the Academy

Hon'ble Justice Shri R.S. Jha, Judge Incharge, Judicial Education, proposing vote of thanks on the occasion

Dignitaries who graced the Inaugural Function of the Year long Silver Jubilee Celebration of Madhya Pradesh State Judicial Academy held on 27.04.2019

MADHYA PRADESH STATE JUDICIAL ACADEMY,
HIGH COURT OF M.P., JABALPUR

Workshop on - Perception Management and Capacity Building for Trial and Enquiry in Children's Court
02.03.2019 and 03.03.2019

Specialised Educational Programme on - Cyber Laws, Cyber Forensics and Electronic Evidence
08.03.2019 and 09.03.2019

MADHYA PRADESH STATE JUDICIAL ACADEMY,
HIGH COURT OF M.P., JABALPUR

First Refresher Course for the Civil Judges Class-II of 2017 Batch
11.03.2019 to 15.03.2019

Specialised Educational Programme on - Cyber Laws,
Cyber Forensics and Electronic Evidence
15.03.2019 and 16.03.2019

HON'BLE SHRI JUSTICE HULUVADI G. RAMESH DEMITS OFFICE

Hon'ble Shri Justice Huluvadi G. Ramesh demitted office on His Lordship's attaining superannuation.

Hon'ble Shri Justice Huluvadi G. Ramesh was born on 20.05.1957. His Lordship was enrolled as an Advocate on 12th March, 1981 and practised in the Courts at Mysore and Bangalore Districts and High Court at Bangalore. Thereafter, His Lordship joined Karnataka Judicial Services as District Judge on 2nd February, 1993 and was promoted to the Cadre of District Judge

(Super Time Scale) on 23rd June, 2000. His Lordship was appointed as an Additional Judge of the High Court of Karnataka on 8th September, 2003 and as a Permanent Judge on 24th September, 2004. His Lordship was transferred to Allahabad High Court on 16th February, 2015 and thereafter to Madras

High Court and assumed charge as Judge of the Madras High Court on 11th April, 2016. His Lordship was appointed as Acting Chief Justice of the Madras High Court with effect from 16.02.2017 to 04.04.2017 and again from 07.08.2018 to 11.08.2018. His Lordship was transferred to the High Court of Madhya Pradesh and took oath of office on 15th November, 2018.

During his tenure in the High Court of Madhya Pradesh, His Lordship rendered invaluable services as Administrative Judge, Member of Administrative Committee, Executive Chairman, Madhya Pradesh State Legal Services etc.

We on behalf of JOTI Journal wish His Lordship a healthy, happy and prosperous life.

•

इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख: विधि एवं प्रक्रिया
साक्ष्य में ग्राह्यता, साक्ष्य लेखबद्ध किया जाना, प्रमाण, साक्ष्यिक मूल्य एवं प्रकीर्ण विषय

यशपाल सिंह
विशेष कर्तव्यस्थ अधिकारी
म.प्र. राज्य न्यायिक अकादमी

<u>संक्षिप्तिका</u>

1. प्रस्तावना (**Introduction**)
2. अर्थान्वयन (**Understanding**) (इलेक्ट्रानिक साक्ष्य क्या है?)
3. साक्ष्य में ग्राह्यता (**Admissibility in Evidence**)
   (1) प्राथमिक एवं द्वितीयक साक्ष्य/मूल एवं आउटपुट
   (2) धारा 65ए एवं 65बी
   (3) विधिक स्थिति एवं व्यवस्थाएं
   (4) प्रमाणपत्र की अंतर्वस्तु
   (5) आदर्श प्रमाणपत्र
4. साक्ष्य लेखबद्ध किया जाना (**Recording of Evidence**)
   (1) इलेक्ट्रानिक अभिलेख के प्रकार
   (2) क्या इलेक्ट्रानिक अभिलेख नहीं हो सकता है ?
   धारा 1(4) सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000
   (3) विभिन्न प्रकार के इलेक्ट्रानिक अभिलेखों की साक्ष्य लेखबद्ध किया जाना एवं उनके प्रमाणीकरण की प्रक्रिया
      (i) ई-मेल
      (ii) वेबसाईट की विषयवस्तु
      (iii) मैसेजिंग एप के द्वारा प्रेषित संदेश
      (iv) एस.एम.एस./एम.एम.एस
      (v) मोबाईल फोन
      (vi) कम्प्यूटर की हार्ड डिस्क
      (vii) डिजिटल फोटोग्राफ्स/डिजिटल वीडियो/डिजिटल आॅडियो
      (viii) मोबाइल फोन/डिजिटल कैमरे का मेमोरी कार्ड

(ix) सी.डी./डी.वी.डी./पेन ड्राइव/फ्लैश ड्राइव

(x) सी.सी.टी.वी. फुटेज

(xi) रोजनामचा सान्हा एवं प्रथम सूचना रिपोर्ट

(xii) सी.डी.आर. (कॉल डिटेल रिकार्ड)/(कॉल डाटा रिकार्ड)

(xiii) कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर से व्युत्पन्न जानकारी

(xiv) बैंकों से प्राप्त खाते के विवरण/एकाउन्ट स्टेटमेन्ट

(xv) बातचीत की ऑडियो रिकार्डिंग/कॉल इन्टरसेप्शन

(xvi) राजस्व अभिलेखों की कम्प्यूटर जनित प्रतिलिपि आदि।

(4) साक्ष्य लेखबद्ध करने के दौरान अपेक्षित सावधानी एवं न्यायालय का कर्तव्य

5. इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख की विश्वसनीयता एवं साक्ष्यिक मूल्य (**Probative force**)

6. प्रकीर्ण विषय (**Miscellaneous Issues**)

(1) सुपुर्दनामा।

(2) धारा 207 दं.प्र.सं. का अनुपालन।

(3) विचारण लंबित रहने के दौरान इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों का रखरखाव।

(4) इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों का अंतिम निराकरण।

(5) क्या धारा 65बी का प्रमाणपत्र इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख के आउटपुट का समसामयिक होना चाहिये ?

(6) धारा 65बी का प्रमाणपत्र कौन प्रदर्शित कर सकता है ?

(7) धारा 65बी का प्रमाण पत्र कौन जारी कर करता है ?

(8) जमानत आवेदन के निराकरण के प्रक्रम पर धारा 65बी(4) के प्रमाणपत्र की प्रयोज्यता।

(9) क्या इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख की ग्राह्यता के संबंध में साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65ए एवं 65बी के प्रावधान कुटुम्ब न्यायालय की कार्यवाहियों पर भी लागू होते हैं ?

1. प्रस्तावना (Introduction)

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी अब सर्वव्यापी है। यह युग ही डिजिटल हो चुका है और कम्प्यूटर, स्मार्टफोन एवं संचार के अन्य साधन प्रत्येक व्यक्ति की दिनचर्या का भाग बन गये हैं। केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकार के अधीन आने वाले अधिकांश विभागों एवं कार्यालयों में भी कम्प्यूटरीकरण का कार्य हो चुका है तथा प्रशासन भी ई-गवर्नेन्स के सिद्धांत पर बढ़ चला है। भारत के न्यायालय भी ई-कोर्ट्स प्रोजेक्ट के अधीन सूचना क्रांति से जुड़ चुके हैं। आर्टिफिशियल इन्टेलिजेंस के प्रभाव से आने वाले समय में इसका उपयोग निश्चित रूप से और बढ़ेगा।

आज अधिकांश जानकारी डिजिटल स्वरूप में है तथा संचार इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से हो रहा है जैसे - एस.एम.एस., ई-मेल, व्हाट्सएप, फेसबुक, वीडियो कॉन्फ्रेन्सिंग आदि। जिस तेजी से सूचना

प्रौद्योगिकी की उन्नति हो रही है, वह दिन अधिक दूर नहीं है जब इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख समस्त समकालीन दस्तावेजों का स्थान ले लेंगे।

कम्प्यूटर तकनीक के बढ़ते उपयोग ने हमारी सोच और दिनचर्या को ही बदल दिया है। बैंकिग तंत्र में कम्प्यूटरीकरण होने, ई-कॉमर्स की सफलता तथा सरकार द्वारा ''डिजिटल भारत अभियान'' चलाने के कारण बहुत कम समय में अधिकांश वाणिज्यिक संव्यवहार डिजिटल हो चुके हैं। निश्चित रूप से इनसे उत्पन्न विवाद जब न्यायालय में आएंगे तो पक्षकार इलेक्ट्रॉनिक एवं डिजिटल साक्ष्य ही प्रस्तुत करेंगे।

इसके समानांतर सायबर जगत के बढ़ते प्रभाव के कारण सायबर अपराधों में भी आमूलचूल बढ़ोत्तरी हो रही है। पहचान की चोरी, इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से धोखाधड़ी, क्रेडिट कार्ड संबंधी अपराध, फिशिंग, स्पूफिंग, सायबर आतंकवाद आदि भी बढ़ रहे हैं। इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य के बिना इन्हें साबित करना संभव ही नहीं होगा। पुलिस भी अब डिजिटल हो चली है। पुलिस तंत्र सी.सी.टी.एन.एस. (Crime and Criminal Tracking Network System) सॉफ्टवेयर से जुड़ चुका है तथा वो समय अब दूर नहीं है जब पुलिस द्वारा की जाने वाली विवेचना एवं अनुसंधान भी डिजिटल हो जाएगा। अतः आपराधिक मामलों में भी इलेक्ट्रॉनिक एवं डिजिटल साक्ष्य प्रस्तुत की जाएगी।

ऐसी परिस्थिति में बहुत जल्द विचारण न्यायालयों के समक्ष आने वाले प्रत्येक मामले में किसी न किसी रूप में इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य लेखबद्ध करना आवश्यक होगा। सिविल एवं आपराधिक, दोनों मामलों में अमुक इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य ग्राह्य है अथवा नहीं, इसकी साक्ष्य कैसे लेखबद्ध की जाए, इसका साक्ष्यिक मूल्य क्या होगा आदि प्रश्न न्यायालयों के समक्ष उत्पन्न होंगे। अनुभव एवं व्यवहार से हम यह कह सकते हैं कि यह प्रश्न किसी भी नजरिए से आसान नहीं होंगे।

अतः अब विचारण न्यायालय के न्यायाधीशों के लिए वह समय आ चुका है कि वे इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों की साक्ष्य में ग्राह्यता एवं उनके साबित किए जाने के तरीके संबंधी विषयों का अध्ययन करें। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा न्याय दृष्टांत ***अनवर पी.वी. विरूद्ध पी.के. बशीर***[1] में यह प्रतिपादित किया गया है कि यदि मूल इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 62 के अनुसार प्राथमिक साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जाता है तो वह उसी अधिनियम की धारा 65बी की शर्तों का पालन किए बिना भी साक्ष्य में ग्राह्य होगा। ऐसा अभिलेख प्राथमिक साक्ष्य का प्रभाव रखेगा परन्तु इसकी विश्वसनीयता विधि-विज्ञान परीक्षण[2]एवं न्यायालयीन प्रतिपरीक्षण की कसौटी पर स्थापित करनी होगी।

अतएव मूल इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख से संबंधित विधि एवं प्रक्रिया वही है जो किसी अन्य मूल दस्तावेज के संबंध में प्राविधित है। समस्या इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख के आउटपुट में उत्पन्न होती है जो कि द्वितीयक साक्ष्य के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। विचारण न्यायालय में भिन्न-भिन्न प्रकार के इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख प्रस्तुत किए जा सकते हैं। कुछ की प्रकृति ही ऐसी होती है कि उन्हें मूल स्वरूप में प्रस्तुत किया जाना संभव नहीं है इसलिए विचारण न्यायालयों का यह मौलिक कर्तव्य है कि वे इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख की ग्राह्यता एवं उन्हें साबित करने की प्रक्रिया संबंधी विधि से सजग एवं

1. Anvar P.V. v. P.K. Basheer, (2014) 10 SCC 473
2. Anvar P.V. v. P.K. Basheer, (2014) 10 SCC 473

सचेत रहें अन्यथा न्यायालय में साक्ष्य लेखबद्ध करने के दौरान उत्पन्न होने वाली आपत्तियों का तात्कालिक निराकरण करना संभव नहीं होगा।

ऐसा किया जाना इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि हाल ही में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा न्याय दृष्टांत सोनू उर्फ अमर विरूद्ध हरियाणाराज्य [3] में यह विधि प्रतिपादित की गई है कि किसी दस्तावेज को प्रमाणित करने की रीति एवं ढंग [4] प्रक्रियात्मक कार्य है और यदि विचारण के दौरान इस पर आपत्ति नहीं ली गई और पश्चात्वर्ती प्रक्रम जैसे अपील में ऐसी आपत्तियां अनुज्ञात की गईं तो इसके पक्षकार को अपने मामले की कमियों को दूर करने का अवसर नहीं मिलेगा।

सोनू उर्फ अमर (पूर्वोक्त) के निर्णय का परिणाम यह है कि यदि विचारण न्यायालय द्वारा इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख के संबंध में उठाई गई कोई वास्तविक (genuine) आपत्ति अस्वीकार कर दी गई अथवा किसी मिथ्या (bogus) आपत्ति को स्वीकार कर लिया गया, तो इसका परिणाम न्याय को निष्फल करना होगा।

इस लेख में इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख की साक्ष्य में ग्राह्यता, साक्ष्य का लेखबद्ध किया जाना, इन्हें साबित करने की रीति, इनका साक्ष्यिक मूल्य एवं इनसे जुड़े अन्य प्रकीर्ण विषयों की जटिल विधि एवं प्रक्रिया को सरलीकृत करने का प्रयास किया गया है।

2. इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य: अर्थान्वयन (Understanding Electronic Evidence) (इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य क्या है?)

''इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य'' को साक्ष्य अधिनियम, 1872 अथवा सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 में परिभाषित नहीं किया गया है। साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3 ''साक्ष्य'' को निम्न रूप से परिभाषित करती है -

''साक्ष्य'' - 'साक्ष्य शब्द से अभिप्रेत है और उसके अंतर्गत आते हैं -

(1) वे सभी कथन जिनके, जांचाधीन तथ्यों के विषयों के संबंध में न्यायालय अपने सामने साक्षियों द्वारा किए जाने की अनुज्ञा देता है या अपेक्षा करता है ;

ऐसे कथन मौखिक साक्ष्य कहलाते हैं।

(2) न्यायालय के निरीक्षण के लिए प्रस्तुत किए गये समस्त दस्तावेज, जिनके अंतर्गत इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख भी हैं।

ऐसे दस्तावेज दस्तावेजी साक्ष्य कहलाते हैं।

अर्थात इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख भी दस्तावेजी साक्ष्य में सम्मिलित हैं। वस्तुतः इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख में भी दस्तावेजों की भांति जानकारी एकत्रित एवं संसाधित (process) कर संरक्षित की जाती है इसलिए सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 के द्वारा संशोधित की गई ''साक्ष्य'' की परिभाषा में इसे दस्तावेजी साक्ष्य के साथ रखा गया है।

3. Sonu @ Amar v. State of Haryana, AIR 2017 SC 3441
4. mode or method of proof

अतः इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य को समझने के लिए ''इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख'' को समझना आवश्यक है। 'इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख' सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 की धारा 2(1)(न) में निम्नानुसार परिभाषित हैः-

> ***''2(1)(न) 'इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख' से किसी इलेक्ट्रॉनिक प्रारूप या माईक्रोफिल्म या कम्प्यूटर उत्पादित माईक्रोफिच में डाटा, अभिलेख या उत्पादित डाटा, प्रतिबिंब अथवा ध्वनि संधारित, प्राप्त या प्रेषित अभिप्रेत है।''***[5]

इसके साथ-साथ धारा 2(1)(ण) में परिभाषित 'डाटा' की परिभाषा को भी देखना समीचीन है जिसके अनुसारः-

> ***''2(1)(ण) 'डाटा' से सूचना, जानकारी, तथ्यों, संकल्पनाओं या अनुदेशों का निश्चय अभिप्रेत है जिन्हें एक निश्चित रीति से तैयार किया जा रहा है या तैयार किया गया है और जो कम्प्यूटर प्रणाली या कम्प्यूटर नेटवर्क में संसाधित किए जाने के लिए कार्यरत है, संसाधित किया जा रहा है या संसाधित किया गया है जो किसी भी स्वरूप में हो सकता है (जिसके अंतर्गत कम्प्यूटर प्रिंटआउट, चुम्बकीय या प्रकाशीय भण्डारण मीडिया, केन्द्रित कार्ड, छिद्रित टेप है) अथवा कम्प्यूटर की स्मृति में आंतरिक रूप से भंडारित हो सकता है।''***[6]

डाटा को इस जटिल परिभाषा को तोड़ें तो निम्न निचोड़ प्राप्त होता हैः-

डाटा- { सूचना जानकारी तथ्य संकल्पना या अनुदेश } - का निरूपण है जो एक निश्चित रीति से - { तैयार किया जा रहा है अथवा तैयार किया गया है }

और

जो कम्प्यूटर प्रणाली अथवा कम्प्यूटर नेटवर्क में { संसाधित किए जाने के लिए आशयित है, संसाधित किया जा रहा है, या संसाधित किया गया है }

जो किसी भी स्वरूप में हो सकता है या कम्प्यूटर की आंतरिक स्मृति में भंडारित हो सकता है।

5. 2(1)(t) "electronic record" means data, record or data generated, image or sound stored, received or sent in an electronic form or micro film or computer generated micro fiche;
6. 2(1)(o) "data" means a representation of information, knowledge, facts, concepts or instructions which are being prepared or have been prepared in a formalised manner, and is intended to be processed, is being processed or has been processed in a computer system or computer network, and may be in any form (including computer printouts magnetic or optical storage

अर्थात डाटा वस्तुतः ऐसी सूचना, जानकारी आदि है जो कम्प्यूटर तंत्र में संसाधित किए जाने के लिए आशयित है और जो कम्प्यूटर की आंतरिक स्मृति[7] में अथवा किसी बाह्य भंडारण यंत्र[8] में हो सकती है।

इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख ऐसे ही डाटा को कहा जाएगा जब वह इलेक्ट्रॉनिक प्रारूप में हो। इसकी परिभाषा को तोड़ने पर निम्न निचोड़ प्राप्त होता है :-

इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख से -
- डाटा का अभिलेख
- उत्पादित डाटा
- दृश्य
- ध्वनि

को
– संधारित
– प्राप्त अथवा
– प्रेषित

-किया जाना आशयित है जो -
- इलेक्ट्रॉनिक प्रारूप
-माईक्रोफिल्म अथवा
- माईक्रोफिच

- में हो सकता है।

'डाटा का अभिलेख' का तात्पर्य पूर्व से संधारित डाटा है। उत्पादित डाटा का अर्थ है संसाधित करने के उपरांत प्राप्त डाटा। इस प्रकार इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख होने की सर्वप्रथम आवश्यक शर्त यह है कि उसके डाटा को इलेक्ट्रॉनिक प्रारूप (सॉफ्ट कॉपी) में होना चाहिये। दूसरी शर्त यह है कि ऐसे अभिलेख का डाटा कम्प्यूटर तंत्र में संधारित किया जा सकता है अथवा ऐसे तंत्र से कहीं भेजा जा सकता है अथवा किसी अन्य तंत्र से प्राप्त किया जा सकता है।

इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य से ऐसे ही इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख अभिप्रेत हैं जो साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3 में परिभाषित दस्तावेजी साक्ष्य की परिधि में आते हैं। सूचना प्रौद्योगिकी (संशोधन) अधिनियम, 2008 के द्वारा मूल अधिनियम में धारा 79-क जोड़ी गई है जिसमें प्रथम बार 'इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य' शब्दों का प्रयोग किया गया है जो केन्द्रीय सरकार को यह शक्ति देती है कि वह इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य पर राय देने के लिए केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार के किसी विभाग, संस्था अथवा अभिकरण को इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य के परीक्षक के रूप में अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट करे।

इस धारा 79-क का स्पष्टीकरण 'इलेक्ट्रॉनिक रूप में साक्ष्य' को निम्नानुसार स्पष्ट करता है:-

> ***"स्पष्टीकरण - इस धारा के प्रयोजनों के लिए, "इलेक्ट्रॉनिक रूप में साक्ष्य" से, प्रमाणक मूल्य[9] की कोई सूचना अभिप्रेत है, जो इलेक्ट्रॉनिक रूप में भंडारित या पारेषित की जाती है और इसके अंतर्गत कम्प्यूटर साक्ष्य, अंकीय[10] दृश्य, अंकीय श्रृव्य, सेलफोन, अंकीय फैक्स मशीन भी हैं।"***

यद्यपि यह स्पष्टीकरण धारा 79-क के प्रयोजनों तक ही सीमित है परन्तु इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य को समझने के लिए यह प्रावधान महत्वपूर्ण है। इस प्रकार इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख व डाटा की परिभाषा एवं

7. internal memory
8. external storage device
9. probative value
10. digital

धारा 79-क के स्पष्टीकरण के आलोक में इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य के आवश्यक घटकों को निम्नानुसार विवेचित किया जा सकता है-

(1) कोई सूचना अथवा जानकारी होनी चाहिये,

(2) ऐसी सूचना अथवा जानकारी का प्रमाणिक मूल्य होना चाहिये,

(3) ऐसी सूचना अथवा जानकारी मूलतः इलेक्ट्रॉनिक प्रारूप में होनी चाहिये,

(4) ऐसी सूचना अथवा जानकारी दृश्य, ध्वनि अथवा अंकीय स्वरूप में हो सकती है,

(5) ऐसी सूचना अथवा जानकारी उत्पादित, संधारित, भंडारित, प्राप्त अथवा पारेषित की जा सकती है।

इस प्रकार जहां भी मूल सूचना अथवा जानकारी किसी कम्प्यूटर तंत्र की हार्ड डिस्क में, किसी पेन ड्राईव, सी.डी., डी.वी.डी. अथवा इन्टरनेट पर होगी, वह इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य की परिधि में आएगी। मोबाईल फोन से ली गई फोटो अथवा बनाया गया वीडियो, व्हाट्स एप से भेजा गया संदेश, कम्प्यूटर पर तैयार खाता-बही, किसी ई-कॉमर्स वेबसाईट पर किए गये संव्यवहार की जानकारी, ई-मेल, बैंक के ए.टी.एम. उपयोग की जानकारी, इन्टरनेट बैंकिंग अथवा मोबाईल बैंकिंग के रोजनामा विवरण11, विभिन्न सॉफ्टवेयर के द्वारा तैयार फाईलें, जी.पी.एस. ट्रैक आदि सभी इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख हैं और किसी मामले में वे सुसंगत होते हुये प्रमाणक मूल्य रखेंगे तो इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य की परिधि में आ जाएंगे।

इलेक्ट्रानिक साक्ष्य को एक और दृष्टि से समझा जा सकता है। सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 के पूर्व में उल्लेखित प्रावधानों के अध्ययन से हम कम से कम यह अनुमान तो लगा सकते हैं कि वही दस्तावेज इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख एवं इलेक्ट्रांनिक साक्ष्य की परिभाषा में आ सकते हैं जो किसी कम्प्यूटर तंत्र की स्मृति में संधारित करने के उद्देश्य से उत्पादित, भंडारित, प्राप्त अथवा पारेषित किये गये हों। जहां कोई दस्तावेज कम्प्यूटर पर मात्र टंकित किया जाता हो और उसके कम्प्यूटर पर संधारण का कोई आशय उसे तैयार करने वाला व्यक्ति न रखता हो, वहां ऐसा दस्तावेज मात्र कम्प्यूटर पर टंकित करने से इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख नहीं हो जाएगा।

सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 के द्वारा भारतवर्ष में दिनांक 17 अक्टूबर, 2000 से दस्तावेजों को इलेक्ट्रानिक प्रारूप में संधारित करने की व्यवस्था की गई है। अधिनियम की धारा 4 इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों की विधिमान्यता का प्रावधान करती है जिसके अनुसार -

4. इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों की विधिमान्यता- जहां कोई विधि यह उपबंध करती है कि सूचना या कोई अन्य विषय लिखित या टंकित या मुद्रित रूप में होगा, वहां ऐसी विधि में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, ऐसी अपेक्षा पूर्ण कर दी गई समझी जाएगी, यदि ऐसी सूचना या विषय;-

(क) किसी इलेक्ट्रॉनिक रूप में दिया जाता है या उपलब्ध कराया जाता है; और

(ख) इस प्रकार पहुंच योग्य है कि वह किसी पश्चात्वर्ती निर्देश के लिए उपयोग किए जाने योग्य है।

11. call logs, log details of internet banking etc.

अर्थात कोई भी दस्तावेज इलेक्ट्रॉनिक प्रारूप में तभी विधिमान्य होगा जब वह पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर प्राप्त कर उपयोग किया जा सके। अतः उन मामलों में जहां कम्प्यूटर का उपयोग मात्र टंकण कार्य आदि के लिए किया जाता हो और भविष्य में पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर उपयोग के लिए ऐसे इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख को संरक्षित न किया जा रहा हो, तो वहां ऐसा दस्तावेज इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख नहीं होगा।

उदाहरण स्वरूप न्यायालयों में लिए जाने वाले बयान सदैव कम्प्यूटर पर ही टंकित कराए जाते हैं परन्तु टंकित सामग्री बयान तब बनती है जब उसे न्यायालय के पीठासीन अधिकारी म.प्र. सिविल न्यायालय नियम, 1961 के नियम 147(4) एवं म.प्र. नियम एवं आदेश (आपराधिक) के नियम 186 के अनुसार अपने हस्ताक्षर द्वारा अभिप्रमाणित करते हैं। किसी भी विधि में बयान को कम्प्यूटर में सुरक्षित रखने की अपेक्षा नहीं की गई है और न ही न्यायालय ऐसे बयान को कम्प्यूटर पर सुरक्षित रखते हैं। कोई न्यायाधीश बयान को सुरक्षित रखते भी हैं तो वह मात्र भविष्य में प्रारूप का उपयोग करने के उद्देश्य से करते हैं। अतः ऐसा बयान कम्प्यूटर पर टाइप एवं तैयार होने के बावजूद इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख नहीं होगा। यही संकल्पना कम्प्यूटर पर टाइप होने वाले शपथपत्र, पत्राचार, कार्यालयीन प्रपत्र आदि पर भी लागू होगी जहां कम्प्यूटर का उपयोग मात्र टाइपराइटर के रूप में किया जाता है न कि दस्तावेज के इलेक्ट्रॉनिक प्रारूप में संरक्षित रखने के उद्देश्य से।

3. इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख: साक्ष्य में ग्राह्यता (Admissibility of Electronic Records in Evidence)

(1) प्राथमिक एवं द्वितीयक इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य -

अन्य दस्तावेजी प्रमाणों की ही भांति इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य का वर्गीकरण भी प्राथमिक एवं द्वितीयक साक्ष्य में किया जा सकता है। साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धाराएं 61, 62 एवं 64 इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य पर भी उसी प्रकार लागू होती हैं जैसे कि अन्य दस्तावेजी प्रमाणों पर परन्तु धारा 63 एवं 65 के प्रावधान इसके पश्चातवर्ती धारा 65ए एवं धारा 65बी के प्रावधानों के अध्याधीन कुछ आपवादिक परिस्थितियों में ही इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य पर लागू होते हैं।

इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य का प्राथमिक स्वरूप वही यंत्र है जिसमें मूल इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख भण्डारित, उत्पादित, प्राप्त, प्रेषित अथवा पारेषित किया जाता है। उदाहरण के लिये डिजिटल कैमरे से फोटो लेने पर कैमरे में लगा मेमोरी कार्ड प्राथमिक साक्ष्य होगा। मोबाईल फोन जिससे कोई संदेश भेजा गया हो अथवा जहां उसे प्राप्त किया गया हो, प्राथमिक साक्ष्य होंगे।

इसी प्रकार जब भी मूल यंत्र से ऐसे इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख की नकल/प्रतिलिपि बनाई जाएगी एवं उसका प्रिंट निकाला जाए अथवा सी.डी./डी.वी.डी. बनाई जाएगी अथवा उसका पारेषण किया जाएगा, तो उक्त प्रतिलिपि ऐसे इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख की द्वितीयक साक्ष्य होगी। उदाहरण के लिए, मोबाईल फोन से ली गई फोटो का प्रिंटआउट, किसी ई-मेल का प्रिंटआउट, किसी वीडियो फिल्म कीबनाई गई सी.डी. आदि द्वितीयक साक्ष्य होंगी।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ***अनवर पी.व्ही.*** (पूर्वोक्त) के मामले में यह प्रतिपादित किया गया है कि यदि कोई इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख अपने मूल स्वरूप में न्यायालय में प्रस्तुत किया जाता है तो साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 62 के प्रभाव से वह प्राथमिक साक्ष्य के रूप में ग्राह्य होगा और इसके लिए धारा 65बी की शर्तों का पालन करना आवश्यक नहीं है। साथ ही माननीय सर्वोच्च

न्यायालय द्वारा यह चेतावनी भी दी गई कि ऐसी प्राथमिक साक्ष्य की विश्वसनीयता विधि-विज्ञान परीक्षण एवं साक्षी के प्रतिपरीक्षण की कसौटी पर प्रमाणित करनी होगी।

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य संबंधी विधि साक्ष्य विधान के इस मौलिक सिद्धांत कि ''जहां प्राथमिक साक्ष्य उपलब्ध हो, वहां द्वितीयक साक्ष्य ग्राह्य नहीं होगी'', का अपवाद है। इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख विशाल सर्वर में, अत्यंत मंहगे उपकरणों में एवं दैनिक संव्यवहार में उपयोग किए जा रहे कम्प्यूटर तंत्र में संधारित किए जाते हैं, इन्हें प्रत्येक मामले में न्यायालय में प्रस्तुत करना न तो संभव है और न ही व्यावहारिक, इसलिए प्रिंटआउट अथवा सी.डी./डी.वी.डी. अथवा पेन ड्राईव जैसे बाह्य भंडारण यंत्र में संधारित द्वितीयक साक्ष्य को विधि द्वारा कतिपय शर्तें पूरा करने पर मूल/प्राथमिक साक्ष्य के स्थान पर ग्राह्य बनाया गया है।

(2) धारा 65ए एवं 65बी -

साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 59 यह प्रावधान करती है कि दस्तावेजों या इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों की अन्तर्वस्तु के अतिरिक्त सभी तथ्य मौखिक साक्ष्य द्वारा प्रमाणित किए जा सकेंगे अर्थात इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों की अन्तर्वस्तु मौखिक साक्ष्य द्वारा प्रमाणित नहीं की जा सकती है और इसके लिए उक्त अभिलेख को प्रस्तुत किया जाना आज्ञापक है।

जहां मूल इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख इस प्रकृति का है कि उसी स्वरूप में न्यायालय में प्रस्तुत किया जा सके, तो उसे प्राथमिक साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत कर प्रमाणित किया जा सकेगा। समस्या तब उत्पन्न होती है जब इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख के आउटपुट को न्यायालय में प्रस्तुत किया जाना आशयित हो। साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65ए के अनुसार इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों की अन्त्तवस्तुओं धारा 65बी के प्रावधानों के अनुसार प्रमाणित की जा सकेंगी।

धारा 65बी यह प्रावधान करती है कि:-

65बी. इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों की ग्राह्यता -

(1) इस अधिनियम में किसी बात के होते हुए भी, किसी इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख में अंतर्विष्ट किसी सूचना को भी, जो कम्प्यूटर द्वारा उत्पादित और किसी कागज पर मुद्रित, प्रकाशीय या चुम्बकीय मीडिया में भण्डारित, अभिलिखित या नकल की गई हो (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'कम्प्यूटर आउटपुट' कहा गया है), तब एक दस्तावेज समझा जाएगा, यदि प्रश्नगत सूचना और कम्प्यूटर के संबंध में, इस धारा में उल्लिखित शर्तें पूरी कर दी जाती हैं और वह मूल की किसी अंतर्वस्तु या उसमें कथित किसी तथ्य के साक्ष्य के रूप में, जिसका प्रत्यक्ष साक्ष्य ग्राह्य होता, अतिरिक्त सबूत या मूल को पेश किए बिना ही किन्हीं कार्यवाहियों में ग्राह्य होगा।

(2) कम्प्यूटर आउटपुट की बावत् उपधारा (1) में वर्णित शर्तें निम्नलिखित होंगी अर्थात-

(क) सूचना से युक्त कम्प्यूटर आउटपुट, कम्प्यूटर द्वारा उस अवधि के दौरान उत्पादित किया गया था जिसमें उस व्यक्ति द्वारा, जिसका कम्प्यूटर के उपयोग पर विधिपूर्ण नियंत्रण था, उस अवधि में नियमित रूप से किए गए

किसी क्रियाकलाप के प्रयोजन के लिए, सूचना भंडारित करने या प्रसंस्करण करने के लिए नियमित रूप से कम्प्यूटर का उपयोग किया गया था।

(ख) उक्त अवधि के दौरान, इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख में अंतर्विष्ट किस्म की सूचना या उस किस्म की जिससे इस प्रकार अंतर्विष्ट सूचना व्युत्पन्न प्राप्त की जाती है, उक्त क्रियाकलापों के सामान्य अनुक्रम में कम्प्यूटर में नियमित रूप से भरी गई थी।

(ग) उक्त अवधि के महत्वपूर्ण भाग में आद्‌योपांत, कम्प्यूटर समुचित रूप से कार्य कर रहा था अथवा यदि नहीं तो, उस अवधि के उस भाग की बाबत्‌, जिसमें कम्प्यूटर समुचित रूप से कार्य नहीं कर रहा था या वह उस अवधि में प्रचालन में नहीं था, ऐसी अवधि नहीं थी जिसमें इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख या उसकी अंतर्वस्तु की शुद्धता प्रभावित होती हो, और

(घ) इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख में अंतर्विष्ट सूचना ऐसी सूचना से पुनः उत्पादित या व्युत्पन्न की जाती है, जिसे उक्त क्रियाकलापों के सामान्य अनुक्रम में कम्प्यूटर में भरा गया था।

(3) जहां किसी अवधि में, उपधारा (2) के खण्ड (क) में यथा-उल्लिखित, उस अवधि के दौरान नियमित रूप से किए गए किन्हीं क्रियाकलापों के प्रयोजनों के लिए सूचना के भण्डारण या प्रसंस्करण का कार्य कम्प्यूटरों द्‌वारा नियमित रूप से निष्पादित किया गया था, चाहे वह -

(क) उस अवधि में कम्प्यूटरों के प्रचालन के संयोजन द्‌वारा; या

(ख) उस अवधि में उत्तरोत्तर प्रचालित विभिन्न कम्प्यूटरों द्‌वारा; या

(ग) उस अवधि में उत्तरोत्तर प्रचालित कम्प्यूटरों के विभिन्न संयोजनों द्‌वारा; या

(घ) उस अवधि में उत्तरोत्तर प्रचालन को अंतर्वलित करते हुए किसी अन्य रीति में हो, चाहे वह एक या अधिक कम्प्यूटरों और एक या अधिक कम्प्यूटरों के संयोजनों द्‌वारा किसी भी क्रम में हो,

उस अवधि के दौरान उस प्रयोजन के लिए उपयोग किए गए सभी कम्प्यूटर इस धारा के प्रयोजनों के लिए एकल कम्प्यूटर के रूप में माने जाएंगे और इस धारा में कम्प्यूटर के प्रति निर्देश का तद्‌नुसार अर्थ लगाया जाएगा।

(4) किन्हीं कार्यवाहियों में, जहां इस धारा के आधार पर साक्ष्य में विवरण दिया जाना वांछित है, निम्नलिखित बातों में से किसी बात को पूरा करते हुए प्रमाणपत्र, अर्थात्‌:-

(क) विवरण से युक्त इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख की पहचान करना और उस रीति का वर्णन करना जिससे इसका उत्पादन किया गया था।

(ख) उस इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख के उत्पादन में अन्तर्वलित किसी युक्ति को ऐसी विशिष्टियां देना, जो यह दर्शित करने के प्रयोजन के लिए समुचित हों, कि इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख का कम्प्यूटर द्‌वारा उत्पादन किया गया था।

(ग) ऐसे विषयों में से किसी पर कार्यवाही करना, जिससे उपधारा(2) में उल्लिखित शर्तें संबंधित हैं,

और किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षर किए जाने के लिए तात्पर्यित होना, जो सुसंगत युक्ति के प्रचालन या सुसंगत क्रियाकलाप के प्रबंध के (जो भी समुचित हो) संबंध में उत्तरदायी पदीय हैसियत में हो, प्रमाण-पत्र में कथित किसी विषय का साक्ष्य होगा; और इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए किसी ऐसे विषय के लिए यह कथन पर्याप्त होगा कि यह कथन करने वाले व्यक्ति के सर्वोत्तम ज्ञान और विश्वास के आधार पर कहा गया है।

(5) इस धारा के प्रयोजनों के लिएः-

(क) सूचना किसी कम्प्यूटर को प्रदाय की गई समझी जाएगी यदि यह किसी समुचित रूप में प्रदाय की गई है चाहे इस प्रकार किया गया प्रदाय सीधे (मानव मध्यक्षेप सहित या रहित) या किसी समुचित उपस्कर के माध्यम द्वारा किया गया हो;

(ख) चाहे किसी पदधारी द्वारा किए गए क्रियाकलापों के अनुक्रम में सूचना इसके भंडारित या प्रसंस्कृत किए जाने की दृष्टि से उक्त क्रियाकलापों के अनुक्रम से अन्यथा प्रचालित कम्प्यूटर द्वारा उक्त क्रियाकलापों के प्रयोजनों के लिए प्रदाय की जाती है। वह सूचना, यदि सम्यक् रूप से उस कम्प्यूटर को प्रदाय की जाती है तो, उन क्रियाकलापों के अनुक्रम में प्रदाय की गई समझी जाएगी;

(ग) कम्प्यूटर उत्पाद को कम्प्यूटर द्वारा उत्पादित समझा जाएगा, चाहे यह इसके द्वारा सीधे उत्पादित हो (मानव मध्यक्षेप सहित या रहित) या किसी समुचित उपस्कर के माध्यम से हो।

स्पष्टीकरण - इस धारा के प्रयोजनों के लिए, अन्य सूचना से व्युत्पन्न की गई सूचना के प्रति कोई निर्देश परिकलन, तुलना या किसी अन्य प्रक्रिया द्वारा उससे व्युत्पन्न के प्रति निर्देश होगा।''[12]

12. 65B. Admissibility of electronic records :-

(1) Notwithstanding anything contained in this Act, any information contained in an electronic record which is printed on a paper, stored, recorded or copied in optical or magnetic media produced by a computer (hereinafter referred to as the computer output shall be deemed to be also a document, if the conditions mentioned in this section are satisfied in relation to the information and computer in question and shall be admissible in any proceedings, without further proof or production of the original, as evidence of any contents of the original or of any fact stated therein of which direct evidence would be admissible.

(2) The conditions referred to in sub-section (1) in respect of a computer output shall be the following, namely :-

(a) the computer output containing the information was produced by the computer during the period over which the computer was used regularly to store or process information for the purposes of any activities regularly carried on over that period by the person having lawful

धारा 65बी जटिल शब्दों में प्रारूपित की गई प्रतीत होती है परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। यह प्रावधान अपने आप में एक पूर्ण संहिता है तथा इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों की विशिष्टता एवं विचित्र प्रकृति को देखते हुये विधायिका के द्वारा इसकी ग्राह्यता के संबंध में विस्तृत प्रावधान किए गये हैं।

धारा 65बी(1) सर्वोपरि खण्ड[13] है, अर्थात साक्ष्य अधिनियम के किसी भी अन्य प्रावधान (विशिष्टितः धारा 63, 64, व 65) पर अध्यारोही प्रभाव रखता है। इसके अनुसार –

control over the use of the computer;

(b) during the said period, information of the kind contained in the electronic record or of the kind from which the information so contained is derived was regularly fed into the computer in the ordinary course of the said activities;

(c) throughout the materiel part of the said period, the computer was operating properly or, if not, then in respect of any period in which it was not operating properly or was out of operation during that part of the period, was not such as to affect the electronic record or the accuracy of its contents; and

(d) the information contained in the electronic record reproduces or is derived from such information fed into the computer in the ordinary course of the said activities.

(3) Where over any period, the functions of storing or processing information for the purposes of any activities of any regularly carried on over that period as mentioned in clause (a) of sub-section (2) was regularly performed by computer, whether-

(a) by a combination of computers operating over that period; or

(b) by different computers operating in succession over that period; or

(c) by different combinations of computers operating in succession over that period; or (d) in any other manner involving the successive operation over that period, in whatever order, of one or more computers and one or more combinations of computers. All the computers used for that purpose during that period shall be treated for the purposes of this section as constituting a single computer; and references in this section to a computer shall be construed accordingly.

(4) In any proceedings where it is desired to give a statement in evidence by virtue of this section, a certificate doing any of the following things, that is to say,-

(a) identifying the electronic record containing the statement and describing the manner in which it was produced;

(b) giving such particulars of any device involved in the production of that electronic record as may be appropriate for the purpose of showing that the electronic record was produced by a computer;

(c) dealing with any of the matters to which the conditions mentioned in sub-section (2) relate, and purporting to be signed by a person occupying a responsible official position in relation to the operation of the relevant device or the management of the relevant activities (whichever is appropriate) shall be evidence of any matter stated in the certificate; and for the purpose of this sub-section it shall be sufficient for a matter to be stated to the best of the knowledge and belief of the person stating it.

(5) For the purposes of this section,-

(a) information shall be taken to be supplied to a computer if it is supplied thereto in any appropriate form and whether it is so supplied directly or (with or without human intervention) by means of any appropriate equipment;

(b) whether in the course of activities carried on by any official, information is supplied with a view to its being stored or processed for the purposes of those activities by a computer operated otherwise than in the course of those activities, that information, if duly supplied to that computer, shall be taken to be supplied to it in the course of those activities;

(c) a computer output shall be taken to have been produced by a computer whether it was produced by it directly or (with or without human intervention) by means of any appropriate equipment. Explanation.- For the purposes of this section any reference to information being derived from other information shall be a reference to its being derived there from by calculation, comparison or any other process.

13. non-obstante clause

इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख में अन्तर्विष्ट कोई सूचना जो कि कम्प्यूटर आउटपुट[14] है,

प्रश्नगत सूचना

दस्तावेज मानी जाएगी यदि इस धारा में वर्णित शर्तें - एवं

प्रश्नगत कम्प्यूटर

के संबंध में पूरी कर दी जाती हैं।

यदि उक्त शर्तें पूरी कर दी जाती हैं तो ऐसा कम्प्यूटर आउटपुट मूल इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख की अंतर्वस्तु अथवा उसमें अभिलिखित किसी तथ्य की साक्ष्य के रूप में मूल के किसी और प्रमाण एवं उसे पेश किए बिना किसी भी कार्यवाही में ग्राह्य होगा।

इसे दूसरे शब्दों में कहा जाए तो इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख का आउटपुट बिना मूल को आहूत किए एवं साबित किए ही मूल के समान साक्ष्य में ग्राह्य होगा यदि प्रश्नगत सूचना, जो उक्त इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख में संधारित है एवं प्रश्नगत कम्प्यूटर तंत्र, जिसमें उक्त सूचना संधारित है और जिससे आउटपुट प्राप्त किया गया है, से संबंधित शर्तों का समाधान कर दिया जाता है।

धारा 65बी (2) ऐसी शर्तों का उल्लेख करती है जो प्रश्नगत सूचना एवं प्रश्नगत कम्प्यूटर तंत्र के संबंध में उपधारा (1) में बताई गई हैं। इस उपधारा में कुल चार शर्तें हैं; प्रथम दो शर्तें सूचना की अखण्डता एवं पश्चात्वर्ती दो शर्तें कम्प्यूटर तंत्र की अखण्डता[15] को सुनिश्चित करती हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो इन चारों शर्तों का सार यह सुनिश्चित करना है कि प्रश्नगत सूचना पर किसी की अनाधिकृत पहंुच नहीं थी अर्थात सूचना में फेर-फार नहीं किया गया था और प्रश्नगत कम्प्यूटर उचित ढंग से कार्यरत था अर्थात सूचना के पुनरुत्पादन16 की शुद्धता एवं वास्तविकता सुनिश्चित थी।

इन चारों शर्तों को आसान शब्दों में समझने का प्रयास करें तो शर्तें यह हैं कि -

(1) कम्प्यूटर आउटपुट उस अवधि के दौरान तैयार किया गया था जब कम्प्यूटर का नियंत्रक नियमित रूप से उसका प्रयोग सूचना से संबंधित क्रियाकलापों के प्रयोजन से सूचना को भण्डारित अथवा संसाधित करने के लिए करता था।

(2) उक्त अवधि के दौरान उसी प्रकार की सूचना जो इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख में है, नियमित रूप से उक्त क्रियाकलाप के सामान्य अनुक्रम में उक्त कम्प्यूटर में भरी जाती थी।

(3) ऐसी अवधि के अधिकांश भाग (material period) के दौरान कम्प्यूटर समुचित ढंग से संचालित हो रहा था और यदि किसी भाग में वह संचालन से बाहर था तो इससे इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख और उसकी शुद्धता प्रभावित नहीं हुई थी।

(4) उक्त सूचना उक्त क्रियाकलापों के सामान्य अनुक्रम में कम्प्यूटर में भरी गई सूचना से पुनः उत्पादित की जाती है अथवा व्युत्पन्न होती है।

14. कम्प्यूटर आउटपुट में कम्प्यूटर द्वारा कागज पर मुद्रित (printed),बाह्य भंडारण यंत्र में भण्डारित (stored),अभिलिखित (recored),अथवा नकल (copied),की गई सूचना सम्मिलित है।

15. integrity

16. reproduction

धारा 65बी(3) एक से अधिक कम्प्यूटर के संयोजन अथवा उत्तरवर्ती संचालन कर तैयार नेटवर्क से प्राप्त सूचना को भी कम्प्यूटर से प्राप्त सूचना होने का प्रावधान करती है।

धारा 65बी(4) वह प्रावधान है जो इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य की ग्राह्यता का सिद्धांत बतलाता है। यही प्रावधान उस प्रमाणपत्र का प्रावधान करता है जो इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख के द्वितीयक साक्ष्य अथवा आउटपुट के साथ न्यायालय में प्रस्तुत करने पर मूल के बिना ही ऐसे आउटपुट को मूल की अंतर्वस्तु के प्रमाण के रूप में ग्राह्य बनाता है।

धारा 65बी(4) के अनुसार जहां किसी कार्यवाही में किसी इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख के आउटपुट के संबंध में साक्ष्य में कथन देने की वांछा की जाती है तो उपधारा में उल्लेखित तीन खण्डों में से किसी को भी करने वाला प्रमाणपत्र जो किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित किया जावे जो ऐसे इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख के उत्पादन, भण्डारण अथवा पारेषण के लिए उपयोग में लाये गये यंत्र के संचालन के संबंध में अथवा उन क्रियाकलापों के प्रबंधन के संबंध में जिनमें ऐसा इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख उत्पादित, भण्डारित अथवा पारेषित किया जाता है, उत्तरदायी पदीय स्थिति17 धारित करता है, ऐसे प्रमाणपत्र में उल्लेखित बात का साक्ष्य माना जाएगा। इसके साथ-साथ ऐसे प्रमाणपत्र को जारी करने वाले व्यक्ति के लिए यह पर्याप्त होगा कि उसमें उल्लेखित बातें उसके सर्वोत्तम ज्ञान एवं विश्वास में हैं।

धारा 65बी(5) इस धारा का स्पष्टीकरण खण्ड है।

(3) विधिक स्थिति एवं व्यवस्थाएं -

साक्ष्य अधिनियम की धारा 65बी(4) के अधीन इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख की द्वितीयक साक्ष्य के साथ प्रमाणपत्र प्रस्तुत किए जाने की आवश्यकता के संबंध में ***नवजोत संधु***[18] के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि धारा 65बी का अनुपालन किए जाने को विचार में लिए बिना साक्ष्य अधिनियम के अन्य प्रावधानों, धारा 63 एवं 65, के अनुसार इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख की द्वितीयक साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने में कोई बाधा नहीं है। इस मामले में मोबाईल फोन के कॉल डिटेल रिकॉर्ड्स (Call Detail Records)को सेवा प्रदाता कंपनी के अधिकारी की मौखिक साक्ष्य द्वारा प्रमाणित किया जाना उचित माना गया था जबकि कॉल डिटेल रिकॉर्ड्स इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख हैं।

यह व्यवस्था 18 सितम्बर, 2014 तक कायम रही जब माननीय सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायमूर्तिगण की पूर्णपीठ द्वारा ***अनवर पी.व्ही.*** (पूर्वोक्त) के मामले में ***नवजोत संधु***(पूर्वोक्त) के निर्णय को इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख की ग्राह्यता के बिन्दु की सीमा तक उलट दिया गया और यह प्रतिपादित किया गया कि किसी इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख का द्वितीयक प्रमाण तब तक साक्ष्य में ग्राह्य नहीं किया जाएगा जब तक कि साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65बी की आवश्यकताओं एवं अपेक्षाओं को पूरा न कर दिया जाए। माननीय न्यायालय द्वारा आगे यह भी प्रतिपादित किया गया कि धारा 65ए एवं 65बी इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख के संबंध में विशिष्ट प्रावधान हैं, इसलिए द्वितीयक साक्ष्य के संबंध में धारा 63 एवं 65 के सामान्य प्रावधानों पर वे अध्यारोही प्रभाव(Overriding effect) रखते हैं।

17. responsible official position
18. State v. Navjot Sandhu @ Afsan Guru, AIR 2005 SC 3830

यही विधि पुनः ***हरपाल सिंह उर्फ छोटा वि. पंजाब राज्य***[19] के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दोहराई गई है। इस प्रकार भारतवर्ष में विधि की स्थापित व्यवस्था यह है कि साक्ष्य अधिनियम किसी इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख को मौखिक साक्ष्य अथवा अन्य द्वितीयक साक्ष्य द्वारा प्रमाणित कियाजाना अनुज्ञेय नहीं करता है जब तक कि धारा 65बी की आवश्यकताओं को पूरा न कर दिया जाए।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इसी अनवर पी.व्ही. (पूर्वोक्त) के मामले में एक आपवादिक स्थिति भी स्पष्ट की गई है जब इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख के आउटपुट के साथ धारा 65बी(4) के प्रमाणपत्र की आवश्यकता नहीं होगी। यदि कोई सी.डी. अथवा डी.वी.डी. अपने आप में प्राथमिक साक्ष्य है, जैसे उसकी अंतर्वस्तु में ऐसे भाषण अथवा वीडियो हैं जो उन्माद फैला सकते हैं अथवा अश्लील चलचित्र हैं अथवा किसी कॉपीराईट का उल्लंघन करते हैं, तो वहां धारा 65बी(4) के प्रमाणपत्र की आवश्यकता नहीं होगी।

अनवर पी.व्ही. (पूर्वोक्त) का मामला एक चुनाव याचिका थी जिसमें एक प्रत्याशी ने दूसरे पर भ्रष्ट साधनों का उपयोग करने का आरोप लगाते हुये उसके कार्यक्रमों, भाषणों एवं गतिविधियों की विभिन्न यंत्रों से रिकार्डिंग कराई थी और उन्हें कम्प्यूटर में भरकर सी.डी. तैयार कर साक्ष्य में प्रस्तुत किया था। तब माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा धारा 65बी(4) के प्रमाणपत्र के अभाव में उक्त सी.डी. को अग्राह्य करार दिया गया था। साथ ही यह प्रतिपादित किया था कि यदि ऐसी सी.डी. प्रस्तुत की जाती जिसका प्रयोग विपक्षी प्रत्याशी अपने चुनाव प्रचार के दौरान कर रहा था, तो वह प्राथमिक साक्ष्य के रूप में ग्राह्य होती और उसके लिए प्रमाणपत्र की आवश्यकता नहीं थी।

इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य की ग्राह्यता संबंधी विधि किसी भी अन्य नवीन विधान की तुलना में अधिक परिवर्तनशील[20] है क्योंकि सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी में विकास के साथ इसमें भी आवश्यक बदलाव समीचीन हैं। धारा 65बी के अधीन इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख के द्वितीयक साक्ष्य के साथ प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने की अनिवार्यता के बिन्दु पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा हाल ही में न्यायदृष्टांत ***शफ़ी मोहम्मद वि. हिमाचल प्रदेश राज्य***[21] में विचार करते हुये यह मत प्रतिपादित किया गया है कि ***अनवर पी.वी.*** (पूर्वोक्त) के मामले में माननीय न्यायालय द्वारा इस प्रश्न पर विचार नहीं किया गया था कि जहां किसी समुचित कारण से इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख का द्वितीयक साक्ष्य प्रस्तुत करने वाला व्यक्ति धारा 65बी का प्रमाणपत्र लाने में सक्षम न हो तो क्या वहां भी प्रमाणपत्र की अनिवार्यता कायम रहेगी अथवा इसके कुछ अपवाद हो सकते हैं।

शफी़ मोहम्मद के निर्णय के प्रभाव के संबंध में जोती जर्नल फरवरी 2018 अंक का भाग-1 देखें।

19. Harpal Singh @ Chota v. State of Punjab, (2017) 1 SCC 734
20. dynamic
21. Shafhi Mohamad v. State of H.P., (2018) 2 SCC 801

माननीय सर्वोच्च न्यायालय की दो न्यायमूर्तिगण की पीठ द्वारा इस सिद्धांत पर विचार करते हुये कि साक्ष्य विधान को नवीन तकनीक एवं वैज्ञानिक उन्नति का लाभ लेने से मात्र प्रक्रियात्मक गतिरोधों के आधार पर इंकार नहीं किया जा सकता है, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि:-

> ***''साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 बी(4) के अनुसार प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने की प्रक्रियात्मक अनिवार्यता वहीं लागू होगी जहां इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख प्रस्तुत करने वाला व्यक्ति उसे उत्पन्न करने वाले यंत्र के नियंत्रण में हो। जहां कोई ऐसा पक्षकार इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख प्रस्तुत करता है जो उसे उत्पन्न करने वाले यंत्र के नियंत्रण में नहीं हो, तो वहां साक्ष्य अधिनियम की धारा 63 एवं 65 के प्रावधानों का उपयोग बाधित नहीं है। ऐसे मामलों में धारा 63 एवं 65 की प्रक्रिया निश्चित रूप से अपनाई जा सकती है। यदि ऐसी अनुमति नहीं दी गई तो यह ऐसे व्यक्ति को न्याय देने से इंकार करना होगा जिसके पास एक विश्वसनीय साक्ष्य/साक्षी है परन्तु उसे प्रमाणित करने की रीति नहीं है क्योंकि उससे एक ऐसे प्रमाणपत्र की अपेक्षा की जा रही है जो वह प्राप्त करके प्रस्तुत कर ही नहीं सकता है। अतः धारा 65 बी(4) के अधीन प्रमाणपत्र की आवश्यकता सदैव आज्ञापक नहीं है।''***

इस प्रकार माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अब यह व्यवस्था दी गई है कि धारा 65बी(4) के अधीन प्रमाणपत्र अब वहीं आवश्यक है जहां कि पक्षकार ने स्वयं इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख उत्पन्न अथवा प्राप्त अथवा पारेषित किया है। जहां उसे किसी अन्य व्यक्ति विशिष्टतः विपक्षी से इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख का द्वितीयक साक्ष्य प्राप्त हुआ हो और किसी कार्यवाही में वह उसे प्रस्तुत करना चाहता हो, तो वहां उससे प्रमाणपत्र की अपेक्षा नहीं की जा सकती है।

इसे एक उदाहरण से समझने का प्रयास करते हैं। 'ए' व्यक्ति ने किसी मॉल से किराने का सामान लिया जिसका देयक रू 3,000/- का था। दुकान से उन्हें कम्प्यूटर से निकाला गया देयक दिया गया जिस पर विक्रेता ने हस्ताक्षर भी नहीं किए। वस्तुतः मूल देयक तो कम्प्यूटर पर ही सॉफ्टवेयर से तैयार हुआ था, ग्राहक को तो मात्र उसका प्रिंटआउट प्राप्त हुआ था। घर जाकर देखने पर 'ए' को ज्ञात हुआ कि एक ही सामान को तीन अलग-अलग बार जोड़ा गया है। 'ए' ने सिविल वाद प्रस्तुत किया। यदि 'ए' उक्त देयक को साक्ष्य में प्रस्तुत करना चाहता है तो साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 63, 65(क) एवं 66 की संयुक्त प्रक्रिया द्वारा प्रस्तुत कर सकता है और उसे धारा 65बी(4) का प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं होगी। वहीं विक्रेता यदि देयक प्रस्तुत करना चाहता है तो उसे प्रिंटआउट के साथ धारा 65बी(4) का प्रमाणपत्र प्रस्तुत करना अनिवार्य होगा।

हाल ही में माननीन बाम्बे उच्च न्यायालय की खण्डपीठ के समक्ष न्यायदृष्टांत भूपेश उर्फ रिन्कू[22] में इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख की ग्राह्यता का प्रश्न पुनः अंतर्वलित हुआ। माननीय उच्च न्यायालय द्वारा प्रमाणपत्र की अंतर्वस्तु धारा 65बी(4) की अपेक्षा को पूरा न करने वाली पाए जाने पर प्रमाणपत्र को अग्राह्य ठहराया गया। इस मामले में अभिलेख पर मूल इलेक्ट्रानिक रिकार्ड (सी.सी.टी.वी. की हार्ड डिस्क) एवं उनके आउटपुट (सी.डी. व डी.वी.डी.), दोनों उपलब्ध थे, इसलिए मूल एवं आउटपुट चलाकर उनकी तुलना की गई और दोनों को हूबहू सही होना पाने पर विश्वास किया गया। इस मामले में मूल हार्ड डिस्क की उपलब्धता के कारण उसके आउटपुट की अंतर्वस्तु का मिलान किया गया था तथा धारा 65बी(4) के प्रमाणपत्र के अभाव में भी उसे साक्ष्य में ग्राह्य माना गया।

(4) धारा 65बी(4) के प्रमाणपत्र की अन्तर्वस्तु -

माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनवर पी.व्ही. (पूर्वोक्त) के न्याय दृष्टांत में धारा 65बी(4) के अधीन प्रस्तुत किए जाने वाले प्रमाणपत्र के लिए निम्नलिखित आवश्यक शर्तें बताई गई हैं:-

(1) एक प्रमाणपत्र होना चाहिये जो उक्त इलेक्ट्रानिक अभिलेख को परिलक्षित[23] करे जिसमें वह कथन अन्तर्विष्ट है जिसकी साक्ष्य दी जानी है;

(2) प्रमाणपत्र में उस प्रक्रिया का विवरण होना चाहिये जिसके द्वारा इलेक्ट्रानिक अभिलेख के आउटपुट का उत्पादन किया गया है;

(3) प्रमाणपत्र में उन यंत्रों का समुचित विवरण होना चाहिये जो इलेक्ट्रानिक अभिलेख के आउटपुट के उत्पादन में अन्तग्रस्त हों;

(4) प्रमाणपत्र को धारा 65बी(2) में वर्णित शर्तों से संबंधित विषयों पर विचार करना चाहिये;

(5) ऐसा प्रमाणपत्र उस व्यक्ति के द्वारा हस्ताक्षरित होना चाहिये जो सुसंगत यंत्र के संचालन अथवा सुसंगत क्रियाकलापों के प्रबंधन के संबंध में कोई उत्तरदायी पद ग्रहण करता हो;

(6) यह पर्याप्त होगा कि प्रमाणपत्र में उल्लेखित बातें उसके हस्ताक्षरकर्ता के सर्वोत्तम ज्ञान एवं विश्वास पर आधारित हैं।

(5) आदर्श प्रमाणपत्र-

साक्ष्य अधिनियम, 1872 में ऐसा कोई प्रारूप नहीं दिया गया है जो धारा 65बी (4) के अधीन अपेक्षित प्रमाणपत्र को दर्शाता हो। प्रमाणपत्र का प्रारूप भी प्रत्येक मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। परन्तु कतिपय मामलों में माननीय उच्च न्यायालयों के द्वारा कुछ प्रमाणपत्रों के प्रारूप को समुचित पाते हुये उन पर निर्भरता दर्शाई गई है, इसलिए ऐसे प्रमाणपत्रों को हम आदर्श के रूप में स्वीकार कर सकते हैं।

22. Bhupesh @ Rinku v. State of Maharashtra, 2018 LawSuit (Bom.) 867
23. identify

माननीय बाॅम्बे उच्च न्यायालय के समक्ष ए.आर.के. शिपिंग कम्पनी लिमिटेड 24 के मामले में ई-मेल के प्रिंटआउट के साथ धारा 65बी(4) साक्ष्य अधिनियम के अधीन प्रस्तुत किए गये प्रमाणपत्र की वैधानिकता प्रश्नगत थी। माननीय उच्च न्यायालय के द्वारा मामले की परिस्थितियों में उक्त प्रमाणपत्र को समुचित माना गया था। अतः हम उक्त मामले में प्रस्तुत प्रमाणपत्र के प्रारूप को आदर्श मान सकते हैं जो इस प्रकार है:-

प्रमाण-पत्र

(अंतर्गत धारा 65बी(4), साक्ष्य अधिनियम, 1872)

1. मैं कथन करता हूं कि मैं सुसंगत समय .... पर .... संस्था में .... के पद पर कार्यरत था।
2. मैं कथन करता हूं कि इस पद पर पदस्थ रहने के दौरान मैं प्रतिवादी से होने वाले समस्त संव्यवहारों के लिए व्यक्तिगत रूप से अंतर्ग्रस्त था और .... संस्था की ओर से प्रतिवादी को ई-मेल भेजने एवं ई-मेल प्राप्त करने के लिए नियोजित था।
3. मैं कथन करता हूं कि सभी ई-मेल/संव्यवहार/सूचना/संदेश संस्था के कम्प्यूटर तंत्र से मेरे द्वारा किए गये थे।
4. मैं कथन करता हूं कि अपने नियोजन के अनुक्रम में मैं उक्त कम्प्यूटर तंत्र का उपयोग करने के लिए प्राधिकृत था।
5. मैं कथन करता हूं कि उक्त कम्प्यूटर तंत्र जो कि एकल डेल कम्पनी के आॅल-इन-वन कम्प्यूटर एवं एच.पी. कम्पनी के एम. 208 पी.एस. प्रिंटर के साथ है, सम्पूर्ण संव्यवहार अवधि के दौरान उचित रूप से कार्यरत रहा है और उसमें संधारित जानकारी की वास्तविकता विकृत नहीं हुई है।
6. मैं कथन करता हूं कि संस्था द्वारा मुझे दिया गया गोपनीय आई.डी. एवं पासवर्ड मात्र मेरे द्वारा उपयोग किया जाता है।
7. मैं अपनी संस्था की ओर से प्रतिवादी के साथ हुये संव्यवहार के समस्त ई-मेल, जो मेरे द्वारा संस्था की ओर से प्रेषित किए गये थे और प्रतिवादी के द्वारा संस्था को प्रेषित किए गये थे, का प्रिंटआउट उसी कम्प्यूटर तंत्र से निकालकर लाया हूं।
8. मैं कथन करता हूं कि प्रिंटआउट की अंतर्वस्तु मूल ई-मेल के समरूप है जो उसी रूप में प्रिंट की गई है। ई-मेल प्रदर्श पी. -.............................. से प्रदर्श पी.- .... तक हैं।
9. प्रत्येक ई-मेल के साथ निकाला गया उसका शीर्षक .... भी प्रिंट कर प्रस्तुत किया गया है जो प्रदर्श पी.- .... से प्रदर्श पी. - .... तक है।
10. मैं प्रमाणित करता हूं कि प्रदर्श पी. - .... से प्रदर्श पी.-................................. के दस्तावेज इलेक्ट्रानिक मैसेज की सत्य प्रतिलिपि हैं और कम्प्यूटर यंत्र में ऐसी जानकारी संस्था के क्रियाकलापों में नियमित रूप से भरी, प्राप्त एवं पारेषित की जाती थी।

24. ARK Shipping Co. Ltd. v. GRT Shipmanagement Pvt. Ltd., 2007 (6) BCR 311

11. मैं कथन करता हूं कि उपरोक्त तथ्य मेरे सर्वोत्तम ज्ञान एवं विश्वास पर आधारित हैं।

हस्ताक्षर

नाम

पदनाम

इसी प्रकार माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष ***सिविल (मूल वाद) क्रमांक 2490/2014 एवं 14981/2014 टोयोटा जिदोशा काबुशिकि काइशा विरूद्ध दीपक मंगल एवं अन्य में*** विश्वप्रसिद्ध वाहन निर्माता कंपनी टोयोटा एवं दीपक मंगल के मध्य"PRIUS"व्यापार चिन्ह के उपयोग का विवाद विचारणीय था। टोयोटा कंपनी की मुख्य सूचना अधिकारी ने वल्ड वाईड वेब (इन्टरनेट) से विश्व भर में टोयोटा कम्पनी के "PRIUS"मॉडल वाहन के व्यापार चिन्ह एवं प्रतिलिप्याधिकार के पंजीयन से संबंधित जानकारी एकत्रित की थी और उसका प्रिंटआउट निकालकर साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65बी(4) की अपेक्षा के अनुरूप प्रमाणपत्र के साथ प्रस्तुत किया था। माननीय उच्च न्यायालय द्वारा इस प्रमाण पत्र को उचित माना गया। उक्त प्रमाण पत्र का हिन्दी अनुवाद निम्नानुसार है:-

प्रमाण-पत्र

(अंतर्गत धारा 65बी(4), साक्ष्य अधिनियम, 1872)

"मैंने सुसंगत जानकारी वल्ड वाईड वेब[25] से अपने कम्प्यूटर यंत्र पर डाउनलोड की थी जिसका प्रिंटआउट निकालकर प्रस्तुत किया गया है। मैं डेल कम्पनी का इन्सपिरान M2002L मॉडल लैपटॉप कम्प्यूटर का उपयोग करती हूं तथा कैनन कम्पनी के C21091PLमॉडल लेजर प्रिंटर का उपयोग करती हूं। मैं इस बात की अभिपुष्टि करती हूं कि मेरा कम्प्यूटर यंत्र एवं प्रिंटर कम्प्यूटर आउटपुट जैसे कि ई-मेल एवं इन्टरनेट से प्राप्त जानकारी के प्रिंटआउट लेने के नियमित उपयोग में आता है। मैने निम्नलिखित वेब पोर्टल से सुसंगत जानकारी पदीय संव्यवहारों के सामान्य अनुक्रम में प्राप्त की है:-

www.toyoya.com.au
www.toyota.co.uk
www.toyota.co.in

अपनी कम्पनी में पदस्थ होने के कारण उक्त कम्प्यूटर एवं प्रिंटर पर मेरा विधिक नियंत्रण है। उक्त कम्प्यूटर यंत्र एवं प्रिंटर सुसंगत सूचना प्राप्त करने के समय, उसके पूर्व एवं पश्चात् उचित रूप से कार्य करता रहा है एवं उससे प्राप्त इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख एवं उनकी अंतर्वस्तु की शुद्धता किसी भी प्रकार से परिवर्तित अथवा आक्षेपित नहीं की गई थी। उक्त कम्प्यूटर तंत्र से प्राप्त

25. World Wide Web (Internet)

प्रिंट आउट इंटरनेट पर उपलब्ध जानकारी का प्रतिरूप है। मैं उपरोक्त अभिकथन अपने सर्वोत्म ज्ञान तथा विश्वास में कर रही हूं।''

इस प्रकार यद्यपि साक्ष्य अधिनियम में धारा 65बी(4) के द्वारा प्रस्तावित प्रमाणपत्र का कोई निश्चित प्रारूप तो नहीं है परन्तु उपरोक्त दो प्रमाणपत्रों की सहायता से हम यथा आवश्यकता प्रमाणपत्र की अंतर्वस्तु को निश्चित कर सकते हैं।

4. इलेक्ट्रानिक अभिलेख : साक्ष्य लेखबद्ध किया जाना (Recording of Evidence)

(1) इलेक्ट्रानिक अभिलेख के प्रकार

विचारण न्यायालयों के समक्ष साक्ष्य लेखबद्ध किए जाने के समय विभिन्न प्रकार के इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख प्रस्तुत किए जाते हैं। यद्यपि सभी प्रकारों को निश्चित एवं सूचीबद्ध किया जाना तो संभव नहीं है परन्तु मोटे तौर पर निम्नलिखित प्रकार के इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख साक्ष्य में प्रस्तुत किए जाते हैंः-

(i) ई-मेल

(ii) वेबसाईट की विषयवस्तु

(iii) मैसेजिंग एप के द्वारा प्रेषित संदेश

(iv) एस.एम.एस./एम.एम.एस

(v) मोबाईल फोन

(vi) कम्प्यूटर की हार्ड डिस्क

(vii) डिजिटल फोटोग्राफ्स/डिजिटल वीडियो/डिजिटल आॅडियो

(viii) मोबाइल फोन/डिजिटल कैमरे का मेमोरी कार्ड

(ix) सी.डी./डी.वी.डी./पेन ड्राइव/फ्लैश ड्राइव

(x) सी.सी.टी.वी. फुटेज

(xi) रोजनामचा सान्हा एवं प्रथम सूचना रिपोर्ट

(xii) सी.डी.आर. (काॅल डिटेल रिकार्ड)/(काॅल डाटा रिकार्ड)

(xiii) कम्प्यूटर साॅफ्टवेयर से व्युत्पन्न जानकारी

(xiv) बैंकों से प्राप्त खाते के विवरण/एकाउन्ट स्टेटमेन्ट

(xv) बातचीत की आॅडियो रिकार्डिंग/काॅल इन्टरसेप्शन

(xvi) राजस्व अभिलेखों की कम्प्यूटर जनित प्रतिलिपि

(2) क्या इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख नहीं हो सकता है ?

प्रत्येक दस्तावेज इलेक्ट्रॉनिक प्रारूप में नहीं हो सकता है। सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 की धारा 1 की उपधारा (4) ही यह प्रावधान करती है कि :-

> ***"(4) इस अधिनियम की कोई बात, पहली अनुसूची में विनिर्दिष्ट दस्तावेजों या संव्यवहारों को लागू नहीं होगी परन्तु केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा पहली अनुसूची का, उसमें प्रविष्टियों को जोड़कर या घटाकर संशोधन कर सकेगी।"***

पहली अनुसूची के अनुसार निम्नलिखित दस्तावेज इलेक्ट्रिॉनिक प्रारूप में नहीं हो सकते हैं:-

(1) चेक के अतिरिक्त अन्य परक्राम्य लिखत;

(2) मुख्तारनामा;

(3) न्यास विलेख;

(4) वसीयत;

(5) अचल संपत्ति के विक्रय अथवा अंतरण की संविदा।

(6) अन्य दस्तावेज अथवा संव्यवहार जिन्हें केन्द्र सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट करे।

स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो उपरोक्त दस्तावेज मात्र परम्परागत मौलिक स्वरूप में ही अस्तित्व में हो सकते हैं और विधि उनके इलेक्ट्रॉनिक प्रारूप को मान्यता प्रदान नहीं करती है।

इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख किसी मामले के निष्कर्ष पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं क्योंकि उनकी अंतर्वस्तु कतिपय मामलों में निश्चायक प्रकृति की होती है। यदि साक्ष्य लेखबद्ध करते समय न्यायालय द्वारा सावधानी नहीं बरती गई तो निश्चित रूप से उसका परिणाम न्याय हानि को दिशा देगा। इसलिए साक्ष्य लेखबद्ध करते समय इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख की ग्राह्यता सुनिश्चित करने के पश्चात् विचारण न्यायालयों को इस प्रश्न पर भी गंभीरता से विचार करना चाहिये कि अमुक इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख को प्रमाणित करने की रीति[26] क्या होगी ?

निश्चित रूप से इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों की अंतर्वस्तु को प्रमाणित करने की रीति ऐसे अभिलेखों की प्रकृति पर निर्भर करती है और यह प्रत्येक मामले में भिन्न होती है। हम विभिन्न प्रकार के इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों को प्रमाणित करने की रीति पर विचार करते हैं और इस रीति के अनुसार ही न्यायालय को साक्ष्य लेखबद्ध करते समय सावधानी बरतनी चाहिये।

(3) विभिन्न प्रकार के इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों की साक्ष्य लेखबद्ध किया जाना एवं उनके प्रमाणीकरण की प्रक्रिया

(i) ई-मेल

ई-मेल वस्तुतः इलेक्ट्रॉनिक संदेश हैं जो इलेक्ट्रॉनिक प्रारूप में प्रेषक द्वारा अपनी आई.डी. से प्रेषिती की आई.डी. पर पारेषित किए जाते हैं। न्यायालय में यदि ई-मेल को प्रमाणित करना हो तो

26. mode of proof

प्राथमिक साक्ष्य ई-मेल सेवा प्रदाता के पोर्टल पर लॉग-इन करने के पश्चात् न्यायालय में ही ई-मेल दिखाना होगा। ऐसी रीति से अभिलेख पर कोई प्रमाण नहीं आ सकेंगे, इसलिए विधि की यह अपेक्षा है कि ई-मेल का कम्प्यूटर से प्रिंटआउट निकाला जाए और उसे न्यायालय में साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जाए। निश्चित रूप से ऐसा प्रिंटआउट द्वितीयक साक्ष्य (कम्प्यूटर आउटपुट) की श्रेणी में आएगा और उसके साथ साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65बी(4) का प्रमाणपत्र प्रस्तुत करना आज्ञापक होगा।

यहां उल्लेखनीय है कि मात्र प्रमाण-पत्र के साथ ई-मेल का प्रिंटआउट प्रस्तुत कर देने से इसे प्रेषित करने वाले अथवा प्राप्त करने वाले व्यक्ति की पहचान, उसकी स्थिति तथा संदेश की अंतर्वस्तु की सत्यता प्रमाणित नहीं हो जाऐगी। वस्तुतः ई-मेल फॉरेन्सिक्स अपने आप में एक विस्तृत विषय है जो डिजिटल फॉरेन्सिक्स की शाखा है। यहां ई-मेल के स्रोत एवं अंतर्वस्तु को ज्ञात करने का अध्ययन किया जाता है।

किसी ई-मेल की सत्यता/वास्तविकता तब सुनिश्चित की जा सकती है जब उसे प्रेषित करने वाले व्यक्ति की पहचान ज्ञात हो सके, वह स्थान ज्ञात किया जा सके जहां से ई-मेल प्रेषित किया गया था, वह समय निश्चित किया जा सके जब ई-मेल प्रेषित एवं प्राप्त किया गया था तथा ऐसे ई-मेल की अंतर्वस्तु को देखा व पढ़ा जा सके।

इसी कारण ई-मेल पारेषण के अंतर्राष्ट्रीय प्रोटोकॉल के अनुसार प्रत्येक सेवा प्रदाता को ई-मेल के साथ उसका शीर्षक[27] उत्पादित करना आज्ञापक है। सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 की धारा 7 भारत में कार्यरत प्रत्येक ई-मेल सेवा प्रदाता को ई-मेल का शीर्षक उत्पादित करना आज्ञापक बनाती है। इस शीर्षक में ई-मेल प्रेषित करने वाले व्यक्ति की आई.डी., उसके कम्प्यूटर तंत्र (नेटवर्क) का आई.पी. एड्रेस[28], ई-मेल सेवा प्रदाता के विभिन्न सर्वर का विवरण (जहां से ई-मेल पारेषित हुआ था), प्राप्तकर्ता का आई.डी., प्राप्तकर्ता के सेवा प्रदाता के सर्वर का विवरण, ई-मेल प्रेषित करने एवं प्राप्त करने का समय आदि उल्लेखित होता है।

यदि जी-मेल के अकाउंट से कोई व्यक्ति म.प्र. उच्च न्यायालय के अकाउंट पर ई-मेल भेजता है, जैसे adv.yashpalsingh@gmail.com से yashpal.singh@mphc.in पर तो दोनों स्थानों अर्थात प्रेषक व प्रेषिती के ई-मेल के साथ उनके शीर्षक उत्सर्जित होंगे। इस शीर्षक में adv.yashpalsingh@gmail.com का उपयोग करने वाले व्यक्ति का आई.पी. एड्रेस, ई-मेल करने का समय, ई-मेल करने के पश्चात वह किस-किस सर्वर पर गया उसका समय व विवरण, जी-मेल (गूगल) के सर्वर से म.प्र. उच्च न्यायालय के सर्वर पर आने का समय, सर्वर का एड्रेस और प्राप्तकर्ता का पता (आई.डी.) yashpal.singh@mphc.in का विस्तृत उल्लेख होगा।

27 Header of an e-mail

28 IP Address/Internet Protocol Address : यह एक सांख्यिक संकेत है जो इंटरनेट से जुड़े प्रत्येक कम्प्यूटर, प्रिंटर, मॉडेम, मोबाइल फोन अथवा अन्य उपकरण को विषिष्टतः आवंटित किया जाता है। यह संकेत वस्तुतः उपयोग किए गए उपकरण का पता होता है।

जाली[29] ई-मेल प्रेषित करना भी उतना ही आसान है जितना असल ई-मेल प्रेषित करना। इन्टरनेट पर अनेक ऐसी वेबसाईट हैं जहां से किसी भी आई.डी. से जाली ई-मेल भेजा जा सकता है और प्राप्तकर्ता को प्रथम दृष्टया ऐसा प्रतीत होगा कि उसे वास्तविक व्यक्ति ने यह ई-मेल भेजा है। उदाहरण के लिए "emkei.cz"जाली ई-मेल प्रेषित करने के लिए सर्वाधिक उपयोग की जाने वाली वेबसाईट है। यदि कोई व्यक्ति emkei.czपर जाकर adv.yashpalsingh@gmail.comसे yashpal.singh@mphc.in पर कोई ई-मेल प्रेषित करता है, तो प्राप्तकर्ता के ई-मेल के शीर्षक में सेवा प्रदाता अर्थात Googleके सर्वर पर ई-मेल गया होना दर्शित नहीं होगा। यहां adv.yashpalsingh@gmail.comसे तो ई-मेल प्रेषित किया जाना भी नहीं दिखेगा क्योंकि यहां से ई-मेल प्रेषित नहीं किया गया है। ऐसा ई-मेल जो सेवा प्रदाता के सर्वर पर गया ही न हो, कभी भी वास्तविक नहीं हो सकता है। सायबर अपराध फिशिंग[30] इसी प्रकार किया जाता है।

इस प्रकार ई-मेल के प्रिंटआउट के साथ उसके शीर्षक का प्रिंटआउट प्रस्तुत कर उसकी सत्यता एवं वास्तविकता अथवा उसके जाली होने के तथ्य को साबित किया जा सकता है। ई-मेल का शीर्षक निम्न चित्रों के अनुसार प्राप्त किया जा सकता है -

@gmail.com

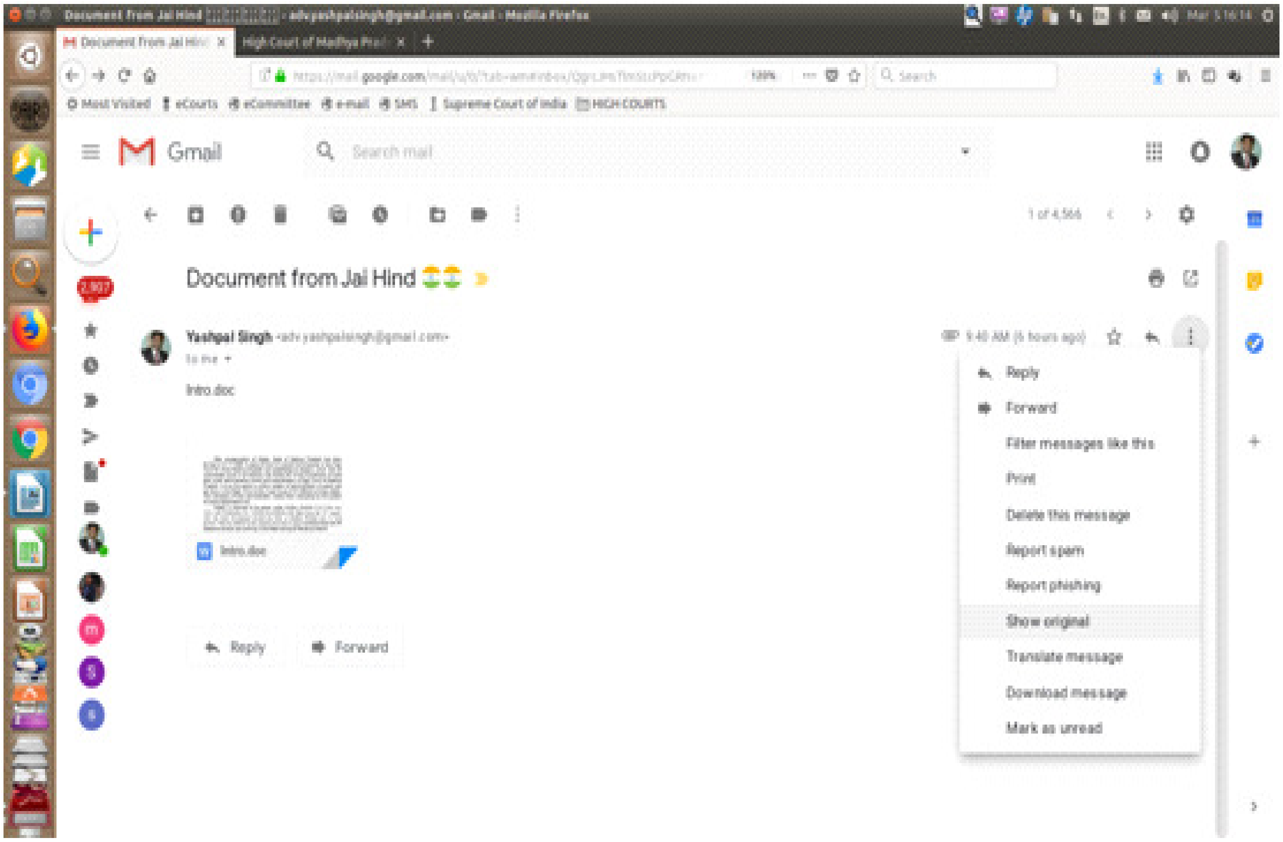

29. fake
30. Phishing

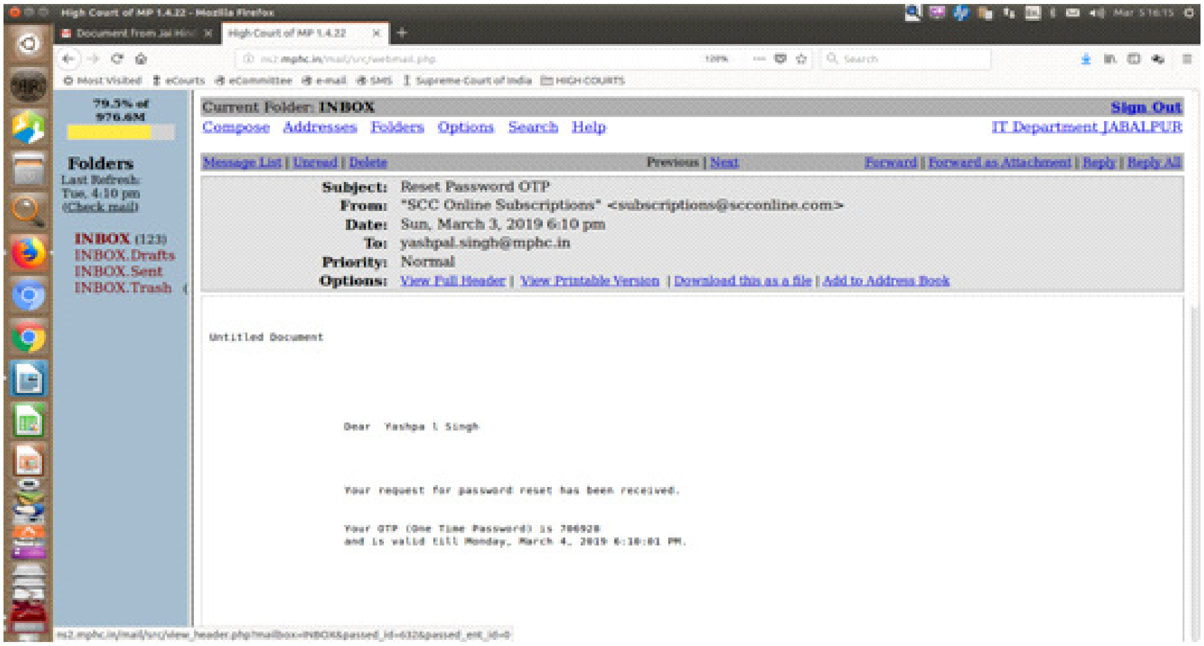

जी-मेल के एकाउन्ट से ई-मेल का शीर्षक संबंधित ई-मेल को खोलकर उसके सामने स्थित तीन बिन्दुओं वाले मेनु पर क्लिक करके उसमें उपलब्ध विकल्प Show Originalपर क्लिक करके प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार म.प्र. उच्च न्यायालय द्वारा प्रदत्त ई-मेल डोमेन में ई-मेल का शीर्षक प्राप्त करने के लिए संबंधित ई-मेल को खोलकर उसके विवरण में सबसे नीचे Options विकल्प के प्रथम खण्ड Vew Full Header पर क्लिक करके प्राप्त किया जा सकता है।

ई-मेल की अंतर्वस्तु के संबंध में साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 88ए उपधारणा का प्रावधान करती है जिसके अनुसार -

88-क. इलेक्ट्रानिक संदेशों के बारे में उपधारणा- न्यायालय यह उपधारित कर सकेगा कि प्रवर्तक द्वारा ऐसे प्रेषिती को किसी इलेक्ट्रानिक डाक परिसेवक के माध्यम से अग्रेषित कोई इलेक्ट्रानिक संदेश, जिसे ऐसे संदेश का संबोधित किया जाना तात्पर्यित है, उस संदेश के समरूप है, जो पारेषण के लिए उसके कम्प्यूटर में भरा गया था; किन्तु न्यायालय, उस व्यक्ति के बारे में, जिसके द्वारा ऐसा संदेश भेजा गया था, कोई उपधारणा नहीं करेगा।

यह धारा इस बात की उपधारणा का प्रावधान करती है कि जो सन्देश पारेषण के लिए कम्प्यूटर में भरा गया था, वही सन्देश पारेषित हुआ और प्रेषिती को प्राप्त हुआ था। यहां प्रेषक के संबंध में कोई उपधारणा नहीं है। प्ेरषक की पहचान ई-मेल के शीर्षक द्वारा साबित की जानी होगी।

न्याय दृष्टांत ***मेसर्स पी. आर. ट्रांसपोर्ट एजेन्सी***[31] में ई-मेल महत्वपूर्ण साक्ष्य पाया गया था। इस मामले में ई-मेल प्राप्त करने का स्थान प्रेषिती (recipient) का कार्यस्थल होना अभिनिर्धारित किया गया।

ई-मेल को प्रमाणित करने के संबंध में माननीय कलकत्ता उच्च न्यायालय के द्वारा न्याय दृष्टांत ***अब्दुल रहमान कुंजी***[32] में यह प्रतिपादित किया गया है कि ई-मेल को किसी व्यक्ति के ई-मेल एकाउंट से डाउनलोड कर प्रिंटआउट निकालकर साक्ष्य अधिनियम की धारा 65बी एवं धारा 88ए के प्रावधानानुसार प्रमाणित किया जा सकता है। इसी प्रकार माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा न्याय दृष्टांत एक्स.ए.सी.टी. स्टूडियो[33] में यह प्रतिपादित किया गया है कि जहां कोई पक्षकार ई-मेल की सत्यता व अंतर्वस्तु को चुनौती देता है वहां उसे खण्डन में अपने द्वारा प्राप्त ई-मेल का प्रिंटआउट प्रस्तुत करना चाहिये अन्यथा धारा 65बी(4) के अधीन प्रस्तुत प्रमाणपत्र के साथ प्रस्तुत ई-मेल का प्रिंटआउट उसे प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है।

(ii) वेबसाईट की विषयवस्तु

न्यायालय के समक्ष ऐसे अनेकों मामले आ सकते हैं जहां किसी वेबसाईट की विषयवस्तु अथवा अंतर्वस्तु को साबित किया जाना हो। उदाहरण के लिए मानहानि का प्रकाशन वेबसाईट पर हो सकता है, सिविल विवाद में कोई पक्षकार अपनी सहभागिता अपनी वेबसाईट की अंतर्वस्तु से प्रमाणित कर सकता है, कोई व्यक्ति वेबसाईट पर झूठा प्रचार करते हुए किसी अन्य को प्रवंचित कर छल कारित कर सकता है।

ऐसे मामलों में प्राथमिक इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए इन्टरनेट पर ऐसी वेबसाईट पर जाकर न्यायालय में उसे दर्शित करना होगा। यह पूर्णतः अव्यवहारिक है। अतः ऐसे मामलों में वेबसाईट की अंतर्वस्तु का प्रिंटआउट प्रस्तुत करना ही एकमात्र विकल्प हो सकता है। चूंकि प्रिंटआउट इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख का द्वितीयक साक्ष्य है इसलिए इसके साथ धारा 65बी(4) की अपेक्षानुसार प्रमाणपत्र भी संलग्न करना अनिवार्य होगा।

न्याय दृष्टांत ***गूगल इण्डिया***[34] में गूगल ईंक कम्पनी के द्वारा संधारित एक वेबसाईट पर वादी के विरूद्ध मानहानिकारक लेख प्रकाशित किया गया था। वेबसाईट के लेख को प्रमाणित करने के लिए उसे डाउनलोड करके प्रिंटआउट निकाला गया, डेस्कटॉप का स्क्रीनशॉट लेकर प्रिंट किया गया और धारा 65बी(4) के प्रमाणपत्र के साथ प्रस्तुत किया गया। इसे उचित प्रमाण माना गया और मध्यवर्ती सेवा प्रदाता35 होने के बावजूद गूगल इण्डिया को मानहानि के लिए दोषी ठहराया गया था।

इसी प्रकार ***टोयोटा शिदोशा*** (पूर्वोक्त) के मामले में व्यापार चिन्ह के संक्रांत[36] का विवाद था जहां इसी रीति से कम्पनी के प्रतिनिधि के द्वारा कम्पनी की वेबसाईट पर उपलब्ध जानकारी का प्रिंटआउट निकालकर धारा 65बी(4) के प्रमाणपत्र के साथ प्रस्तुत कर प्रमाणित किया गया था। इसे माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के द्वारा उचित माना गया।

31. M/s. PR Transport Agency v. Union of India, AIR 2006 All. 23
32. Abdul Rahman Kunji v. State of West Bengal, MANU/WB/0828/2014
33. XACT Studio International v. Liwona SP Zoo, 2018 LawSuit (Del) 2864
34. Google India Pvt. Ltd. And Ors v. Visaka Industries Limited, 2011 Lawsuit (AP) 188
35. intermediary
36. passing of trademark

(iii) मैसेजिंग एप[37] के द्‌वारा प्रेषित संदेश

मैसेजिंग एप जैसे व्हाट्सएप, फेसबुक मैसेन्जर, टेलीग्राम आदि में संदेश प्रेषित करने की सुविधा होती है जिसमें लिखी हुई बात, कोई दृश्य, आॅडियो अथवा वीडियो फाइल प्राप्त अथवा प्रेषित की जा सकती है। वस्तुतः यह एप भी संचार का माध्यम हैं जिसके द्‌वारा दो अथवा अधिक व्यक्ति आपस में संवाद[38] करते हैं। यह एप मोबाईल फोन में इंस्टाॅल होते हैं और इनकी अंतर्वस्तु मोबाईल फोन में ही संधारित होती है। इनके लाॅग (log) भी प्रतिदिन मोबाईल फोन में स्वयमेव उत्सर्जित होते हैं तथा बैकअप भी सेटिंग अनुसार मोबाईल फोन अथवा सेवा प्रदाता के पास उत्सर्जित होते रहते हैं।

ऐसे मामलों में प्राथमिक इलेक्ट्राॅनिक साक्ष्य मूल मोबाईल फोन ही होंगे और उन्हें न्यायालय में प्रस्तुत करना पूर्णतः अव्यवहारिक है। इन मामलों में भी सुसगत संदेशों का प्रिंटआउट अथवा वीडियो की सी.डी. अथवा आॅडियो की अनुलिपि[39] तैयार कर धारा 65बी(4) के द्‌वारा अपेक्षित प्रमाणपत्र के साथ प्रस्तुत कर उन्हें प्रमाणित किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त इन सभी मैसेंजिंग एप में संदेशों को ई-मेल करने की सुविधा होती है। इन्हें ई-मेल से स्वयं को प्रेषित कर प्रिंटआउट निकालकर ई-मेल को प्रमाणित किया जा सकता है। ई-मेल से प्राप्त विवरण में संदेश प्रेषित करने वाले व्यक्ति की पहचान (फोन नम्बर) संदेश की तिथि व समय तथा संदेश प्राप्त अथवा प्रेषित था, आदि विवरण भी होते हैं जो उसकी विश्वसनीयता से न्यायालय को संतुष्ट कर सकते हैं।

इसके साथ-साथ सुसंगत मैसेज का स्क्रीनशाॅट[40] लेकर भी उसका प्रिंटआउट धारा 65बी(4) के प्रमाणपत्र के साथ न्यायालय में प्रस्तुत कर प्रमाणित किया जा सकता है। परन्तु यहां यह ध्यान रखना आवश्यक है कि इन मामलों में प्रस्तुत प्रिंटआउट अथवा सी.डी. मात्र संदेश की अंतर्वस्तु की साक्ष्य हो सकते हैं। इन्हें प्रेषित अथवा प्राप्त करने वाले व्यक्ति की पहचान स्थापित करने के लिए पृथक साक्ष्य प्रस्तुत करना आवश्यक एवं अपेक्षित है।

(iv) एस.एम.एस./एम.एम.एस

एस.एम.एस. (शार्ट मैसेज सर्विस) अथवा एम.एम.एस. (मल्टीमीडिया मैसेज सर्विस) दूरसंचार क्रांति के प्रारंभिक दिनों से उपयोग की जा रही सेवाएं हैं जो कि मोबाईल नेटवर्क का उपयोग कर संदेशों का आदान-प्रदान करने की सुविधा देती हैं। यहां भी किसी मोबाईल फोन से प्रेषित अथवा उसमें प्राप्त एस.एम.एस./एम.एम.एस का प्राथमिक साक्ष्य ऐसा मोबाईल फोन ही होगा इसलिए एस.एम.एस./एम.एम.एस को प्रमाणित करने के लिए उनका प्रिंटआउट ही सर्वोत्तम साक्ष्य हो सकता है।

एस.एम.एस./एम.एम.एस को प्रिंट करने के लिए मोबाईल फोन को कम्प्यूटर से जोड़कर इनका निष्कर्षन[41] किया जा सकता है और उसके बाद प्रिंटआउट निकाला जा सकता है। यहां धारा 65बी(4) का प्रमाणपत्र संलग्न करना अनिवार्य होगा जिसमें इस निष्कर्षन की प्रक्रिया का विवरण हो। इसके

37. Messaging App
38. interact
39. transcript
40. screenshot
41. extraction

साथ-साथ स्क्रीनशाॅट का प्रिंटआउट भी उपयोगी तरीका हो सकता है। यहां भी प्राप्त एस.एम.एस./एम.एम.एस की अंतर्वस्तु का प्रमाण उक्त प्रिंटआउट हो सकता है परन्तु प्रेषक अथवा प्रेषिति की पहचान पृथक साक्ष्य द्वारा स्थापित करनी होगी।[42]

(v) मोबाईल फोन

संचार क्रांति के युग के द्वितीय चरण में स्मार्टफोन एक ऐसा उपकरण बन कर उभरा है जिसने मानव जाति की दिनचर्या को सबसे अधिक प्रभावित किया है। पृथ्वी की कुल जनसंख्या का एक तिहाई हिस्सा प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से स्मार्टफोन का उपयोग करता है। यह स्मार्टफोन वस्तुतः कम्प्यूटर यंत्र हैं। स्मार्टफोन की आंतरिक स्मृति[43] की कम्प्यूटर की हार्ड डिस्क से एवं बाह्य स्मृति[44] (मेमोरी कार्ड) की बाह्य भण्डारण यंत्र[45] से तुलना की जा सकती है। माननीय आंध्रप्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा न्याय दृष्टांत ***सैयद आसिफुद्दीन***[46] में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि मोबाइल फोन भी एक कम्प्यूटर है।

एक स्मार्टफोन में साक्ष्यिक मूल्य की क्या सामग्री हो सकती है, इस प्रश्न पर विचार करें तो हम पाएंगे कि मोबाईल फोन में प्रत्यक्ष रूप से दिखने वाली प्रत्येक जानकारी के साथ-साथ साॅफ्टवेयर द्वारा उत्सर्जित जानकारी जैसे logs आदि भी महत्वपूर्ण साक्ष्य हो सकते हैं। इसे उदाहरण के साथ देखें तो मोबाइल फोन से लिये गये फोटोग्राफ अथवा वीडियो इस बात के प्रमाण हो सकते हैं कि वह किस स्थान पर लिये गये हैं (Location), उसमें अमुक व्यक्ति के साथ कोई और है (पहचान/संबंध), किसी स्थान की अवस्था दिख रही है (Status of property) आदि। मोबाइल फोन में प्राप्त एस.एम.एस. किसी संव्यवहार का प्रमाण हो सकते हैं जैसे क्रेडिट कार्ड से भुगतान करने पर कंपनी का मैसेज आना कि अमुक दुकान पर भुगतान किया गया था। मोबाइल फोन पर प्राप्त अथवा तैयार दस्तावेज उसकी अंतर्वस्तु का प्रमाण हो सकता है। मोबाइल फोन पर उपयोग किये जा रहे सोशल मीडिया के साधनों पर देखा गया अथवा किया गया कोई मत/अभिमत (Post) मानहानि अथवा राजद्रोह के मामलों में महत्वपूर्ण प्रमाण हो सकता है। इसी प्रकार मोबाइल फोन पर जो आॅपरेटिंग सिस्टम उपयोग होते हैं वह प्रतिदिन बिना किसी विशेष कमाण्ड के स्वमेव ऐसी बहुत सी जानकारी उत्सर्जित करते हैं जो मोबाइल फोन के उपयोग (इंटरनेट लाॅग), उपयोगकर्ता की रूचि के विषय (area of interest) एवं मोबाइल फोन से डिलीट की गई सामग्री को पुनः प्राप्त करने का आधार हो सकते हैं अथवा यह स्थापित कर सकते हैं कि क्या सामग्री डिलीट की गयी थी।

संभवतः इन महत्व को देखते हुये विशेषज्ञों ने डिजिटल विधिविज्ञान[47] में मोबाइल विधिविज्ञान[48] को एक पृथक विषय के रूप में रखा है।

42. KYC (Know Your Customer) के विवरण से मोबाइल सेवा प्रदाता से प्राप्त/प्रस्तुत कराई जा सकती है। इसके साथ-साथ प्रत्यक्ष अथवा विवक्षित स्वीकारोक्ति एवं मौखिक साक्ष्य द्वारा भी पहचान स्थापित की जा सकती है।
43. internal memory
44. external memory
45. external storage device
46. Syed Asifuddin v. State of AP, 2005 CriLJ 4314
47. Digital Forensics
48. Mobile Forensics

यदि मूल रूप से तैयार दस्तावेज (फोटोग्राफ/वीडियो/आॅडियो/वर्ड फाइल आदि) मोबाइल की आंतरिक स्मृति में तैयार एवं संधारित होते हैं तो मूल मोबाइल फोन ही उसका प्राथमिक साक्ष्य होगा। यदि दस्तावेज बाह्य स्मृति में तैयार एवं संधारित होता है तो ऐसा एस.डी. कार्ड/मेमोरी कार्ड प्राथमिक साक्ष्य होगा। दोनों ही स्थितियों में मूल मोबाइल फोन अथवा मेमोरी कार्ड को न्यायालय में साक्ष्य के दौरान प्रस्तुत करना अव्यवहारिक होगा और सर्वोत्तम साक्ष्य ऐसे इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख का आउटपुट ही हो सकता है। आउटपुट चाहे प्रिंटर से प्राप्त किया जाए अथवा सी.डी./डी.वी.डी./पेन ड्राइव में काॅपी किया जाए, इसके साथ धारा 65बी(4) का प्रमाणपत्र प्रस्तुत करना अनिवार्य होगा।

मोबाइल फोन की अंतर्वस्तु को साक्ष्य में प्रस्तुत करते समय एक और परिस्थिति हो सकती है। जिस इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख के आउटपुट को द्वितीयक साक्ष्य के रूप में न्यायालय में प्रस्तुत किया जा रहा है, यदि उसका प्राथमिक साक्ष्य मूल मोबाइल फोन में उपलब्ध है तो न्यायालय में द्वितीयक साक्ष्य के साथ मूल मोबाइल फोन भी प्रस्तुत कर द्वितीयक साक्ष्य की सत्यता एवं विश्वसनीयता को तुलना करके परखा जा सकता है। तुलना करने के पश्चात् मूल मोबाइल फोन प्रस्तुतकर्ता को लौटाकर तुलना करने एवं तुलना करने पर संतुष्ट होने पर तत्संबंधी टिप्पणी बयानशीट पर लिखी जानी चाहिये। इस प्रक्रिया को अपनाने से साक्षी के प्रतिपरीक्षण के दौरान भी मूल इलेक्ट्राॅनिक रिकार्ड के अवलोकन का अवसर विपक्षी के पास रहेगा जो ऋजु विचारण[49] को सुनिश्चित करेगा।

(vi) कम्प्यूटर की हार्ड डिस्क

डिजिटल फाॅरेंसिक्स के क्षेत्र में अन्वेषण एजेंसियों के समक्ष सबसे अधिक महत्वपूर्ण साक्ष्य किसी कम्प्यूटर तंत्र की हार्ड डिस्क ही होती है। वहीं किसी हार्ड डिस्क को जप्त कर उसे सुरक्षित रखना और मूल स्वरूप में न्यायालय में प्रस्तुत करना भी अनुसंधान अधिकारी के लिए कठिन कार्य है। किसी डिजिटल साक्ष्य को बिना परिवर्तित किए मूल स्वरूप में न्यायालय में प्रस्तुत करने के पूर्व अन्वेषण एजेंसियां भी हार्ड डिस्क को देखती है और इसमें से साक्ष्यिक मूल्य का कोई प्रमाण प्राप्त करने का प्रयास करती हैं। ऐसे में मूल हार्ड डिस्क में परिवर्तन की संभावना बनी रहती है और मामूली से परिवर्तन के कारण इसका साक्ष्यिक मूल्य समाप्त हो सकता है। अतः हार्ड डिस्क की जप्ती के समय अपेक्षित सावधानियां अपनाना एवं आदर्श कार्य पद्धति[50] का पालन करना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसका अभाव न्यायालयों को विपरीत अनुमान लगाने के लिए विवश करेगा।

हार्ड डिस्क का दूसरा पहलू यह है कि किसी हार्ड डिस्क में से बहुत कम सामग्री ही किसी मामले के विचारण में न्यायालय के लिए सुसंगत होगी। उदाहरण के लिए कोई वीडियो फिल्म, कुछ फाइलें, लाॅग रिपोर्टस् आदि। ऐसी स्थिति में हार्ड डिस्क के मूल्य को देखते हुए पूरी हार्ड डिस्क को जप्त कर न्यायालय में साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करना अव्यावहारिक होगा।

ऐसी स्थिति में न्यायालयों में आने वाले मामलों में दोनों ही स्थितियां निर्मित होंगी। कुछ मामलों में मूल हार्ड डिस्क प्रस्तुत की जाएगी तो कुछ मामलों में मूल हार्ड डिस्क की अंतर्वस्तु को सी.डी./डी.वी.डी., पेन ड्राइव में काॅपी करके अथवा प्रिंटआउट निकालकर प्रस्तुत किया जाएगा। जहां भी मूल हार्ड डिस्क प्रस्तुत की जाएगी, वहां हार्ड डिस्क प्राथमिक साक्ष्य के रूप में ग्राह्य होगी। जहां हार्ड

49. fair trial
50. Standard Operating Procedure

डिस्क की अंतर्वस्तु का आउटपुट प्रस्तुत किया जाता है, वहां ऐसे आउटपुट के साथ धारा 65बी(4) का प्रमाणपत्र प्रस्तुत करना आउटपुट को साक्ष्य में ग्राह्य बनाने के लिए आवश्यक होगा।

न्याय दृष्टांत ***किशन त्रिपाठी***[51] में हत्या की घटना सी.सी.टी.वी. कैमरे में रिकार्ड हुई थी। इसे प्रमाणित करने के लिए डिजिटल वीडियो रिकार्डर की मूल हार्ड डिस्क जप्त कर न्यायालय में प्रस्तुत की गई थी जिसे उचित माना गया था। इसी प्रकार ***महाराष्ट्र राज्य विरूद्ध राजेश***[52] के मामले में सी.सी.टी.वी. फुटेज के भाग को हार्ड ड्राइव से सी.डी. पर कॉपी करके धारा 65बी(4) के प्रमाणपत्र के साथ प्रस्तुत करने पर बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा उसे साक्ष्य में ग्राह्य माना गया। इस मामले में चार साक्षियों ने सी.सी.टी.वी. फुटेज प्रमाणित की थी - प्रथम वह जिसने मूल डिजिटल वीडियो रिकार्डर से सुसंगत फुटेज सी.डी. में कॉपी की थी, द्वितीय मृतक के पिता जिन्होंने सी.सी.टी.वी. फुटेज देखकर अभियुक्त को पहचाना था, तृतीय पेट्रोल पंप का प्रबंधक जहां सी.सी.टी.वी. कैमरा लगाया गया था और चैथे विधि विज्ञान प्रयोगशाला के वैज्ञानिक अधिकारी जिन्होंने सी.सी.टी.वी. फुटेज की सी.डी. का विश्लेषण कर उसके सही होने का अभिमत दिया था।

(vii) डिजिटल फोटोग्राफ्स/डिजिटल वीडियो/डिजिटल ऑडियो

इस डिजिटल युग में प्रत्येक स्मार्टफोन एक उच्च गुणवत्ता के कैमरे के साथ ही बनाया जा रहा है। पृथ्वी की कुल जनसंख्या के लगभग 60 प्रतिशत लोगों के हाथ में डिजिटल कैमरा उपलब्ध है। निश्चित रूप से साधन की उपलब्धता उसके उपयोग को आसान बना रही है और इसके कारण डिजिटल फोटोग्राफ्स और डिजिटल वीडियो के रूप में न्यायालयों के समक्ष साक्ष्य प्रस्तुत की जा रही हैं।

मोबाइल फोन हो अथवा डिजिटल कैमरा, यदि ली गई फोटोग्राफ को संधारित करने के लिए फोन अथवा कैमरा की आंतरिक स्मृति का उपयोग किया जा रहा है, तो ऐसा फोन व कैमरा ही मूल इलेक्ट्रॉनिक रिकार्ड होगा। वहीं यदि एस.डी. कार्ड जैसे किसी बाह्य भंडारण यंत्र का उपयोग किया जा रहा है तो ऐसा कार्ड मूल इलेक्ट्रॉनिक रिकार्ड होगा। यदि ऐसा मोबाइल फोन, एस.डी. कार्ड अथवा कैमरा साक्ष्य में प्रस्तुत किया जाता है तो वह मूल इलेक्ट्रॉनिक रिकार्ड होने के कारण प्राथमिक साक्ष्य के रूप में ग्राह्य होगा।

यहां उल्लेखनीय है कि साक्ष्य में मूल मोबाइल फोन, कैमरा अथवा मेमोरी कार्ड प्रस्तुत करने से भी न्यायालय को उसकी अंतर्वस्तु सहज रूप से अवलोकन हेतु उपलब्ध नहीं होगी। न्यायालय के अवलोकन हेतु आउटपुट प्रस्तुत करने की अपेक्षा की जानी चाहिए। स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो न्यायालयों को फोटोग्राफ व वीडियो संधारित करने वाले मूल इलेक्ट्रॉनिक रिकार्ड के साथ उसका आउटपुट प्रस्तुत करने की भी अपेक्षा करनी चाहिए।

जहां डिजिटल फोटोग्राफ अथवा वीडियो का फोटोग्राफ व वीडियो संधारित करने वाले यंत्र का आउटपुट न्यायालय में साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, वहां ऐसे आउटपुट के साथ धारा 65बी(4) की अपेक्षा के अनुरूप प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया जाना आज्ञापक होगा।

51. Kishan Tripathi @ Kishan Painter v. State, 2016 LawSuit (Del) 1160
52. State of Maharashtra v. Rajesh, 2016 Crimes (HC) 542 (Bom.)

न्याय दृष्टांत ***प्रीति जैन***[53] में एक पिन होल कैमरा और हार्ड डिस्क लगाकर कमरे के भीतर हो रही गतिविधियों की रिकाॅर्डिंग की गई थी जिसे विवाह-विच्छेद की याचिका के विचारण के दौरान मूल इलेक्ट्रानिक रिकार्ड के रूप में प्रस्तुत किया गया था। माननीय राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा इसे प्राथमिक साक्ष्य के रूप में ग्राह्य माना गया।

न्याय दृष्टांत ***राकेश जैन***[54] में दो व्यक्तियों के मध्य की बातचीत मोबाइल फोन में रिकार्ड की गई थी तथा उनकी उपस्थिति की वीडियो सी.सी.टी.वी. कैमरे में रिकार्ड हुई थी। न्यायालय में बचाव पक्ष ने बातचीत की रिकार्डिंग एवं सी.सी.टी.वी. की वीडियो फुटेज पृथक-पृथक सी.डी. में प्रस्तुत की थी। माननीय पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय के द्वारा धारा 65बी(4) के प्रमाणपत्र के अभाव में इसे साक्ष्य में अग्राह्य माना गया।

(viii) मोबाइल फोन/डिजिटल कैमरे का मेमोरी कार्ड

मेमोरी कार्ड/एस.डी. कार्ड/माइक्रो एस.डी. कार्ड बाह्य भंडारण यंत्र होता है जिसका उपयोग मोबाइल फोन अथवा डिजिटल कैमरे में इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख (फोटोग्राफ, वीडियो, आॅडियो आदि) के संधारण के लिए किया जाता है। पूर्व में ही उल्लेखित किया जा चुका है कि मेमोरी कार्ड का उपयोग यदि आंतरिक स्मृति के रूप में किया जाता है तो मेमोरी कार्ड ही मूल इलेक्ट्राॅनिक रिकार्ड होगा। वहीं दूसरी ओर यदि मोबाइल फोन की आंतरिक स्मृति में संधारित किसी इलेक्ट्राॅनिक रिकार्ड को मेमोरी कार्ड में काॅपी किया जाता है तो मेमोरी कार्ड ऐसे इलेक्ट्राॅनिक रिकार्ड का आउटपुट होगा और द्वितीयक साक्ष्य माना जाएगा।

यदि मेमोरी कार्ड को मूल इलेक्ट्राॅनिक रिकार्ड के रूप में प्रस्तुत किया जाता है तो यह प्राथमिक साक्ष्य के रूप में ग्राह्य होगा और यदि मूल इलेक्ट्राॅनिक रिकार्ड के आउटपुट के रूप में प्रस्तुत किया जाता है तो इसके साथ धारा 65बी(4) की अपेक्षानुसार प्रमाणपत्र प्रस्तुत करना आवश्यक होगा।

(ix) सी.डी./डी.वी.डी./पेन ड्राइव/ फ्लैश ड्राइव

सी.डी./डी.वी.डी./पेन ड्राइव/फ्लैश ड्राइव आदि वस्तुतः बाह्य भंडारण यंत्र हैं जो इलेक्ट्राॅनिक अभिलेखों के संधारण के लिए उपयोग में आते हैं। अधिकांश मामलों में सी.डी./डी.वी.डी./पेन ड्राइव/फ्लैश ड्राइव में मूल इलेक्ट्राॅनिक रिकार्ड की काॅपी तैयार की जाती है अर्थात् सी.डी./डी.वी.डी./पेन ड्राइव/ फ्लैश ड्राइव में सामान्यतया इलेक्ट्राॅनिक रिकार्ड का आउटपुट संधारित होता है। यदि साक्ष्य के रूप में ऐसी सी.डी./डी.वी.डी./पेन ड्राइव/फ्लैश ड्राइव प्रस्तुत की जाती है तो आउटपुट होने के कारण उसके साथ धारा 65बी(4) का प्रमाण-पत्र प्रस्तुत किया जाना आवश्यक होगा।

इस सामान्य नियम का एक अपवाद भी है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा न्याय दृष्टांत ***अनवर पी.वी.*** (पूर्वोक्त) के मामले में ही उदाहरण के द्वारा इस आपवादिक स्थिति को स्पष्ट किया गया है। जहां जप्तशुदा सी.डी./डी.वी.डी./पेन ड्राइव/फ्लैश ड्राइव की अंतर्वस्तु ही सुसंगत एवं प्रश्नगत हो, वहां उसके साथ धारा 65बी(4) के प्रमाणपत्र की कोई आवश्यकता नहीं होगी और ऐसी सी.डी./डी.वी.डी./पेन ड्राइव/फ्लैश ड्राइव प्राथमिक साक्ष्य के रूप में ग्राह्य होगी।

53. Preeti Jain v. Kunal Jain, AIR 2016 Raj. 153
54. Rakesh Jain v. State of Haryana, 2016 CriLJ 2574

न्याय दृष्टांत ***अनवर पी.वी.*** का मामला एक चुनाव याचिका थी। इसमें एक उम्मीदवार के द्वारा अपने प्रचार में आपत्तिजनक प्रसारण एवं गाने (Songs)क्षेत्र में चलाए गए थे। दूसरे उम्मीदवार ने इस कार्यवाही की वीडियो रिकार्डिंग कराई थी और उस रिकार्डिंग की सी.डी. तैयार कर साक्ष्य में प्रस्तावित की थी। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया कि प्रचार-प्रसार की रिकार्डिंग की सी.डी. इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख का आउटपुट होने के कारण तभी साक्ष्य में ग्राह्य होगी जब उसके साथ धारा 65बी(4) की अपेक्षा अनुरूप प्रमाणपत्र संलग्न हो। परन्तु यदि आपत्तिजनक गानों एवं प्रसारण की सी.डी. जिनसे प्रचार-प्रसार किया जा रहा था, वह चुनाव आयोग अथवा पुलिस द्वारा जप्त की जाती तो स्वयं सुसंगत तथ्य होने से प्राथमिक साक्ष्य के रूप में ग्राह्य होती।

इस बिन्दु पर एक अन्य मामला भी अवलोकनीय है। न्याय दृष्टांत ***पेड्डी फनी कुमार***[55]में सामूहिक बलात्संग की घटना की वीडियो रिकार्डिंग की गई थी जिससे सी.डी. बनाई गई थी। अभियुक्त ने ऐसी सी.डी. प्रसारित करने के लिए रखी थी जो अनुसंधान के दौरान उसके आधिपत्य से जप्त की गई। जप्तशुदा सी.डी. का विधिविज्ञान प्रयोगशाला में परीक्षण कराया गया जो हस्तक्षेप रहित (untampered)पाई गई। माननीय आंध्रप्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया कि सी.डी. की अंतर्वस्तु स्वतः सुसंगत एवं विवाद्यक तथ्य होने से सी.डी. बिना धारा 65बी(4) के प्रमाणपत्र के ही साक्ष्य में ग्राह्य है।

इस आपवादिक परिस्थिति का एक अन्य उदाहरण भी हो सकता है। किसी इलेक्ट्रॉनिक या आई.टी. उपकरण के साथ जो सी.डी. ऐसे उपकरण को चलाने के ड्राइवर आदि की आती है, उन्हें किसी विवाद में प्रस्तुत करने पर भी धारा 65बी(4) के प्रमाण-पत्र की आवश्यकता नहीं होगी। इस प्रकार सी.डी./डी.वी.डी./पेन ड्राइव/फ्लैश ड्राइव जब भी साक्ष्य में प्रस्तुत की जाएगी, उपरोक्त विधि अनुसार हम उसकी ग्राह्यता एवं प्रमाणीकरण को निर्धारित कर सकते हैं।

के.के. वेलुसामी[56]के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सी.डी. में रिकार्ड दो व्यक्तियों की बातचीत की तुलना किसी घटना की फोटोग्राफ से करते हुए इसे साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 8 के अधीन साक्ष्य में ग्राह्य होना माना गया है। इसी प्रकार ***शमशेर सिंह वर्मा***[57] के मामले में भी सी.डी. को दस्तावेज मानते हुए अभियुक्त के बचाव में प्रस्तुत करने की अनुमति माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दी गई है।

(x) सी.सी.टी.वी. फुटेज

पिछले 10 वर्षों में यदि किसी वैज्ञानिक उपलब्धि ने न्यायालयों में आने वाली साक्ष्य की गुणवत्ता को सबसे अधिक प्रभावित किया है तो वह सी.सी.टी.वी. सिस्टम है। क्लोज्ड सर्किट टेलीविजन कैमरे पूरे विश्व में देखे जा सकते हैं। चाहे लोकमार्ग हो, सार्वजनिक स्थान हो, शासकीय कार्यालय हो, अथवा निजी संपत्ति हो, शहरी क्षेत्रों में हर स्थान पर सी.सी.टी.वी. कैमरे दिखाई देते हैं। इन कैमरों द्वारा ली

55. Peddi Phani Kumar v. State of Andhra Pradesh, 2015 (3) ALT (Cri) 91
56. K.K Velusamy v. N.Palanisamy, (2011) 11 SCC 575
57. Shamsher Singh Verma v. State of Haryana, 2015 (12) Scale 597

गई फोटोग्राफ एवं वीडियो विचारण के दौरान महत्वपूर्ण साक्ष्य हो सकते हैं। किसी मामले में सी.सी.टी.वी. फुटेज की उपलब्धता घटना की प्रत्यक्ष एवं सर्वोत्तम साक्ष्य भी हो सकती है। सी.सी.टी.वी. फुटेज एक ऐसी साक्ष्य हो सकती है जो किसी मामले में न्यायालय को निश्चायक निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए बिना किसी अन्य संपुष्टिकारक प्रमाण से भी पर्याप्त होगी।

सी.सी.टी.वी. फुटेज की महत्ता के संबंध में माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा न्याय दृष्टांत ***किशन त्रिपाठी उर्फ किशन पेंटर***[58] में विचार करते हुये यह प्रतिपादित किया गया है कि -

> ***''जब हम सी.सी.टी.वी. फुटेज को देखते हैं तो हमारा स्थान उस साक्षी के समान होता है जिसने स्वयं घटना देखी है। यद्यपि जब सी. सी.टी.वी. रिकार्डिंग चलाई जाती है तब घटना नहीं होती है, परन्तु उसे देखने वाला व्यक्ति घटना का साक्षी बन जाता है।''***

सी.सी.टी.वी. फुटेज का एक अन्य पहलू यह है कि यदि इसे किसी भी प्रकार से प्रभावित न होना सिद्ध कर दिया जाये तो यह किसी घटना का सर्वोत्तम प्रमाण हो सकता है। सी.सी.टी.वी. फुटेज द्वारा प्राप्त साक्ष्य ऐसी है कि किसी भी अन्य साक्ष्य से संपुष्टि के अभाव में यह अपने-आप में न्यायालय को तार्किक निष्कर्ष पर पहुंचने के लिये सहायक हो सकती है।

वर्तमान समय में अधिकांश सी.सी.टी.वी. कैमरे निगरानी अथवा सुरक्षा के उद्देश्य के लिये प्रयोग किये जा रहे हैं। सी.सी.टी.वी. सिस्टम एक या अधिक कैमरों का जाल होता है जिसमें वीडियो और कभी-कभी आॅडियो रिकार्डिंग की भी सुविधा होती है। यह कैमरे एक कम्प्यूटर सर्वर के माध्यम से डी.वी.आर. अथवा एन.वी.आर. से संबद्ध होते हैं। सी.सी.टी.वी. कैमरों की परिधि में आने वाले दृश्य एवं ध्वनि बिना किसी मानवीय हस्तक्षेप के अपने आप या स्वमेव पूर्व निर्धारित साॅफ्टवेयर कमाण्ड के डी.वी.आर. या एन.वी.आर. में रिकार्ड हो जाते हैं।

किसी सी.सी.टी.वी. कैमरे के 4 प्रमुख अवयव होते हैं - कैमरा, लैंस, माॅनीटर एवं रिकार्डर। इसमें कैमरा सबसे महत्वपूर्ण अवयव है जो इमेज एवं वीडियो लेता है। साधारण कैमरा और सी.सी.टी.वी. कैमरे में महत्वपूर्ण अंतर यह है कि सी.सी.टी.वी. कैमरा एक बार चालू करने के बाद बिना किसी हस्तक्षेप के स्वमेव कार्य करता रहता है। कैमरे के सामने आने वाले प्रत्येक चित्र व वीडियो से कैमरे के माध्यम से माॅनीटर पर पारेषित होता है और माॅनीटर से संबद्ध डी.वी.आर. व एन.वी.आर. पर रिकार्ड हो जाता है। डिजिटल कैमरे अथवा एनालाॅग कैमरे का उपयोग होने पर डी.वी.आर. में चित्र एवं वीडियो संधारित होते हैं और आई.पी. (इंटरनेट प्रोटोकाॅल) आधारित कैमरे का उपयोग होने पर एन.वी.आर. में संधारित किये जाते हैं।

डी.वी.आर. एवं एन.वी.आर. पर चित्र एवं वीडियो से संबंधित फाइलें सरल क्रमवार, समय एवं सुभिन्न पहचान चिन्ह के साथ संधारित होती है। ऐसे पहचान चिन्ह पूर्व निर्धारित साॅफ्टवेयर के निर्देशों के कारण स्वमेव उत्पन्न होते हैं और इसमें किसी मानवीय हस्तक्षेप की गुंजाइश नहीं होती है। स्पष्ट शब्दों में कहा जाये तो सी.सी.टी.वी. कैमरे आॅटोमेटिक कार्य करते हैं।

58. Kishan Tripathi @ Kishan Painter v. State, 2016 LawSuit (Del) 1160

न्यायालयों में सी.सी.टी.वी. कैमरे के द्वारा लिये गये वीडियो एवं चित्र जब साक्ष्य में प्रस्तुत किये जाना प्रस्तावित होते हैं तो दो स्थितियां बनती हैं - प्रथम, जब डी.वी.आर. या एन.वी.आर. की हार्ड ड्राइव को निकालकर मूल इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख के रूप में न्यायालय में प्रस्तुत कर दिया जाये और द्वितीय, जब ऐसी हार्ड ड्राइव में से सुसंगत भाग को किसी बाह्य भंडारण यंत्र यथा सी.डी. या पेन ड्राइव में काॅपी किया जाये और ऐसी किसी सी.डी. अथवा पेनड्राइव को इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख के आउटपुट के रूप में न्यायालय में प्रस्तुत किया जाये। दोनों परिस्थितियों में ऐसे साक्ष्य की न्यायालय में ग्राह्यता के बिन्दु पर इस लेख के पूर्व में ही विचार किया जा चुका है और जहां मूल इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख प्रस्तुत किया जाएगा वह प्राथमिक साक्ष्य होने के कारण ग्राह्य होगा और जहां उसका आउटपुट प्रस्तुत किया जायेगा, वहां ऐसे आउटपुट के साथ धारा 65बी(4) के द्वारा अपेक्षित प्रमाणपत्र संलग्न करना उसे साक्ष्य में ग्राह्य बनाने के लिये आज्ञापक होगा।

यहां यह तथ्य विचार करने योग्य है कि प्रत्येक मामले में मूल डी.वी.आर./एन.वी.आर. साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जाना न तो संभव होगा और न ही व्यावहारिक होगा। उदाहरण के लिये यदि किसी ए.टी.एम. मशीन में लगे सी.सी.टी.वी. कैमरे में कोई घटना रिकार्ड हो जाती है और ऐसी घटना की साक्ष्य के रूप में ए.टी.एम. में लगा मूल डी.वी.आर. न्यायालय में प्रस्तुत कर दिया जाता है तो डी.वी.आर. निकालने के बाद उस ए.टी.एम. में सी.सी.टी.वी. कैमरा कार्यरत नहीं रह जायेगा। अर्थात् अधिकांश मामलों में जहां सी.सी.टी.वी. कैमरे की रिकार्डिंग साक्ष्य में प्रस्तुत किया जाना अपेक्षित होगा, वहां डी.वी.आर. अथवा एन.वी.आर. का आउटपुट ही प्रस्तुत किया जा सकेगा।

इसका एक अन्य पहलू भी है, यदि किसी दुकानदार की दुकान के बाहर लगे सी.सी.टी.वी. फुटेज में कोई घटना रिकार्ड हो जाती है तो दुकानदार अपना मूल्यवान सी.सी.टी.वी. सिस्टम पुलिस को सहज रूप से उपलब्ध कराने से बचेगा क्योंकि इससे उसकी दुकान की सुरक्षा प्रभावित होगी। ऐसे मामलों में डी.वी.आर. अथवा एन.वी.आर. का आउटपुट ही अनुसंधान एजेन्सी के लिए सहज रूप से उपलब्ध साक्ष्य होगा। न्यायालयों को भी अपने समक्ष प्रस्तुत की जाने वाली साक्ष्य में इन पहलुओं पर विचार करना चाहिये।

न्यायालय में जब सी.सी.टी.वी. फुटेज को साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जाता है तो इसे प्रमाणित करने के लिए एक या एक से अधिक व्यक्तियों का परीक्षण किया जाना आवश्यक होगा जो सुसंगत सी.सी.टी.वी. फुटेज की अंतर्वस्तु, उसकी सत्यता एवं उसके असल एवं अपरिवर्तित होने के तथ्य को प्रमाणित कर सकें।

न्याय दृष्टांत ***के. रमाजयम***[59] में लूट एवं हत्या की घटना दुकान में लगे सी.सी.टी.वी. कैमरे में रिकार्ड हो गई थी। अनुसंधान के दौरान मूल डी.वी.आर. जप्त किया गया था और राज्य विधि विज्ञान प्रयोगशाला में डी.वी.आर. का परीक्षण कराया गया था। वैज्ञानिक अधिकारी ने सी.सी.टी.वी. कैमरे में आये संदिग्ध व्यक्ति के चित्र का मिलान अभियुक्त से किया था। इस मामले में सी.सी.टी.वी. फुटेज को प्रमाणित करने के लिये अभियोजन की ओर से दुकान में सी.सी.टी.वी. सिस्टम लगाने वाले व्यक्ति

59.K Ramajayam @ Appu v. Inspector of Police, 2016 CrLJ 1542

को, पुलिस के निर्देश पर सी.सी.टी.वी. सिस्टम से मूल हार्ड ड्राइव निकालने वाले व्यक्ति को, डी.वी.आर. का विधिविज्ञान परीक्षण करने वाले वैज्ञानिक अधिकारी को एवं उस वैज्ञानिक अधिकारी को जिन्होंने डी.वी.आर. से लिये गये चित्र से अभियुक्त की पहचान की थी, परीक्षित कराया गया था।

माननीय मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा इस मामले के निर्णय के पैरा 36 में यह उल्लिखित किया गया है कि -

> ***"सी.सी.टी.वी. रिकार्डिंग देखने से यह परिलक्षित होता है कि आड़ी धारीदार टी-शर्ट (एम.ओ.-4) पहने अभियुक्त ने दुकान में 11: 19: 57 पर प्रवेश किया था और मृतक गनाराम से बात कर रहा था। दोनों के मध्य चर्चा चल रही थी और 11: 36: 08 बजे सादाराम (अ.सा.-6) दुकान में प्रवेश करता है और मृतक से बात करने के बाद 11: 37: 15 बजे चला जाता है। इसके बाद अभियुक्त एवं मृतक पुनः चर्चा करने लगते हैं। 11: 38: 21 बजे मृतक लाॅकर रूम में कुछ आभूषण लेने के लिये जाता है, 11: 38: 59 बजे अभियुक्त भी लाॅकर रूम में जाता है तथा अपनी जेब से चाकू निकालकर मृतक पर टूट पड़ता है। अभियुक्त मृतक को जमीन पर पटक-कर उसकी गर्दन को जोर से पकड़कर चाकू से काट देता है और बार-बार चाकू घोपता है, जब तक अभियुक्त मर न जाये। 11: 40:16 बजे अभियुक्त चाकू को पोंछकर अपनी जेब में रख लेता है। इसके बाद लाॅकर रूम से बाहर आकर प्रदर्शन के लिये रखे काउन्टर में रखे आभूषणों को अपने बैग में भर लेता है। 11: 41: 27 बजे वह दुकान से निकल जाता है।"***

माननीय मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा इस मामले में उपरोक्त विवरण के आधार पर सी.सी.टी.वी. फुटेज को पर्याप्त साक्ष्य मानते हुये अभियुक्त की दोषसिद्धि की पुष्टि की गई।

सी.सी.टी.वी. फुटेज की महत्ता से संबंधित एक अन्य उदाहरण ***किशन त्रिपाठी (पूर्वोक्त)*** का मामला भी है। इस मामले में एक फैक्ट्री के परिसर में हत्या की घटना हुई थी जहां दो सी.सी.टी.वी. कैमरे स्थापित थे। एक कैमरा फैक्ट्री के मुख्य द्वार पर और दूसरा कैमरा फैक्ट्री के भूतल पर था। फैक्ट्री परिसर के भीतर अभियुक्त का प्रवेश मुख्य द्वार पर लगे कैमरे में रिकार्ड हुआ था और हत्या की घटना भूतल पर लगे कैमरे में रिकार्ड हो गई थी। सी.सी.टी.वी. फुटेज अनुसंधान के दौरान फैक्ट्री के स्वामी की उपस्थिति में पुलिस कर्मियों द्वारा तकनीशियन की सहायता से चलाई गई थी, जिसमें स्वामी ने हत्या करने वाले व्यक्ति को अपनी फैक्ट्री का कर्मचारी होना पहचाना था। मूल डी.वी.आर. से उसकी काॅपियां तैयार की गईं और धारा 65बी(4) के प्रमाणपत्र के साथ न्यायालय में प्रस्तुत की गई थीं। मूल डी.वी.आर. से एक पेनड्राइव में घटना के सुसंगत भाग काॅपी किये गये थे और महत्वपूर्ण साक्षियों के परीक्षण के दौरान न्यायालय में उसे पेन ड्राइव को चलाकर उसके आधार पर साक्षी का परीक्षण कर

सी.सी.टी.वी. फुटेज की अंतर्वस्तु को अभिलिखित किया गया था। अभियुक्त की पहचान के स्टिल फोटोग्राफ भी वीडियो से निकालकर प्रिंटआउट लेकर अभिलेख में संलग्न किए गए थे। यद्यपि इस मामले में मूल डी.वी.आर. एवं उनसे बनाई गई प्रतियों का कोई विधिविज्ञान परीक्षण नहीं किया गया था, परन्तु माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के द्वारा एक कदम आगे बढ़ाकर यह अभिनिर्धारित किया गया कि -

> ***"हम संतुष्ट है कि जो सी.सी.टी.वी. फुटेज प्रस्तुत की गई है वह अंतर्वेशित[60] नहीं है और हस्तक्षेप रहित है। अभिलेख पर मूल हार्ड ड्राइव उपलब्ध है जिसे चलाकर देखा गया है। इस हार्ड ड्राइव में मात्र 408 फाइल हैं जो दिनांक 21.02.2009 की दोपहर 02: 06 बजे से दिनांक 23.02.2009 की दोपहर 02: 14 बजे तक उत्सर्जित हुई हैं। इन सभी फाइलों की विशिष्ट उत्सर्जन पहचान संख्या है, सभी पर उनके उत्सर्जन की तिथि व समय है। प्रत्येक फाइल की यह आंतरिक साक्ष्य61 बिना मानवीय हस्तक्षेप के तैयार हुई है और यह अपने आप में इन फाइलों के असल, सही एवं विश्वसनीय होने का द्योतक है।"***

महाराष्ट्र राज्य विरूद्ध राजेश (पूर्वोक्त) के मामले में सी.सी.टी.वी. फुटेज अंतिम बार साथ देखे जाने के सिद्धांत को स्थापित करने के लिये महत्वपूर्ण घटक साबित हुई। इस मामले में मृतक एक बालक था जो स्कूल से वापस घर आते समय अपहृत हो गया था। अपहरणकर्ता उक्त बालक को मोटरसाइकल पर दो व्यक्तियों के बीच में बैठाकर ले गया था और बालक का चेहरा मोटरसाइकल पर दो व्यक्तियों के बीच में बैठा हुआ रास्ते में आने वाले एक पेट्रोल पंप पर लगे सी.सी.टी.वी. कैमरे में रिकार्ड हुआ था। इस मामले में जिस व्यक्ति ने पेट्रोल पंप पर सी.सी.टी.वी. कैमरा स्थापित किया था उसका परीक्षण कराया गया, जिस व्यक्ति ने मूल डी.वी.आर. निकाला था उसका परीक्षण कराया गया, सी.सी.टी.वी. फुटेज देखकर मृतक के पिता ने अभियुक्त को पहचाना था तो उनका परीक्षण कराया गया, जिन पंच साक्षियों के समक्ष सी.सी.टी.वी. फुटेज चलाया गया था उनका परीक्षण कराया गया था, जिस पेट्रोल पंप में सी.सी.टी.वी. कैमरा स्थापित था उसके प्रबंधक का परीक्षण कराया गया था एवं विधि विज्ञान प्रयोगशाला के वैज्ञानिक अधिकारी जिन्होंने सी.सी.टी.वी. फुटेज का परीक्षण किया था, को भी परीक्षित कराया गया था।

इस मामले में मूल डी.वी.आर. न्यायालय में नहीं चलाई जा सकी थी और उसकी अंतर्वस्तु देखने के लिये उसके उस सुसंगत भाग के फुटेज को सी.डी. में कॉपी कर सी.डी. न्यायालय में प्रस्तुत की गई थी। वैज्ञानिक अधिकारी के द्वारा हैश वैल्यू की तुलना कर सी.डी. में आई फुटेज के अंतर्वेशित न होने के तथ्य को प्रमाणित किया गया था। सी.डी. के साथ धारा 65बी(4) के प्रमाणपत्र भी संलग्न थे जो पेट्रोल पंप के प्रबंधक, सी.सी.टी.वी. सेवा उपलब्ध करवाने वाली कंपनी के अधिकारी और उसकी

60. interpolated
61.internal evidence

जांच करने वाले वैज्ञानिक अधिकारी के द्वारा पृथक-पृथक जारी किए गए थे। अंततः माननीय बाॅम्बे उच्च न्यायालय द्वारा सी.सी.टी.वी. फुटेज की सत्यता पर विश्वास करते हुये दोषसिद्धि के निष्कर्ष की पुष्टि की गई थी।

सी.सी.टी.वी. फुटेज की महत्ता पर विचार करते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा न्याय दृष्टांत ***टोमासो ब्रूनो*** 62 में इसे सर्वोत्तम साक्ष्य मानते हुए अभियोजन द्वारा प्रस्तुत न किए जाने के कारण अभियोजन के विपरीत अनुमान लगाते हुए हत्या जैसे जघन्य अपराध के अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया गया था।

इस प्रकार सी.सी.टी.वी. फुटेज की साक्ष्य में ग्राहयता एवं साक्ष्य लेखबद्ध करते समय न्यायालयों से अपेक्षित बिन्दुओं को निम्नानुसार रेखांकित किया जा सकता हैः-

1. सी.सी.टी.वी. फुटेज किसी भी मामले में उपलब्ध होने वाली सर्वोत्तम साक्ष्य में से एक है।
2. सी.सी.टी.वी. फुटेज प्रत्यक्ष साक्ष्य है न कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य।
3. यदि सी.सी.टी.वी. फुटेज को असली एवं अपरिवर्तित होना प्रमाणित कर दिया जाए तो यह किसी घटना का निश्चायक प्रमाण भी हो सकता है।
4. जहां मूल डी.वी.आर./एन.वी.आर. जप्त किए जाते हैं और न्यायालय में प्रस्तुत किए जाते हैं, वहां यह प्राथमिक साक्ष्य के रूप में ग्राहय होंगे और साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65बी(4) के अनुसार प्रमाणपत्र प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं होगा। डी.वी.आर./एन.वी.आर. की अंतर्वस्तु उसे न्यायालय में चलाकर देखकर साबित की जा सकती है तथा उसकी सत्यता एवं अपरिवर्तित होना साक्षियों द्वारा साबित किया जा सकता है।
5. जहां मूल डी.वी.आर./एन.वी.आर. के विशिष्ट भाग की काॅपी तैयार की जाती है वहां उसे बिना मूल को आहूत किए साक्ष्य में प्रस्तुत किया जा सकता है, परन्तु वहां साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65बी(4) के प्रमाणपत्र के साथ ऐसी काॅपी तैयार कर प्राप्त करने में मूल की अभिरक्षा की कड़ियों (chain of custody)को भी प्रमाणित करना होगा।
6. न्यायालयों को साक्ष्य लेखबद्ध करते समय सी.सी.टी.वी. फुटेज को चलाकर देखना चाहिए। इसे कई बार दोहराना पड़ सकता है। इसके साथ-साथ न्यायालयों को सी.सी.टी.वी. फुटेज देखते हुए तात्विक तथ्यों को बयान में लेखबद्ध करना चाहिए।
7. डी.वी.आर./एन.वी.आर. अथवा उनसे बनाई गई काॅपी की सत्यता प्रमाणित करने के लिये उनकी फाॅरेन्सिक जांच कराना आज्ञापक नहीं है। उनकी सत्यता का अनुमान उपस्थित परिस्थतियों से भी लगाया जा सकता है। इसके साथ-साथ इन पर अनावश्यक संदेह नहीं करना चाहिये जब तक कि उनकी विश्वसनीयता को प्रभावित करने वाला कोई ठोस प्रमाण अभिलेख पर न लाया जाये।

62. Tomaso Bruno v. State of UP, AIR 2015 SC (Supp) 412

(xi) रोजनामचा सान्हा एवं प्रथम सूचना रिपोर्ट

देश भर में पुलिस की कार्यप्रणाली अब सी.सी.टी.एन.एस. अर्थात् अपराध एवं अपराधी निगरानी संजाल प्रणाली (Crime and Criminal Tracking Network & Systems)पर की जा रही है। सी.सी.टी.एन.एस. भारत सरकार की राष्ट्रीय ई-प्रशासन योजना के अधीन एक मिशन मोड प्रोजेक्ट है जिसने सीपा (CIPA - Common Integrated Police Application) को प्रतिस्थापित किया है।

भारतवर्ष के प्रत्येक पुलिस आरक्षी केन्द्र में संधारित होने वाली दैनिक डायरी अथवा रोजनामचा सान्हा अब सी.सी.टी.एन.एस. साॅफ्टवेयर से ही जनित हो रहे हैं। हाथ से रोजनामचा सान्हा तैयार करने की पद्धति अब निषिद्ध कर दी गई है। इसे आसान शब्दों में समझें तो रोजनामचा सान्हा की अंतर्वस्तु अब प्रारूपिक पंजी में लिखने की बजाए साॅफ्टवेयर पर टाइप की जाती है और जैसे ही 'इन्टर' बटन दबाया जाता है तो रोजनामचा का सरल क्रमांक, दिनांक एवं समय पूर्व निर्धारित कमाण्ड के कारण संबंधित प्रविष्टि के साथ साॅफ्टवेयर से ही स्टाम्पित हो जाता है। एक बार रोजनामचा अपलोड होने के बाद इसमें परिवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं होती है।

कतिपय मामलों में ऐसे रोजनामचा सान्हा न्यायालय में साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं। स्वाभाविक रूप से सी.सी.टी.एन.एस. नेटवर्क में होने के कारण ये मूल स्वरूप में न्यायालय में प्रस्तुत नहीं किए जा सकते हैं और रोजनामचा सान्हा प्रस्तुत करने का एकमात्र विकल्प उसका आउटपुट अर्थात् प्रिंटआउट प्रस्तुत करना है। चूंकि प्रिंटआउट मूल इलेक्ट्राॅनिक रिकार्ड का आउटपुट है इसलिए इसके साथ धारा 65बी(4) की अपेक्षा अनुरूप प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया जाना भी आवश्यक है और प्रमाणपत्र के अभाव में इसे साक्ष्य में ग्राह्य एवं प्रदर्शित नहीं किया जाना चाहिए।

इसी प्रकार प्रथम सूचना रिपोर्ट के संबंध में भी प्रश्न उत्पन्न होता है कि कम्प्यूटर पर टाइप एवं तैयार की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट इलेक्ट्राॅनिक रिकार्ड है अथवा नहीं? यदि प्रथम सूचना रिपोर्ट इलेक्ट्राॅनिक रिकार्ड है तो निश्चित रूप से उसके प्रिंटआउट अर्थात् आउटपुट के साथ धारा 65बी(4) का प्रमाणपत्र संलग्न करना अनिवार्य होगा, अन्यथा नहीं।

सर्वप्रथम प्रथम सूचना रिपोर्ट लेखबद्ध करने के प्रश्न पर विचार करें तो प्रथम सूचना रिपोर्ट भी साॅफ्टवेयर पर निर्धारित प्रारूप में खाली स्थान भरकर टाइप की जाती है, इसमें भी सरल क्रमांक (अपराध क्रमांक), दिनांक, समय आदि पूर्व निर्धारित कमाण्ड के कारण स्वमेव स्टाम्पित होता है और इसका प्रिंटआउट निकालकर सूचनाकर्ता एवं लेखकर्ता अधिकारी के द्वारा हस्ताक्षरित किया जाता है। प्रथम सूचना रिपोर्ट से सुसंगत प्रावधान दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 154(1) में बनाए गए हैं। इसके अनुसार -

> ***"154. संज्ञेय मामलों में सूचना- (1) संज्ञेय अपराध के किए जाने से संबंधित प्रत्येक सूचना, यदि पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को मौखिक दी गई है तो उसके द्वारा या उसके निदेशाधीन लेखबद्ध कर ली जाएगी और सूचना देने वाले को पढ़कर सुनाई जाएगी और प्रत्येक ऐसी सूचना पर, चाहे वह लिखित रूप में दी गई हो या***

पूर्वोक्त रूप में लेखबद्ध की गई हो, उस व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षर किए जाएंगे, जो उसे दे और उसका सार ऐसी पुस्तक में, जो उस अधिकारी द्वारा ऐसे रूप में रखी जाएगी जिसे राज्य सरकार इस निमित्त विहित करे, प्रविष्ट किया जाएगा।''

अर्थात् संज्ञेय अपराध की सूचना थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा लेखबद्ध करने के उपरांत सूचनाकर्ता से हस्ताक्षरित कराना आज्ञापक है। इसे दूसरे शब्दों में समझें तो संज्ञेय अपराध की कोई भी सूचना प्रथम सूचना रिपोर्ट तभी बनेगी जब धारा 154(1) के अनुसार उस पर सूचनाकर्ता के हस्ताक्षर प्राप्त कर लिए जाएं। इस हस्ताक्षर के अभाव में कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर पर टंकित और प्रिंटआउट निकाली गई सूचना का कोई विधिक अस्तित्व नहीं है। प्रथम सूचना रिपोर्ट को मात्र टंकित करने, प्रारूप के विभिन्न खंडों में जानकारी भरने और प्रारूप को स्पष्ट एवं सुवाच्य बनाने के उद्देश्य मात्र से कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर का उपयोग किया जा रहा है और यदि कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर में टंकित प्रथम सूचना रिपोर्ट को उसके प्रिंटआउट पर हस्ताक्षर होने के बाद सुरक्षित न रखा जाए तो भी ऐसा प्रिंटआउट ही मूल प्रथम सूचना रिपोर्ट होगा। स्पष्ट शब्दों में ऐसी प्रथम सूचना रिपोर्ट इलेक्ट्रॉनिक रिकार्ड का आउटपुट नहीं है और इसे साक्ष्य में ग्राह्य बनाने के लिए धारा 65बी(4) के प्रमाणपत्र की आवश्यकता नहीं होती है।

प्रथम सूचना रिपोर्ट के साथ धारा 65बी(4) के प्रमाणपत्र की अपेक्षा करना वैसा ही है जैसे न्यायालय में साक्षी के बयान कम्प्यूटर पर टाइप कराकर प्रिंटआउट निकालने के बाद साक्षी एवं पीठासीन अधिकारी के हस्ताक्षर करने के पश्चात् उसके साथ धारा 65बी(4) का प्रमाणपत्र संलग्न करने की अपेक्षा करना। दोनों ही मामलों में कम्प्यूटर का उपयोग मात्र टायपिंग मशीन की भांति होता है और दस्तावेज (प्रथम सूचना रिपोर्ट एवं बयान) अस्तित्व में उस पर भौतिक हस्ताक्षर होने के उपरांत आता है।

अतः उपरोक्त विवेचना के आलोक में न्यायालयों को साक्ष्य लेखबद्ध करते समय रोजनामचा सान्हा के साथ धारा 65बी(4) के प्रमाणपत्र की आवष्यकता पर विचार करना चाहिए।

(xii) सी.डी.आर. (कॉल डिटेल रिकार्ड)/(कॉल डाटा रिकार्ड)

कॉल डिटेल रिकार्ड अथवा कॉल डाटा रिकार्ड जिसे सामान्य परिचर्चा में सी.डी.आर.सेसंबोधित किया जाता है, किसी मोबाईल फोन या सेल फोन के उपयोग का डिजिटल मुद्रांकन है। किसी सी.डी.आर. में मोबाईल फोन के उपयोग से संबंधित कई अवयव होते हैं, जैसे कि कॉल करने वाले व्यक्ति का विवरण, उस व्यक्ति का विवरण जिसे कॉल किया गया है, कॉल प्रारंभ करने का समय, कॉल की अवधि, जिस स्थान से कॉल किया गया है एवं जिस स्थान पर कॉल किया गया है, उनका स्थानीय टेलीफोन एक्सचेंज (बी.टी.एस. टॉवर), कॉल का प्रकार, कॉल का परिणाम, जैसे कॉल कनेक्ट हुआ, बातचीत हुई अथवा नहीं, कॉल के दौरान कोई विसंगति उत्पन्न हुई थी अथवा नहीं और इस संपूर्ण विवरण को संधारित करने वाली एक विशिष्ट पहचान संख्या। सी.डी.आर. के कई प्रकार होते हैं, मुख्यतः चार प्रकार की सी.डी.आर. उपयोग में आती हैं जो निम्नानुसार हैं -

1. **सामान्य सी.डी.आर.** -इसमें किसी व्यक्ति विशेष जो आरोपी अथवा संदिग्ध अथवा पीड़ित कोई भी हो सकता है, के मोबाईल नंबर से संबंधित सी.डी.आर.।

2. **स्थान विषेष की सी.डी.आर.** -इसमें किसी बी.टी.एस. (बेसिक ट्रांसरिसीवर स्टेशन) टॉवर में आने वाले सभी विवरण की सी.डी.आर. आती है। सामान्य भाषा में इन्हें टॉवर डंप भी कहा जाता है।

3. **आई.एम.ई.आई. आधारित सी.डी.आर.** - इसमें किसी विशिष्ट मोबाईल हैंडसेट के आई.एम.ई.आई. नंबर की सी.डी.आर. प्राप्त की जाती है।

4. **आई.पी.डी.आर. (इंटरनेट प्रोटोकॉल डाटा रिकार्ड)** - इसमें इंटरनेट का उपयोग किये जाने से संबंधित विवरण प्राप्त किये जाते हैं।

भारत सरकार के संचार मंत्रालय के अधीन आने वाले दूरसंचार विभाग के द्वारा राष्ट्रीय दूरसंचार नीति, 2012 बनाई गई है, जिसमें समय-समय पर विभिन्न दिशा-निर्देश जारी सी.डी.आर. में क्या-क्या तत्व होने चाहिये इन्हें स्पष्ट किया गया है। वर्तमान प्रभावषील दिशानिर्देषों के अनुसार किसी सी.डी.आर. में कुल 13 डाटा फील्ड होने चाहिये जो निम्नानुसार हैं -

DOT Guidelines on CDR - Data Fields To Be Present In The Record

1. Calling (A) Party Telephone Number
2. Called (B) Party Telephone Number
3. Call Date
4. Call Time
5. Call Duration (in Sec)
6. First Cell ID of Party A
7. Last Cell ID of Party A
8. Call Type (in/out/sms In/sms Out)
9. IMEI of A
10. IMSI of A
11. Type of Connection (pre-paid/post-paid)
12. SMS Centre Number
13. First Roaming Network Circle ID of A

किसी सी.डी.आर. का नमूना निम्न चित्र से समझा जा सकता है जिसमें सी.डी.आर. के 10 कॉलम हैं और यही 10 कॉलम सामान्यतया उपयोग में आते हैं –

Calling(A) Party	Called (B) Party	Date	Time	Duration	First Cell ID	Last Cell ID	Call Type	IMEI	IMSI
919819194961	919867458394	27-08-2014	13:15:53	0	404-20-11-34273	N/A	SMS-In	911240902779740	40420305264
919819194961	919867458394	27-08-2014	13:15:57	0	404-20-11-34273	N/A	SMS-In	911240902779740	40420305264
919819194961	919867458394	27-08-2014	13:17:54	0	404-20-11-34273	N/A	SMS-In	911240902779740	40420305264
919819194961	919867458394	27-08-2014	13:29:06	0	404-20-11-34273	N/A	SMS-In	911240902779740	40420305264
919819194961	919867458394	27-08-2014	13:33:38	0	404-20-11-34273	N/A	SMS-In	911240902779740	40420305264
919819194961	LM-HDFCSL	27-08-2014	19:33:33	0	404-20-11-34273	N/A	SMS-In	911240902779740	40420305264
919819194961	918692842502	27-08-2014	20:00:52	92	404-20-11-34271	404-20-11-34271	Call-In	911240902779740	40420305264
919819194961	919867458394	27-08-2014	20:08:21	0	404-20-19-30293	N/A	SMS-Out	911240902779740	40420305264
919819194961	919920641598	27-08-2014	21:09:20	145	404-20-11-37591	404-20-11-30021	Call-Out	911240902779740	40420305264
919819194961	919867458394	27-08-2014	21:13:09	0	404-20-11-30021	N/A	SMS-Out	911240902779740	40420305264
919819194961	919867458394	27-08-2014	21:13:34	0	404-20-11-37591	N/A	SMS-Out	911240902779740	40420305264
919819194961	919867458394	27-08-2014	21:23:53	0	404-20-11-37591	N/A	SMS-Out	911240902779740	40420305264
919819194961	3076919702627590	27-08-2014	21:24:38	269	404-20-11-37591	404-20-11-30021	Call-Out	911240902779740	40420305264
919819194961	9930467773	27-08-2014	21:35:18	18	404-20-11-30021	404-20-11-30021	Call-Out	911240902779740	40420305264
919819194961	919221299134	27-08-2014	21:36:09	82	404-20-11-37591	404-20-11-30021	Call-Out	911240902779740	40420305264
919819194961	919702627596	27-08-2014	21:47:44	189	404-20-11-37591	404-20-11-30021	Call-In	911240902779740	40420305264
919819194961	919702627596	27-08-2014	22:19:58	66	404-20-11-30252	404-20-11-33441	Call-In	911240902779740	40420305264
919819194961	7738015760	27-08-2014	22:21:53	51	404-20-11-30252	404-20-11-30252	Call-Out	911240902779740	40420305264
919819194961	919702724492	27-08-2014	22:35:25	22	404-20-11-34271	404-20-11-34274	Call-In	911240902779740	40420305264

इस नमूने में दो विवरण, 6वें एवं 7वें काॅलम में हैं जिन्हें फर्स्ट सेल आई.डी. तथा लास्ट सेल आई.डी. से संबोधित किया गया है और जो संख्या के युग्म में लिखे है। इस संख्या का प्रत्येक युग्म एक विशिष्ट पहचान बताता है जैसे चित्र के छठे काॅलम की पहली प्रविष्टि 404-20-11-34273 है। इसमें प्रथम तीन अंक 404 एम.सी.सी. (मोबाईल कंट्री कोड) है। यह उस देश का कोड है जहां मोबाईल फोन उपयोग किया जा रहा है। भारत के लिये यह कोड 404 एवं 405 है। इसके बाद के दो अंक एम.एन.सी. (मोबाईल नेटवर्क कोड) हैं अर्थात् मोबाईल सेवा प्रदाता के एवं मोबाईल सेवा सर्कल का निर्धारण इस कोड से होता है। जैसे इस मामले में 20 वोडाफोन कंपनी के मुंबई सर्कल का कोड है। इसके बाद के दो अंक एल.ए.सी. (लोकेशन एरिया कोड) हैं। एल.ए.सी. से किसी मोबाईल सर्कल के अधीन आने वाले विशिष्ट क्षेत्र की पहचान होती है। एक लोकेशन एरिया में क्षेत्र कई मोबाईल टाॅवर (बी.टी.एस.) कार्य करते हैं। अंतिम पांच अंक सी.आई.डी. अथवा सेल आई.डी. दर्शाते हैं। इन पांच अक्षरों में से आखिरी अक्षर किसी बी.टी.एस. टाॅवर के तीन में से एक सेक्टर को दर्शाता है। यह शून्य भी हो सकता है और जब सेल आई.डी. का आखिरी अक्षर शून्य है तो इसका तात्पर्य है कि संबंधित बी.टी.एस. टाॅवर एंटीना किसी भी दिशा में कार्य कर सकता है। इस प्रकार लोकेशन एरिया कोड और सेल आई.डी. से मोबाईल फोन का उपयोग होने पर उसके उपयोग के स्थान की पहचान सुनिश्चित की जाती है।

एम.सी.सी., एम.एन.सी., एल.ए.सी., सी.आई.डी. को एक साथ लिखने पर जो संख्या प्राप्त होती है उसे सी.जी.आई. (सेल ग्लोबल आईडेंटीफायर/Cell Global Identifier) से संबोधित किया जाता है। यही संख्या मोबाइल फोन के उपयोग के स्थान को स्थापित करती है।

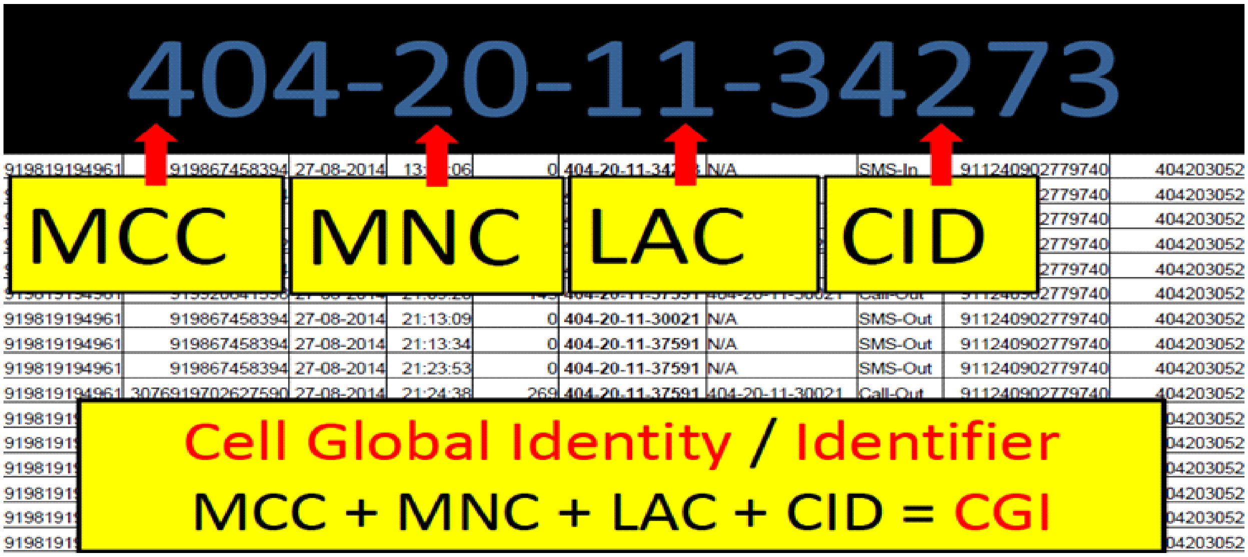

सी.डी.आर. के महत्व पर विचार करें तो माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा न्याय दृष्टांत गजराज[63] में इस बिन्दु पर विचार करते हुये यह अभिनिर्धारित किया गया है कि -

63. Gajraj v. State (NCT of Delhi), (2011) 10 SCC 675

"यह एक अखण्डनीय तथ्य है कि प्रत्येक मोबाईल हैंडसेट की एक अनन्य आई.एम.ई.आई. संख्या होती है। एक ही मोबाईल हैंडसेट में दो भिन्न-भिन्न आई.एम.ई.आई. तो हो सकते हैं परन्तु एक ही आई.एम.ई.आई. संख्या के दो मोबाईल हैंडसेट नहीं हो सकते। जब भी किसी मोबाईल फोन का उपयोग किया जाता है तो न केवल उस मोबाईल फोन का नंबर रिकार्ड होता है अपितु उस सिम कार्ड का उपयोग करने वाले हैंडसेट का आई.एम.ई.आई. नंबर भी रिकार्ड हो जाता है।"

इस प्रकार माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सी.डी.आर. की विशिष्टता को स्वीकार किया गया है।

सी.डी.आर. किसी मामले के विचारण में कई तथ्यों को प्रमाणित करने की महत्वपूर्ण साक्ष्य हो सकती है। उदाहरण के लिये किसी विशिष्ट सिम का उपयोग किस मोबाईल में किया गया है, इससे चोरी की सिम एवं चोरी गया मोबाईल दोनों ज्ञात किया जा सकता है। मोबाईल फोन के उपयोग के स्थान (location)से यह ज्ञात किया जा सकता है कि अमुक मोबाईल फोन उपयोग करने वाला व्यक्ति किसी विशिष्ट समय पर किसी विशिष्ट स्थान पर उपस्थित था अथवा नहीं। किन्हीं दो व्यक्तियों के बीच के संबंध उनके मोबाईल फोन के उपयोग, संपर्क एवं कॉल की संख्या व आवृत्ति के द्वारा स्थापित किये जा सकते है। इसी प्रकार षड़यंत्र के मामलों में सी.डी.आर. एक महत्वपूर्ण साक्ष्य होती है जो दो व्यक्तियों के आपसी संपर्क एवं पहचान का प्रमाण हो सकता है। इसके साथ-साथ न्यायालय के समक्ष आने वाले मामलों में यह प्रायः देखा जाता है कि विशिष्टतया परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित मामलों में सी.डी.आर. परिस्थितियों को जोड़ने की एक महत्वपूर्ण कड़ी साबित होती है।

न्यायालय में सी.डी.आर. किस प्रकार साबित की जायेगी, इस बिन्दु पर विचार करें तो प्रत्येक टेलीकॉम सेवा प्रदाता के लिये सी.डी.आर. संधारित करना अनिवार्य है, जैसा कि भारत दूरसंचार नियामक प्राधिकरण एवं दूरसंचार विभाग, भारत सरकार द्वारा समय-समय पर जारी दिशानिर्देशों से ज्ञात होता है। यह सी.डी.आर. पूर्वनिर्धारित सॉफ्टवेयर कमांड से, बिना किसी मानवीय हस्तक्षेप के, प्रत्येक मोबाईल फोन के उपयोग पर स्वमेव डाटा उत्पादित होने से टेलीकॉम सेवा प्रदाता के सर्वर पर रिकार्ड होता है। इसे सामान्य शब्दों में समझें तो मूल सी.डी.आर. टेलीकॉम सेवा प्रदाता के सर्वर पर संधारित होती है। इन मूल सी.डी.आर. को जब भी कोई अनुसंधान एजेंसी आवश्यक समझती है, तो टेलीकॉम सेवा प्रदाता के द्वारा नियुक्त नोडल अधिकारी से संपर्क कर सुसंगत मोबाईल नंबर, आई.एम.ई.आई. अथवा बी.टी.एस. टॉवर की सी.डी.आर. की मांग की जाती है। ऐसी मांग होने पर नोडल अधिकारी सेवा प्रदाता के सर्वर से सुसंगत भाग की सी.डी.आर. डाउनलोड करता है और ई-मेल, प्रिंट आउट जैसे किसी साधन से, अनुसंधान एजेंसी को सौंपता है। अनुसंधान एजेंसी ऐसी सी.डी.आर. को डिजिटल फॉरेंसिक के द्वारा प्रसंस्कृत कर उससे सुसंगत जानकारी प्राप्त करती है और ऐसी प्रसंस्कृत जानकारी साक्ष्य के रूप में न्यायालय में प्रस्तुत की जाती है। न्यायालय में या तो प्रिंटआउट के रूप में या सी.डी. पर ऐसी सी.डी.आर. प्रस्तुत की जाती है।

इस प्रकार सी.डी.आर. के उत्सर्जन की उपरोक्त प्रक्रिया से स्पष्ट है कि मूल सी.डी.आर. तो सदैव टेलीकाॅम सेवा प्रदाता के सर्वर पर संधारित होती है। अर्थात् सी.डी.आर. का मूल इलेक्ट्राॅनिक रिकार्ड टेलीकाॅम सेवा प्रदाता का सर्वर है। चंूकि सर्वर कभी न्यायालय में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता इसलिए जब भी सी.डी.आर. न्यायालय में साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत की जायेगी तो वह मूल इलेक्ट्राॅनिक रिकाॅर्ड का आउटपुट ही होगी। मूल इलेक्ट्राॅनिक रिकाॅर्ड का आउटपुट होने के कारण सी.डी.आर. के साथ धारा 65बी(4) की अपेक्षा अनुसार प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया जाना भी आवश्यक होगा। इसके साथ-साथ न्यायालय में सी.डी.आर. प्रस्तुत करते समय सी.डी.आर. की अभिरक्षा की कड़ियों (chain of custody) को स्थापित करने के लिये एक से अधिक व्यक्ति के धारा 65बी(4) के प्रमाणपत्र प्रस्तुत करना अपेक्षित हो सकता है।

इसे उदाहरण के रूप में देखें तो टेलीकाॅम सेवा प्रदाता के सर्वर से प्राप्त सी.डी.आर. यदि ई-मेल से अथवा सी.डी. में काॅपी कर अनुसंधान एजेंसी को दी जाती है तो उसके साथ टेलीकाॅम सेवा प्रदाता के नोडल अधिकारी का प्रमाणपत्र संलग्न करना आवश्यक होगा। इस सी.डी.आर. का प्रिंटआउट यदि अनुसंधान एजेंसी के द्वारा निकाला जाता है तो संबंधित अनुसंधान अधिकारी का प्रमाणपत्र संलग्न करना होगा। यदि विधि विज्ञान प्रयोगशाला अथवा स्थानीय पुलिस के साइबर सेल में ऐसी सी.डी.आर. को प्रसंस्कृत किया जाता है और प्रसंस्कृत रिपोर्ट न्यायालय में प्रस्तुत की जाती है तो उसके साथ भी संबंधित अधिकारी का प्रमाणपत्र प्रस्तुत करना अनिवार्य होगा। इस प्रकार किसी मामले में सी.डी.आर. साबित करने के लिये एक से अधिक व्यक्तियों के धारा 65बी(4) के प्रमाणपत्र और उनकी साक्ष्य आवश्यक हो सकती है और यह प्रत्येक मामले में प्रस्तुत सी.डी.आर. के प्रकार एवं प्रकृति पर निर्भर होगा कि किस व्यक्ति के प्रमाणपत्र और साक्षियों के परीक्षण द्वारा सी.डी.आर. प्रमाणित कराई जाए।

यहां न्यायालयों को इस तथ्य पर भी विचार करना चाहिये कि कभी-कभी सी.डी.आर. प्रस्तुत कर उसे प्रमाणित कर देने मात्र से न्यायालय तब तक उस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकती है जब तक जिस व्यक्ति का मोबाईल फोन अथवा सिम कार्ड उपयोग किया जाना प्रस्तावित है, उनकी पहचान के कोई दस्तावेज अभिलेख पर न आयें। जब ऐसे दस्तावेज अनुसंधान के दौरान एकत्रित न किये गये हांे, तब न्यायालय को पहचान के बिन्दु पर टेलीकाॅम सेवा प्रदाता के नोडल अधिकारी को आदेश देकर संबंधित व्यक्ति का सदस्यता विवरण फार्म (Subscriber Detail Form)अथवा ग्राहक आवेदन (Customer Application Form)आहूत करना चाहिये। संज्ञान के स्तर पर ही कमी प्रकट होती है तो न्यायालय को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(8) के अनुसार अतिरिक्त अनुसंधान का आदेश भी देना चाहिये जिससे सुसंगत एवं महत्वपूर्ण साक्ष्य अभिलेख पर उपलब्ध हो सके।

साक्ष्य लेखबद्ध करते समय भी न्यायालय को सी.डी.आर. की ग्राह्यता पर विचार करना चाहिये। साक्ष्य लेखबद्ध करते समय एक और बिन्दु अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है। वस्तुतः सी.डी.आर. अत्यंत विस्तृत दस्तावेज होता है और साक्ष्य के दौरान उन पर प्रदर्श कर देने मात्र से न्यायालय उनके आधार पर किसी भी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकेंगे। जब भी सी.डी.आर. प्रमाणित करने वाला साक्षी न्यायालय में आये तो उससे यह प्रश्न अवश्य करना चाहिये कि संबंधित मामले में सी.डी.आर. से उसे प्रस्तुत करना वाला पक्षकार कौन सा तथ्य साबित करना चाहता है। उदाहरण के लिये सी.डी.आर. से मोबाईल फोन का उपयोग प्रमाणित करना चाहता है, मोबाईल फोन उपयोग करने के स्थान को

प्रमाणित करना चाहता है अथवा दो व्यक्तियों के मध्य संपर्क होने एवं विस्तारपूर्वक बात-चीत करने का तथ्य प्रमाणित करना चाहता है।

सी.डी.आर. की सुसंगतता एवं उसके साक्ष्यिक मूल्य के संबंध में माननीय उच्च न्यायालय एवं माननीय सर्वोच्च न्यायालय के अनेकों निर्णय उपलब्ध हैं, परन्तु एक निर्णय का उल्लेख करना इस लेख में प्रासंगिक है। माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा ***कुंदन सिंह***[64]के मामले में सी.डी.आर. पर विस्तृत विधि प्रतिपादित की गई है। इस मामले में मृतक के मोबाईल फोन की सी.डी.आर. से यह प्रकट हुआ था कि उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके मोबाईल से अभियुक्त के घर के लैण्डलाइन पर एक फोन कॉल किया गया था। मृतक एवं अभियुक्त एक साथ अंतिम बार देखे गये थे। इस प्रकार इस मामले में सी.डी.आर. परिस्थितिजन्य साक्ष्य का एक महत्वपूर्ण घटक साबित हुआ और अंततः न्यायालय द्वारा अभियुक्त की दोषसिद्धि की पुष्टि की गई थी।

सी.डी.आर. से संबंधित एक और तकनीकि बिन्दु लह्न एल्गोरिद्म (Luhn Algorithm)है जो न्यायालयों के दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण है। प्रत्येक मोबाईल हैंडसेट का एक सुभिन्न आई.एम.ई.आई. नंबर होता है जो एक विशिष्टि 15 अंकीय युग्म का होता है। टेलीकॉम सेवा प्रदाता द्वारा दी जाने वाली सी.डी.आर. में इस आई.एम.ई.आई. नंबर पहले 14 अंक तो सही दर्शाये जाते हैं, परन्तु 15वां अंक सदैव शून्य रखा जाता है। उदाहरण के लिये यदि किसी मोबाईल फोन का आई.एम.ई.आई. नंबर 353577051308211 है तो सी.डी.आर. में इसे 353577051308210 से दर्शाया जायेगा। किसी भी आई.एम.ई.आई. नंबर की अंतिम संख्या ज्ञात करने के लिये एक गणितीय सूत्र लगाया जाता है जिसे लह्न एल्गोरिद्म कहते हैं।

लह्न एल्गोरिद्म के अनुसार आई.एम.ई.आई. नंबर के पहले के 14 अंकों में से प्रत्येक सम स्थानों के अंक को दो गुना कर दिया जाता है और यदि दो गुनी संख्या द्विअंकीय है तो उसके दोनों अंकों को जोड़कर एकाकी बनाया जाता है। उदाहरण के लिये यदि सम स्थान का अंक 5 है तो उसे दो गुना करने पर 10 प्राप्त होगा, 10 के दो अंक 1 व 0 को जोड़कर एकाकी अंक 1 प्राप्त होगा। इस प्रकार प्रत्येक सम संख्या को ऐसी एकाकी से बदलकर विषम संख्या को उसी प्रकार रखा जाता है। इसके बाद सभी संख्याओं का आपस में जोड़ निकाला जाता है और जोड़ के बाद जो संख्या प्राप्त होती है उसे निकटस्थ दशमलव बनाने के लिये जो संख्या जोड़ी अथवा घटाई जाती है, वह आई.एम.ई.आई. नंबर का 15वां अंक होगी।

उदाहरण के लिये यदि दो गुनी की गई प्रत्येक सम संख्या से प्राप्त एकाकी संख्याओं को विषम संख्या से जोड़ने पर 55 प्राप्त होता है तो इसे निकटस्थ दशमलव बनाने के लिये 5 जोड़ना होगा। (55 का निकटस्थ दशमलव 60 है) जहां सी.डी.आर. में आई.एम.ई.आई. नंबर 353577051308210 दिखता हो वहां वास्तविक आई.एम.ई.आई. नंबर उपरोक्त सूत्र लगाने से 353577051308211 होगा। इसी प्रकार आई.एम.ई.आई. नंबर 353536051308210 का वास्तविक आई.एम.ई.आई. 353536051308213 होगा। लह्न एल्गोरिद्म की उपरोक्त पद्धति माननीय मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा न्याय दृष्टांत ***राम मंडल***[65] में वर्णित की गई है।

64.Kundan Singh v. State, 2015 LawSuit (Del) 5843
65.Ram Mandal v. State, 2016 LawSuit (Mad) 1859

(xiii) कम्प्यूटर साॅफ्टवेयर से व्युत्पन्न जानकारी

वर्तमान समय में कम्प्यूटर साॅफ्टवेयर का उपयोग सामान्य हो चुका है। छोटे-छोटे व्यापारिक प्रतिष्ठानों में भी लेन-देन के संव्यवहार साॅफ्टवेयर पर संधारित किये जाते हैं। ऐसे में कई बार ऐसे साॅफ्टवेयर से व्युत्पन्न जानकारी न्यायालय में साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत की जा सकती है।

निश्चित रूप से एक कम्प्यूटर तंत्र पर कार्यरत साॅफ्टवेयर में संधारित और पूर्वनिर्धारित कमांड के प्रभाव से उसमें दर्ज की जाने वाली प्रविष्टियों से व्युत्पन्न सूचना इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख होगी। किसी भी साॅफ्टवेयर में संधारित एवं उससे व्युत्पन्न जानकारी न्यायालय में प्रस्तुत करने के लिए ऐसी जानकारी का प्रिंटआउट ही सर्वोत्तम प्रमाण होगा। ऐसा प्रिंटआउट मूल इलेक्ट्रानिक अभिलेख का आउटपुट होने के कारण तभी साक्ष्य में ग्राह्य होगा जब उसके साथ धारा 65बी(4) का प्रमाणपत्र संलग्न किया जाये।

इसे उदाहरण स्वरूप देखें तो यदि किसी व्यापारिक प्रतिष्ठान का समस्त लेखा-जोखा टैली साॅफ्टवेयर पर संधारित किया जाता है तो खाते संबंधी किसी वाद में यदि किसी ग्राहक से संबंधित लेजर खाते का प्रिंटआउट प्रस्तुत किया जाता है तो उस साॅफ्टवेयर पर जानकारी संधारित करने वाले व्यक्ति का अथवा ऐसे व्यापारिक प्रतिष्ठान के स्वामी का अथवा प्रबंधक के द्वारा ऐसे प्रिंटआउट के साथ धारा 65बी(4) की अपेक्षानुसार प्रमाणपत्र संलग्न किया जाना भी आज्ञापक होगा।

साक्ष्य लेखबद्ध करते समय साॅफ्टवेयर से व्युत्पन्न ऐसी जानकारी की अंतर्वस्तु पर भी न्यायालयों को विचार करना चाहिये और जो व्यक्ति ऐसी जानकारी साॅफ्टवेयर से निकालकर प्रस्तुत करना प्राख्यापित करता है, उसकी साक्ष्य के दौरान ऐसी जानकारी की अंतर्वस्तु लेखबद्ध करानी चाहिये।

(xiv) बैंको से प्राप्त खातों के विवरण एवं एकाउंट स्टेटमेन्ट

न्यायालयों में आने वाली इलेक्ट्राॅनिक साक्ष्य में बैंकों से प्राप्त खातों के विवरण एवं एकाउंट स्टेटमेन्ट भी एक महत्वपूर्ण साक्ष्य हैं। वर्तमान समय में राष्ट्रीयकृत एवं निजी क्षेत्र के सभी बैंक कम्प्यूटरीकृत हो चुके हैं और परंपरागत बही खाते के स्थान पर बैंक अपने बही खाते एवं अन्य जानकारियां सर्वर पर संधारित करते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो बैंकों से किये जाने वाले सभी संव्यवहार अब एक नेटवर्क आधारित कम्प्यूटर सिस्टम पर किये जाते हैं और बैंकों के सभी विवरण उनके सर्वर पर ही उपलब्ध होते हैं।

अतः इस तथ्य पर कोई संदेह नहीं रह जाता है कि अब बैंकों से प्राप्त खातों के विवरण अथवा एकाउंट स्टेटमेन्ट यदि न्यायालय में प्रस्तुत किये जायेंगे तो उनके प्रस्तुतिकरण का एकमात्र तरीका सर्वर पर संधारित जानकारी का प्रिंटआउट ही होगा। चूंकि ऐसे दस्तावेज मूल इलेक्ट्राॅनिक अभिलेखों का आउटपुट हैं इसीलिए बिना औपचारिकता की पूर्ति इसे साक्ष्य में ग्राह्य नहीं किया जा सकता है।

सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 के द्वारा जब साक्ष्य अधिनियम, 1872 में धारा 65ए एवं 65बी जोड़ी गई थी तभी बैंककार बही साक्ष्य अधिनियम, 1891 में भी संशोधन किये गए थे। इसी अधिनियम के प्रावधानों के अधीन बैंकों से खाते के विवरण एवं एकाउंट स्टेटमेन्ट प्राप्त किये जाते हैं।

बैंककार बही साक्ष्य अधिनियम, 1891 की धारा 2(8) एवं धारा 2ए का संयुक्त प्रावधान बैंकों के सर्वर पर संधारित खातों के प्रिंटआउट को न्यायालय में प्रस्तुत करने की प्रक्रिया बतलाता है। उक्त दोनों प्रावधान निम्नानुसार हैं -

''2(8) ''प्रमाणित प्रतिलिपि'' से अभिप्रेत है किसी बैंक की बहियां -

(क) जब लिखित प्ररूप में रखी जाती हैं, ...; और

(ख) जब किसी फ्लापी, डिस्क, टेप या किसी अन्य इलेक्ट्रो-मैग्नेटिक डाटा भण्डारण युक्ति में भण्डारित डाटा के प्रिंटआउट हों, ऐसी प्रविष्टि का प्रिंटआउट या ऐसे प्रिंटआउट की प्रतिलिपि, ऐसे विवरणों सहित जो धारा 2ए के उपबंधों के अनुसार प्रमाणित हों।

(ग) जब किसी माइक्रो फिल्म, मैग्नेटिक टेप या किसी यांत्रिक या इलेक्ट्रॉनिक डेटा पुनप्राप्ति तंत्र में संधारित बैंक की पुस्तकों में किसी भी प्रविष्टि का यांत्रिक या अन्य प्रक्रिया द्वारा प्राप्त प्रिंटआउट हो जो कि अपने आप में ऐसी प्रविष्टि की प्रतिलिपि की सटीकता सुनिश्चित करता हो, वहां ऐसे प्रिंटआउट में धारा 2ए के प्रावधानों के अनुसार प्रमाणपत्र हों।

2ए. प्रिंट आउट में शर्तें - धारा 2 की उपधारा 8 के खंड (ख) में निर्दिष्ट का मुद्रित रूप या मुद्रित रूप की प्रतिलिपि के साथ निम्नलिखित होगा, अर्थात्ः-

(क) प्रधान लेखापाल या शाखा प्रबंधक द्वारा इस आशय का एक प्रमाणपत्र कि यह ऐसी प्रविष्टि का मुद्रित पृष्ठ या मुद्रित पृष्ठ की प्रतिलिपि है; और

(ख) कम्प्यूटर प्रणाली के भारसाधक किसी व्यक्ति द्वारा एक प्रमाणपत्र जिसमें कम्प्यूटर प्रणाली का संक्षिप्त वर्णन और निम्नलिखित विशिष्टियां होंगी -

(अ) यह सुनिश्चित करने के लिए कि आंकड़ों की प्रविष्टि या किया गया कोई अन्य प्रचालन केवल प्राधिकृत व्यक्तियों द्वारा किया जाता है, प्रणाली द्वारा अपनाए गए सुरक्षा उपाय;

(आ) डाटा आंकड़ों के अप्राधिकृत परिवर्तन को रोकने और उसका पता लगाने के लिए अपनाए गए सुरक्षा उपाय;

(इ) उस डाटा को पुनः प्राप्त करने के लिए उपलब्ध सुरक्षा उपाय जो प्रणाली की असफलता या किसी अन्य कारण से नष्ट हो गए हैं;

(ई) वह रीति जिससे आंकड़ों को प्रणाली से किसी हटाने योग्य साधनों, जैसे फ्लापी, डिस्क, टेप या अन्य इलेक्ट्रो-चुम्बकीय आंकड़ा भण्डारण युक्तियों में अंतरित किया जाता है;

(उ) यह सुनिश्चित करने के लिए सत्यापन का ढंग कि आंकड़ों को ऐसे हटाने योग्य सही साधनों में अंतरित कर दिया गया है;

(ऊ) ऐसी डाटा भंडारण युक्तियों की पहचान का ढंग;

(ए) ऐसी भंडारण युक्तियों के भंडारण और अभिरक्षा के प्रबंध;

(ऐ) प्रणाली में किसी गड़बड़ी का निवारण और पता लगाने के लिए रक्षोपाय; और

(ओ) कोई अन्य बात जो प्रणाली की विश्वसनीयता और सत्यता को प्रमाणित करेगी;

और

(ग) कम्प्यूटर प्रणाली के भारसाधक व्यक्ति से इस आशय का एक और प्रमाणपत्र कि उसके सर्वोत्तम ज्ञान और विश्वास के अनुसार तात्विक समय पर कम्प्यूटर प्रणाली का समुचित रूप से प्रचालन किया गया और उसे सभी सुसंगत आंकड़े उपलब्ध कराए गए थे तथा प्रश्नगत मुद्रित पृष्ठ, सुसंगत डाटा का सही रूपण है या समुचित रूप से उससे व्युत्पन्न है।''

इस प्रकार उपरोक्त प्रावधानों से यह प्रकट होता है कि किसी भी बैंक से प्राप्त खातों के विवरण अथवा एकाउंट स्टेटमेन्ट को न्यायालयीन कार्यवाही में साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करने के लिए तीन प्रमाण पत्र संलग्न किया जाना आज्ञापक है। माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा न्याय दृष्टांत ओमप्रकाशविरूद्ध सी.बी.आई.66 में यही प्रतिपादित किया गया है कि बैंककार बही साक्ष्य अधिनियम, 1891 की धारा 2ए के प्रावधानानुसार यदि बैंकों से प्राप्त खातों के विवरण के साथ तीनों अपेक्षित प्रमाण पत्र संलग्न नहीं होंगे तो ऐसे खातों के विवरण साक्ष्य में ग्राह्य नहीं किये जाने चाहिए। माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा एक कदम आगे बढ़ाकर यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि साक्ष्य लेखबद्ध करने के दौरान ऐसे खातों के विवरण के प्रिंटआउट की ग्राह्यता पर कोई आपत्ति नहीं उठाई जाती है तब भी न्यायालय इन्हें साक्ष्य में नहीं पढ़ सकती है।

इसे उदाहरण स्वरूप देखें तो यदि विकास कुमार नामक व्यक्ति ने सचिन कुमार को दो लाख रुपये का चैक जारी किया है जो विकास कुमार के बैंक, स्टेट बैंक आॅफ एम.पी. के द्वारा खाते में पर्याप्त निधि न होने के आधार पर अनादरित कर दिया जाता है तो सचिन कुमार द्वारा परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अधीन संस्थित परिवाद में यदि विकास कुमार अपने खाते का प्रिंटआउट प्राप्त कर प्रस्तुत करना चाहते हैं, तो ऐसे प्रिंटआउट पर बैंक की सील एवं प्रबंधक के हस्ताक्षर होना मात्र पर्याप्त नहीं होगा। ऐसे खाते के विवरण के प्रिंटआउट के साथ धारा 2ए के अनुसार 3 प्रमाण पत्र भी संलग्न करने होंगे। ये तीनों प्रमाण पत्र निम्न आदर्श प्रारूप में हो सकते हैं :-

प्रमाणपत्र

अंतर्गत धारा 2ए(ए) बैंककार बही साक्ष्य अधिनियम, 1891

मैं, अधोहस्ताक्षरी, अपने सर्वोच्च ज्ञान और विश्वास के आधार पर अभिकथन करता हूं कि -

1. श्री विकास कुमार स्टेट बैंक आॅफ एम.पी. की जबलपुर शाखा में खाता संख्या 12345 संधारित करते हैं।

66. Om Prakash v. CBI, 2017 SCC OnLine Del 10249

2. संलग्न बैंक खाता विवरण उक्त खाते के दिनांक 1 जनवरी 2008 से शुरू होकर दिनांक 31 जनवरी 2008 को समाप्त होने वाली अवधि के लेन-देन और शेष राशि का प्रिंटआउट है।

यशपाल सिंह
प्रबंधक, जबलपुर शाखा
स्टेट बैंक आफ एम.पी.

प्रमाणपत्र

अंतर्गत धारा 2ए(बी) बैंककार बही साक्ष्य अधिनियम, 1891

मैं, अधोहस्ताक्षरी, अपने सर्वोच्च ज्ञान और विश्वास के आधार पर अभिकथन करता हूं कि संलग्न दस्तावेज ''स्टेट बैंक आॅफ एम.पी. की सूचना सुरक्षा प्रणाली'' है जिसमें ग्राहकों के बैंक खातों संबंधी जानकारी संधारित करने के लिए उपयोग किए जा रहे कम्प्यूटर तंत्र का सत्य एवं उचित विवरण है एवं उसमें निम्नलिखित विवरण भी हैं:-

(अ) यह सुनिश्चित करने के लिए कि आंकड़ों की प्रविष्टि या किया गया कोई अन्य प्रचालन केवल प्राधिकृत व्यक्तियों द्वारा किया जाता है, प्रणाली द्वारा अपनाए गए सुरक्षा उपाय;

(आ) डाटा आंकड़ों के अप्राधिकृत परिवर्तन को रोकने और उसका पता लगाने के लिए अपनाए गए सुरक्षा उपाय;

(इ) उस डाटा को पुनः प्राप्त करने के लिए उपलब्ध सुरक्षा उपाय जो प्रणाली की असफलता या किसी अन्य कारण से नष्ट हो गए हैं;

(ई) वह रीति जिससे आंकड़ों को प्रणाली से किसी हटाने योग्य साधनों, जैसे फ्लापी, डिस्क, टेप या अन्य इलेक्ट्रो-चुम्बकीय आंकड़ा भण्डारण युक्तियों में अंतरित किया जाता है;

(उ) यह सुनिश्चित करने के लिए सत्यापन का ढंग कि आंकड़ों को ऐसे हटाने योग्य सही साधनों में अंतरित कर दिया गया है;

(ऊ) ऐसी डाटा भंडारण युक्तियों की पहचान का ढंग;

(ए) ऐसी भंडारण युक्तियों के भंडारण और अभिरक्षा के प्रबंध;

(ऐ) प्रणाली में किसी गड़बड़ी का निवारण और पता लगाने के लिए रक्षोपाय; और

(ओ) कोई अन्य बात जो प्रणाली की विश्वसनीयता और सत्यता को प्रमाणित करेगी;

अनिरूद्ध
सिस्टम एडमिनिस्ट्रेटर,
जबलपुर शाखा, स्टेट बैंक आॅफ एम.पी.

प्रमाणपत्र

अंतर्गत धारा 2ए(सी) बैंककार बही साक्ष्य अधिनियम, 1891

मैं, अधोहस्ताक्षरी, अपने सर्वोच्च ज्ञान और विश्वास के आधार पर अभिकथन करता हूं कि -

1. कम्प्यूटर प्रणाली जिसे ''स्टेट बैंक आॅफ एम.पी. की सूचना सुरक्षा प्रणाली'' में स्पष्टता से दर्शाया गया है, उस तात्विक समय पर जब खाता संख्या 12345 के दिनांक 1 जनवरी 2008 से प्रारंभ

होकर दिनांक 31 जनवरी 2008 को समाप्त होने वाली अवधि के लेन-देन और शेष राशि के प्रिंटआउट निकाले गये थे, समुचित रूप से प्रचालित थी और उसे सभी सुसंगत आंकड़े उपलब्ध कराए गए थे तथा

2. उपरोक्त प्रिंटआउट कम्प्यूटर प्रणाली पर संधारित डाटा का सही रूपण है तथा समुचित रूप से उससे व्युत्पन्न है।

अनिरूद्ध
सिस्टम एडमिनिस्ट्रेटर,
जबलपुर शाखा, स्टेट बैंक आॅफ एम.पी.

(xv) बातचीत की आॅडियो रिकार्डिंग/काॅल इन्टरसेप्शन

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1989 के मामलों में एवं राष्ट्रीय सुरक्षा से संबंधित मामलों में कार्यवाही का मुख्य आधार दो व्यक्तियों की प्रत्यक्ष बातचीत की आॅडियो रिकार्डिंग अथवा टेलीफोन/मोबाइल फोन पर की गई बातचीत की इन्टरसेप्शन रिकार्डिंग होती है। ऐसी बातचीत साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 8 के अधीन 'आचरण' होने से सुसंगत होती है।

पहले यह कार्यवाही टेप रिकार्डर पर की जाती थी और बातचीत की टेप रिकार्ड को साक्ष्य में ग्राह्य करने से संबंधित विस्तृत मार्गदर्शन न्याय दृष्टांत आर.एम. मलकानी, जियाउद्दीन बुरहानुद्दीन एवं राम सिंह वि. कर्नल राम सिंह67 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गये हैं। उक्त तीनों न्याय दृष्टांतों में प्रतिपादित दिशानिर्देश निम्नानुसार हैं:-

1. बातचीत करने वाले व्यक्ति की आवाज उसे रिकार्ड करने वाले व्यक्ति अथवा आवाज पहचानने वाले व्यक्तियों अथवा अन्य साक्ष्य द्वारा समुचति रूप से स्थापित की जानी चाहिए। जहां संबंधित व्यक्ति अपनी आवाज होने से इंकार करता है वहां बातचीत में उसकी आवाज होना कठोर साक्ष्य द्वारा प्रमाणित की जानी चाहिए।
2. टेप रिकार्डेड अभिकथन की परिशुद्धता उसे रिकार्ड करने वाले व्यक्ति द्वारा संतोषजनक प्रत्यक्ष अथवा परिस्थितिजन्य साक्ष्य द्वारा प्रमाणित की जानी चाहिए।
3. टेप रिकार्डेड अभिकथन में छेड़छाड़ अथवा परिवर्तन की प्रत्येक संभावना को समाप्त करना प्रमाणित किया जाना चाहिए।
4. टेप रिकार्डेड अभिकथन साक्ष्य अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार मामले से सुसंगत होने चाहिए।
5. टेप रिकार्ड कैसेट सावधानीपर्वूक सीलबंद कर सुरक्षित अथवा कार्यालयीन अभिरक्षा में रखी जानी चाहिए।
6. बातचीत करने वाले व्यक्ति की आवाज स्पष्ट रूप से सुनाई देनी चाहिए तथा अन्य ध्वनि एवं विघ्न के कारण विकृत नहीं हो जानी चाहिए।

67. R.M. Malkani v. State of Maharashtra, AIR 1973 SC 157, Ziyauddin Bahrunuddin Bukhari v. Brijmohan Ramdass Mehra, AIR 1975 SC 1788, Ram Singh v. Col. Ram Singh, AIR 1986 SC3

आॅडियो टेप रिकार्डर अब बीते जमाने के गैजेट हो चुके हैं उनका स्थान डिजिटल वाॅइस रिकार्डर68 ने ले लिया है। काॅल इन्टरसेप्शन भी अब आधुनिक संचार मशीनरी पर किया जाता है अर्थात यह दोनों ही उपकरण कम्प्यूटर के समान हैं और इनके द्वारा रिकार्ड की गई बातचीत (आॅडियो) सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 की धारा 2(1)(न) के अनुसार इलेेक्ट्रानिक अभिलेख मानी जाएगी। स्वाभाविक रूप से मूल इलेक्ट्राॅनिक रिकार्ड डिजिटल वाॅइस रिकार्डर अथवा काॅल इन्टरसेप्शन करने वाला उपकरण होगा। कतिपय मामलों में डिजिटल वाॅइस रिकार्डर तो साक्ष्य में प्रयुक्त किया जा सकता है परन्तु काॅल इन्टरसेप्शन करने वाला उपकरण न्यायालय में प्रस्तुत करना अव्यावहारिक होगा। अतः इन मामलों में भी बातचीत की रिकार्डिंग मूल के आउटपुट के रूप में प्रस्तुत की जाएगी जो सी.डी./डी.वी.डी./पेन ड्राइव अथवा फ्लैश ड्राइव में हो सकती है।

सर्वप्रथम यहां यह समझना आवश्यक है कि यदि न्यायालय में आॅडियो रिकार्डिंग का आउटपुट प्रस्तुत किया जाता है तो इसके साथ धारा 65बी(4) की अपेक्षानुसार प्रमाणपत्र संलग्न करना इसे साक्ष्य में ग्राहय बनाने के लिये अनिवार्य होगा। दूसरी ओर टेप रिकार्ड की गई बातचीत की भांति यहां भी आॅडियो में बातचीत करने वाले व्यक्ति की आवाज होना पृथक साक्ष्य से स्थापित करना होगा। यहां भी माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जारी दिशानिर्देश आॅडियो रिकार्डिंग की सत्यता एवं विश्वसनीयता स्थापित करने के लिये लागू होंगे और इन पर अपना मामला आधारित करने वाले पक्ष को इन्हें स्थापित करना होगा। इसके साथ-साथ साक्ष्य लेखबद्ध करते समय यदि आॅडियो रिकार्डिंग की अनुलिपि न्यायालय में उपबल्ध होगी तो न्यायालय उचित रूप से साक्ष्य लेखबद्ध कर सकेंगे। अतः आॅडियो रिकार्डिंग की अनुलिपि भी न्यायालय में प्रस्तुत की जानी चाहिए।

न्याय दृष्टांत ***के.के. वेलुसामी***(पूर्वोेक्त) में अनुबंध के विनिर्दिष्ट अनुपालन के सिविल वाद में वादी एवं प्रतिवादी के मध्य हुई बातचीत की आॅडियो रिकार्डिंग साक्ष्य में ग्राहय की गई थी। इसी प्रकार ***शमशेर सिंह वर्मा***(पूर्वोेक्त) के मामले में पाॅक्सो अधिनियम के आरोप के विचारण के दौरान अभियुक्त द्वारा अपने बचाव में अभियोक्त्री के माता-पिता तथा अपने पुत्र के मध्य की बातचीत की आॅडियो रिकार्डिंग प्रस्तुत की गयी थी। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इसे सुसंगत एवं महत्वपूर्ण साक्ष्य मानते हुए ग्राहय करने का निर्देष दिया गया।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष न्याय दृष्टांत ***संजयसिंह रामराव चवान69***के मामले में यह प्रश्न उत्पन्न हुआ था कि क्या बातचीत की रिकार्डिंग की अनुलिपि तब साक्ष्य में ग्राहय की जा सकती है जब मूल आॅडियो रिकार्डिंग ही सुनने योग्य न हो ?

इस मामले में राज्य विधि विज्ञान प्रयोगशाला द्वारा यह अभिमत दिया गया था कि सुसंगत रिकार्डिंग सुनने योग्य नहीं है इसलिए उसे स्पेक्ट्रोग्राफिक विश्लेषण (Spectrographic analysis)के लिये नहीं भेजा गया था जबकि अभियोजन द्वारा पंच साक्षियों के समक्ष आॅडियो रिकार्डिंग की अनुलिपि व अनुवाद तैयार कर प्रस्तुत किया गया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आॅडियो रिकार्डिंग की उपलब्धता के अभाव में उसकी अनुलिपि को साक्ष्य में स्वीकार करने से इंकार कर दिया गया। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि किसी भी इलेक्ट्राॅनिक साक्ष्य

68. Digital voice recorder
69. Sanjaysingh Ramrao Chavan v. Dattatray Gulabrao Phalke, AIR 2015 SC (Suppl) 127

के दो मुख्य घटक होते हैं- स्त्रोत एवं प्रमाणिकता70। जहां मूल आॅडियो रिकार्डिंग का स्त्रोत ही उपलब्ध नहींहै और विधि विज्ञान प्रयोगशाला में विश्लेषण द्वारा उसकी प्रामाणिकता स्थापित नहीं हुई है, वहां इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता है।

इस प्रकार आॅडियो रिकार्डिंग एवं काॅल इन्टरसेप्शन के न्यायालय में प्रस्तुत होने पर उपरोक्तानुसार ग्राह्यता एवं साक्ष्य लेखन किया जाना चाहिए।

(xvi) राजस्व अभिलेखों की कम्प्यूटर जनित प्रतिलिपि

ई-गवर्नेंस का लाभ आम नागरिकों तक पहुंचाने के उद्देश्य से मध्य प्रदेश शासन द्वारा म.प्र. लोक सेवाओं के प्रदान की गारण्टी अधिनियम, 2010 अधिनियमित किया गया है। इस अधिनियम में राजस्व विभाग की 16 सेवाओं को लोक सेवाओं की सूची में रखा गया है जिसमें राजस्व अभिलेखों की प्रतिलिपि उपलब्ध कराना भी सम्मिलित है।

मध्य प्रदेश शासन का राजस्व विभाग ई-गवर्नेंस का भाग हो चुका है और अधिकांश राजस्व अभिलेख अर्थात् खसरा पांचसाला एवं किस्तबंदी खतौनी अब कम्प्यूटरीकृत किए जा चुके हैं। प्रचलित खसरा, खतौनी एवं राजस्व नक्शे लोक सूचना के रूप में अधिसूचित किये गये हैं। अतः अब लोक सूचना केन्द्र में निर्धारित शुल्क अदा कर प्रचलित (चालू) खसरा, खतौनी एवं नक्शे की प्रतिलिपि कोई भी व्यक्ति प्राप्त कर सकता है। ऐसी प्रतिलिपि साॅफ्टवेयर पर संधारित राजस्व अभिलेखों का प्रिंटआउट होते हैं अर्थात् यह इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख का आउटपुट है। तब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या लोक सूचना केन्द्र से प्राप्त ऐसी प्रतिलिपि के साथ भी धारा 65 बी(4) का प्रमाण पत्र संलग्न करना आवश्यक है?

अविवादित रूप से राजस्व अभिलेख लोक दस्तावेज हैं। लोक दस्तावेज को प्रमाणित करने के लिए साक्ष्य अधिनियम 1872 की धारा 65 यह प्रावधान करती है कि -

‘‘65. अवस्थाएं जिनमें दस्तावेजों के संबंध में द्वितीयक साक्ष्य दिया जा सकेगा.-

किसी दस्तावेज के अस्तित्व, दशा या अन्तर्वस्तु का द्वितीयक साक्ष्य निम्नलिखित अवस्थाओं में दिया जा सकेगा:-

(क) ....

(ङ) जबकि मूल धारा 74 के अर्थ के अंतर्गत एक लोक-दस्तावेज है,

(च) जबकि मूल ऐसा दस्तावेज है जिसकी प्रमाणित प्रति का साक्ष्य में दिया जाना इस अधिनियम द्वारा या भारत में प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा अनुज्ञात है, ...

अवस्था (ङ) या (च) में दस्तावेज की प्रमाणित प्रति ग्राह्य है किन्तु अन्य किसी भी प्रकार प्रकार का द्वितीयक साक्ष्य ग्राह्य नहीं है।‘‘

लोक दस्तावेजों की प्रमाणित प्रतिलिपि के संबंध में साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 76, 77 व 79 के प्रावधान भी महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक है।

70. Source and authenticity

76. लोक दस्तावेजों की प्रमाणित प्रतियां .- हर लोक आॅफिसर जिसकी अभिरक्षा में कोई ऐसी लोक दस्तावेज है, जिसके निरीक्षण करने का किसी भी व्यक्ति को अधिकार है, मांग किए जाने पर उस व्यक्ति को उसकी प्रति उसके लिए विधि फीस चुकाए जाने पर प्रति के नीचे इस लिखित प्रमाण-पत्र के सहित देगा कि वह, यथास्थिति, ऐसी दस्तावेज की या उसके भाग की शुद्ध प्रति है तथा ऐसा प्रमाण-पत्र ऐसे आॅफिसर द्वारा दिनांकित किया जाएगा और उसके नाम और पदाभिधान से हस्ताक्षरित किया जाएगा तथा जब कभी ऐसा आॅफिसर विधि द्वारा किसी मुद्रा का उपयोग करने के लिए प्राधिकृत है, तब मुद्रायुक्त किया जाएगा, तथा इस प्रकार प्रमाणित ऐसी प्रतियाँ प्रमाणित प्रतियाँ कहलाएंगी। स्पष्टीकरण - जो कोई आॅफिसर पदीय कत्र्तव्य के मामूली अनुक्रम में ऐसी प्रतियाँ परिदान करने के लिए प्राधिकृत है, वह इस धारा के अर्थ के अन्तर्गत ऐसे दस्तावेजों की अभिरक्षा रखता है, यह समझा जाएगा।

77. प्रमाणित प्रतियों के पेश करने द्वारा दस्तावेजों का सबूत .- ऐसी प्रमाणित प्रतियाँ उन लोक दस्तावेजों की या अन लोक दस्तावेज के भागों की अंतर्वस्तु के सबूत में पेश की जा सकेंगी जिनकी वे प्रतियाँ होना तात्पर्यित है ।

79. प्रमाणित प्रतियों के असली होने के बारे में उपधारणा .- न्यायालय हर ऐसे दस्तावेज का असली होना उपधारित करेगा जो ऐसा प्रमाणपत्र, प्रमाणित प्रति या अन्य दस्तावेज होना तात्पर्यित है जिसका किसी विशिष्ट तथ्य के साक्ष्य के रूप में ग्राहय होना विधि द्वारा घोषित है और जिसका केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार के किसी आॅफिसर द्वारा या जम्मू-कश्मीर राज्य के किसी ऐसे आॅफिसर द्वारा, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा इसके लिए सम्यक् रूप से प्राधिकृत हो सम्यक् रूप से प्रमाणित होना तात्पर्यित हैः परन्तु यह तब जबकि ऐसा दस्तावेज सारतः उस प्ररूप में हो तथा ऐसी रीति से निष्पादित हुआ तात्पर्यित हो जो विधि द्वारा तन्निमित्त निर्दिष्ट है।

न्यायालय यह भी उपधारित करेगा कि कोई आॅफिसर, जिसके द्वारा ऐसा दस्तावेज का हस्ताक्षरित या प्रमाणित होना तात्पर्यित है, वह पदीय हैसियत, जिसका वह ऐसे कागज में दावा करता है, उस समय रखता था जब उसने उसे हस्ताक्षरित किया था।"

साक्ष्य अधिनियम के उपरोक्त प्रावधानों का समग्र प्रभाव यह है कि किसी लोक दस्तावेज की प्रमाणित प्रतिलिपि वही लोक अधिकारी दे सकता है जिसकी अभिरक्षा में ऐसा लोक दस्तावेज है। धारा 76 का स्पष्टीकरण उस प्रत्येक व्यक्ति को लोक दस्तावेज की अभिरक्षा रखने वाला व्यक्त करता है जो अपने पदीय कर्तव्य के अनुक्रम में ऐसी प्रमाणित प्रतिलिपियां प्रदान करने के लिए प्राधिकृत है। इसके साथ-साथ लोक दस्तावेज की प्रमाणित प्रतिलिपि प्रदान करने की कुछ औपचारिकताएं भी हैं जो धारा 76 में उल्लेखित हैं। धारा 79 के अनुसार लोक दस्तावेजों की प्रमाणित प्रतिलिपि के सत्य होने की उपधारणा की जाएगी जब ऐसी प्रतिलिपि विधि द्वारा तत्संबंध में निर्दिष्ट प्रारूप में हो तथा निर्दिष्ट रीति से निष्पादित हुई हो।

राजस्व अभिलेखों की प्रमाणित प्रतिलिपि प्रदान करने की रीति, निर्धारित शुल्क एवं प्रमाणपत्र का प्रारूप राजस्व पुस्तक परिपत्र द्वारा निर्दिष्ट किया गया है। अतः जहां उक्त प्रारूप में एवं उक्त रीति से राजस्व अभिलेखों की प्रमाणित प्रतिलिपि तैयार नहीं की जाती है, वहां ऐसी प्रतिलिपि न तो धारा 76 के अनुसार लोक दस्तावेज की प्रमाणित प्रतिलिपि कहलाएगी, न ही धारा 77 के अनुसार लोक दस्तावेज अथवा उसके भाग की अंतर्वस्तु प्रमाणित करने के लिए ग्राह्य होगी और न ही उसके साथ धारा 79 की असल होने की उपधारणा होगी।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी न्याय दृष्टांत ***भिनका व अन्य***[71] में यही प्रतिपादित किया गया है कि धारा 79 की उपधारणा वहीं अनुज्ञेय है जहां प्रमाणित प्रतिलिपि सारतः निर्धारित प्रारूप में है और विधि द्वारा निमित्त प्रक्रिया के अनुसार निष्पादित किया जाना तात्पर्यित हो। इस मामले में पटवारी द्वारा जारी खतौनी की प्रतिलिपि को विधिवत् प्रमाणित नहीं मानते हुए धारा 79 की उपधारणा करने से इंकार कर दिया गया था। इस विधिक स्थिति का अनुसरण करते हुए माननीय म.प्र. उच्च न्यायालय द्वारा भी ***रामेश्वर प्रसाद***[72] के मामले में पटवारी द्वारा प्रदत्त खसरा व खतौनी की सत्य प्रतिलिपि को धारा 76 के अनुसार प्रमाणित प्रतिलिपि मानने से इंकार कर दिया गया था।

लोक सेवा केन्द्र द्वारा जो प्रतिलिपियां उपलब्ध कराई जाती हैं वे एक निश्चित शुल्क पर बिना उपरोक्त प्रक्रिया का पालन किए और बिना लोक अधिकारी के प्रमाणीकरण के प्रदान कर दी जाती हैं। वस्तुतः इनका उद्देश्य मात्र जानकारी को आमजन तक सहजता से उपलब्ध कराना है। अतः वे धारा 76 के अनुसार राजस्व अभिलेखों की प्रमाणित प्रतिलिपियां नहीं होंगी। इस कारण उपरोक्त न्याय दृष्टांतों में प्रतिपादित विधि के आलोक में लोक सूचना केन्द्र से प्राप्त राजस्व अभिलेखों की कम्प्यूटर जनित प्रतिलिपि लोक दस्तावेजों की प्रमाणित प्रतिलिपि न होने से धारा 65बी(4) के प्रमाणपत्र से समर्थित होने के बावजूद लोक दस्तावेज की अंतर्वस्तु के प्रमाण के रूप में साक्ष्य में ग्राह्य नहीं होगी।

5. इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख की विश्वसनीयता एवं साक्ष्यिक मूल्य (Probativeforce) &

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के बढ़ते प्रभाव के कारण न्यायालयों में आने वाली साक्ष्य में इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य भी अब महत्वपूर्ण साक्ष्य हैं। तकनीकि विकास ने एक ओर तो तथ्यों को साबित करना आसान बना दिया है वहीं दूसरी ओर तकनीकि के दुरूपयोग से अन्याय का खतरा भी उत्पन्न

71. Bhinka & oth. v. Charan Singh, AIR 1959 SC 960
72. Rameshwar Prasad v. Govind Rao, 2007 (2) MPJR 41

कर दिया है। अतः इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों की विश्वसनीयता एवं साक्ष्यिक मूल्य पर चर्चा किए बिना इस महत्वपूर्ण विषय को नहीं समझा जा सकता है।

इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों के साक्ष्यिक मूल्य पर विचार करते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा न्याय दृष्टांत ***एस.आई.एल. इम्पोर्ट 73***में तकनीकि विकास के साथ न्यायालय में आने वाली नवीन साक्ष्य को स्वीकार एवं आत्मसात करने तथा संविधियों का निर्वचन करते समय तकनीकि विकास के लिए पर्याप्त छूट देने का निर्देश दिया गया है। इस मामले में सन् 1996 में परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन चेक अनादरण के पश्चात् परिवादी द्वारा अभियुक्त को फैक्स के माध्यम से मांग सूचना पत्र प्रेषित किया गया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस प्रकार प्रेषित मांग सूचना पत्र के निर्वाहन को उचित माना गया।

इसी प्रकार इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों के साक्ष्यिक मूल्य के महत्व पर विचार करते हुए न्याय दृष्टांत ***टोमासो ब्रूनो74***में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि वैज्ञानिक एवं इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य अनुसंधान एजेन्सी एवं अभियोजन के लिए बहुत कारगर हो सकते हैं। इसलिए हत्या के मामले में उपलब्ध होने के बावजूद सी.सी.टी.वी. फुटेज प्रस्तुत न करना, कॉल डिटेल रिकार्ड प्राप्त न करना और अभियुक्त द्वारा मोबाइल फोन में प्रयुक्त सिम कार्ड की जानकारी प्राप्त न करना मात्र दोषपूर्ण अनुसंधान नहीं है। अपितु साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114(छ) के अनुसार अभियोजन द्वारा सर्वोत्तम साक्ष्य छिपा लेने के कारण विपरीत अनुमान (adverse inference)लगाने का भी आधार है।

पूर्ववर्ती चर्चा में हम यह देख चुके हैं कि इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड या इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख किस प्रकार से किसी कम्प्यूटर तंत्र में उत्पादित, संधारित, संसाधित एवं पारेषित किये जाते हैं। किसी इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख के उत्पादन, संधारण, संसाधन एवं पारेषण में मानव हस्तक्षेप हो सकता है और कतिपय मामले में ऐसा मानव हस्तक्षेप के बिना भी किया जा सकता है। किसी इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख की सत्यता व विश्वसनीयता इस तथ्य पर ही निर्भर करती है कि इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख का उत्पादन, संधारण, संसाधन एवं पारेषण मानव हस्तक्षेप के बिना हुआ है अथवा मानव हस्तक्षेप के द्वारा हुआ है।

इस प्रसंग को उदाहरण के रूप में देखें तो किसी टेलीकॉम सेवा प्रदाता के सर्वर पर उत्पादित होने वाली सी.डी.आर. (कॉल डेटा रिकॉर्ड) अथवा किसी सार्वजनिक स्थान पर विधि प्रवर्तन एजेंसी द्वारा लगाये गये सी.सी.टी.वी. कैमरे की रिकॉर्डिंग बिना किसी मानव हस्तक्षेप के पूर्व निर्धारित सॉफ्टवेयर कमाण्ड के प्रभाव से स्वजनित (auto generated)होती है और इस कारण इनके साथ बहुत अधिक प्रभावी बल जुड़ा होता है। वहीं दूसरी ओर किसी मोबाईल फोन से बनाये गये वीडियो अथवा किसी फोटोग्राफर की दुकान से प्रिंटआउट निकाले गये फोटोग्राफ के उत्पादन एवं संसाधन में मानव द्वारा हस्तक्षेप किया जाता है। जहां मानवीय हस्तक्षेप किया गया हो वहां इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख की विश्वसनीयता स्वतः कम हो जाती है और प्रमाण भार उस व्यक्ति पर अधिक होता है जो मानव हस्तक्षेप द्वारा उत्पादित किसी इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख पर न्यायालय का विश्वास आकर्षित कराना चाहता हो।

73. SIL Import, USA v. Exim Aides Silk Importers, (1999) 4 SCC 567
74. Tomaso Bruno v. State of UP, AIR 2015 SC (Supp) 412

साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65बी(2) किसी कम्प्यूटर आउटपुट के संबंध में ऐसी चार शर्तों का वर्णन करती है जिन्हें साबित किया जाना अथवा प्रमाणित होना ऐसे आउटपुट का साक्ष्य में ग्राह्य बनाने के लिये आज्ञापक है। ये शर्तें निम्नानुसार हैं -

(2) कम्प्यूटर आउटपुट की बाबत् उपधारा (1) में वर्णित शर्तें निम्नलिखित होंगी अर्थात-

(क) सूचना से युक्त कम्प्यूटर आउटपुट, कम्प्यूटर द्वारा उस अवधि के दौरान उत्पादित किया गया था जिसमें उस व्यक्ति द्वारा, जिसका कम्प्यूटर के उपयोग पर विधिपूर्ण नियंत्रण था, उस अवधि में नियमित रूप से किए गए किसी क्रियाकलाप के प्रयोजन के लिए, सूचना भंडारित करने या प्रसंस्करण करने के लिए नियमित रूप से कम्प्यूटर का उपयोग किया गया था।

(ख) उक्त अवधि के दौरान, इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख में अंतर्विष्ट किस्म की सूचना या उस किस्म की जिससे इस प्रकार अंतर्विष्ट सूचना व्युत्पन्न प्राप्त की जाती है, उक्त क्रियाकलापों के सामान्य अनुक्रम में कम्प्यूटर में नियमित रूप से भरी गई थी।

(ग) उक्त अवधि के महत्वपूर्ण भाग में आद्योपांत, कम्प्यूटर समुचित रूप से कार्य कर रहा था अथवा यदि नहीं तो, उस अवधि के उस भाग की बाबत्, जिसमें कम्प्यूटर समुचित रूप से कार्य नहीं कर रहा था या वह उस अवधि में प्रचालन में नहीं था, ऐसी अवधि नहीं थी जिसमें इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख या उसकी अंतर्वस्तु की शुद्धता प्रभावित होती हो, और

(घ) इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख में अंतर्विष्ट सूचना ऐसी सूचना से पुनः उत्पादित या व्युत्पन्न की जाती है, जिसे उक्त क्रियाकलापों के सामान्य अनुक्रम में कम्प्यूटर में भरा गया था।

इसमें प्रथम दो शर्तें कम्प्यूटर तंत्र में भरी जाने वाली एवं उससे प्राप्त जानकारी की सत्यता को सुनिश्चित करती हैं और पश्चातवर्ती दो शर्तें उस कम्प्यूटर तंत्र के उचित रूप से कार्य करने के तथ्य को सुनिश्चित करती हैं जिसमें ऐसी जानकारी भरी जाती है अथवा जिससे ऐसी जानकारी प्राप्त की जाती है। इन शर्तों के पूरा होने की डिग्री भी इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख की विश्वसनीयता को सुनिश्चित करती है।

यहां यह तथ्य भी समझना अत्यंत आवश्यक है कि किसी इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख का मूल स्वरूप में प्रस्तुत किया जाना आवश्यक नहीं है। वहीं इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख के आउटपुट के साथ धारा 65बी(4) का प्रमाणपत्र प्रस्तुत कर देना ऐसे इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख की सत्यता का द्योतक नहीं होगा। माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष न्याय दृष्टांत ***कुंदन सिंह*** (पूर्वोक्त) में इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख की सत्यता का प्रश्न अंतर्वलित था। इस प्रश्न पर विचार करते हुये माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि धारा 65बी कहीं भी यह प्रावधान नहीं करती है कि कम्प्यूटर आउटपुट की अंतर्वस्तु धारा 65बी के अधीन अपेक्षित प्रमाणपत्र प्रस्तुत कर दिये जाने पर सत्य मान ली जायेगी। धारा 65बी तो मात्र मूल इलेक्ट्राॅनिक रिकाॅर्ड के आउटपुट की साक्ष्य में ग्राह्यता का प्रावधान करती है और इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख की अंतर्वस्तु की सत्यता एवं विश्वसनीयता से पूर्णतः असंगत है।

यहीं माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा यह भी प्रतिपादित किया गया कि जहां किसी इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख का आउटपुट धारा 65बी(4) के प्रमाणपत्र के साथ प्रस्तुत किया जाता है, वहां न्यायालय प्रथम दृष्टया मत बना सकती है कि ऐसे इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख की अंतर्वस्तु सही है। निश्चित रूप से यह उपधारणा खण्डनीय होगी और उचित मामले में न्यायालय ऐसी उपधारणा करने से इंकार भी कर सकता है। माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा आगे यह भी प्रतिपादित किया गया कि न्यायालयों को प्रत्येक इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख के आसानी से परिवर्तित होने (tampered) अथवा आसानी से बदल दिये जाने की संभावना को नजर अंदाज करना होगा। प्रत्येक इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख का साक्ष्यिक मूल्य उस मामले के सुसंगत तथ्यों पर निर्भर करेगा और इसके कोई भी निश्चित मापदंड तय नहीं किये जा सकते हैं।

माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष इस मामले में सी.डी.आर. की अंतर्वस्तु सुसंगत एवं प्रश्नगत थी जिस पर विचार करते हुये यह अभिनिर्धारित किया गया कि सी.डी.आर. में सरल क्रमांक, समय, आई.एम.ई.आई. एवं अन्य संख्या आदि बिना किसी मानवीय हस्तक्षेप के स्वजनित होती हैं जो किसी व्यक्ति का अभिकथन नहीं है इसलिये ऐसी स्वजनित साक्ष्य अनुश्रुत साक्ष्य की श्रेणी में नहीं आती है। माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के शब्दों में

> ***"अनअभिकथित आचरण (non-assertive conduct) सामान्यतया अधिक विश्वसनीय होता है यदि उससे सुसंगत अभिलेख के तैयार होने में कोई छल अथवा प्रक्षेप नहीं है। सी.डी.आर. किसी व्यक्ति की घोषणा अथवा उसके अभिकथन न होने के कारण अधिक विश्वसनीय होती है।"***

ऐसे ही प्रश्न माननीय मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष न्याय दृष्टांत ***के. रमाजयम*** (पूर्वोक्त) में उत्पन्न हुये थे, जिस पर विचार करते हुये माननीय न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि दस्तावेजों की विश्वसनीयता की जो विधि परम्परागत भौतिक दस्तावेजों पर लागू होती है, वह इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख पर लागू नहीं होगी। किसी इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख को बदलना आसान नहीं है क्योंकि प्रत्येक इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख अपने साथ मेटा डाटा (metadata) संधारित करते हैं। मेटा डाटा संरचित कोड होता है जो प्रत्येक इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख को एक विशेषता प्रदान करते हैं। यदि धारा 65बी(4) का प्रमाणपत्र प्रस्तुत कर यह साबित कर दिया जाता है कि जिस कम्प्यूटर तंत्र से जानकारी प्राप्त की गई है वह उचित रूप से कार्यरत था और न्यायालय में प्रस्तुत इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख का आउटपुट वही है जो मूल इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख में संधारित है, तो न्यायालय को उस पर विश्वास करना चाहिये।

इस मामले में माननीय मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा एक कदम आगे बढ़कर यह भी प्रतिपादित किया गया है कि -

> ***"विपक्ष हमेशा इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख में हेर-फेर (manipulation) की शिकायत करेगा, परन्तु न्यायालय ऐसे काल्पनिक आपत्तियों को साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114 के उपधारणात्मक प्रावधानों को विचार में रखकर निरस्त कर सकती है। De Omnibus dubitamdum***

(प्रत्येक तथ्य पर संदेह करें) का सिद्धांत वैज्ञानिक आविष्कारों के लिये तो मार्ग प्रशस्त कर सकता है परन्तु न्यायिक कार्यवाहियों में यह असंगत होता है, जहां निश्चायक प्रमाण अव्यवहारिक आदर्श परिस्थिति होती है।"

इसी प्रकार ***किशन त्रिपाठी*** (पूर्वोक्त) के मामले में माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा सी.सी.टी.वी. फुटेज पर विचार करते हुये यह अभिनिर्धारित किया गया है कि सी.सी.टी.वी. फुटेज स्वजनित इलेक्ट्रानिक अभिलेख है, जिसके उत्पादन में किसी भी प्रकार का मानवीय हस्तक्षेप नहीं हो सकता है। पूर्व निर्धारित साफ्टवेयर निर्देशों के कारण प्रत्येक सी.सी.टी.वी. फुटेज का एक निश्चित सरल क्रमांक, आकार एवं समय सुसंगत फाइल के साथ उत्सर्जित होता है इसीलिए सी.सी.टी.वी. फुटेज को बाद में देखने वाला व्यक्ति उसी स्थिति में होता है, जैसा कि वह सी.सी.टी.वी. फुटेज में रिकार्ड की गई घटना का चक्षुदर्शी हो।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष न्याय दृष्टांत ***तुकाराम एस. दिघोले***[75] में भाषणों का टेप रिकार्ड वी.एच.एस. कैसेट में तैयार कर प्रस्तुत किया गया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि वी.एच.एस. कैसेट पुरानी मैग्नेटिक टेप वाली वीडियो कैसेट होती है जो एडिटिंग, काट-छांट एवं पक्षांतरण (Editing, excision and transposition) द्वारा आसानी से परिवर्तित की जा सकती है इसलिए इनकी प्रमाणिकता एवं सत्यता के संबंध में प्रमाण का मानक (Standard of Proof) अन्य दस्तावेजी साक्ष्य की तुलना में अधिक होगा।

इस न्याय दृष्टांत के आधार पर यह तर्क किया जा सकता है कि प्रत्येक इलेक्ट्रानिक रिकार्ड के लिए प्रमाण भार का मानक अन्य दस्तावेजों की तुलना में अधिक होता है परन्तु यह तर्क उचित नहीं है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस मामले में वी.एच.एस. कैसेट की तकनीक पुरानी होने तथा इलेक्ट्रानिक तकनीक में तेजी से विकास के कारण इनमें परिवर्तन एवं छेड़छाड़ की संभावना होना व्यक्त किया है। माननीय न्यायालय द्वारा सभी इलेक्ट्रानिक अभिलेखों के लिए कोई सामान्य टिप्पणी नहीं की गई है।

माननीय म.प्र. उच्च न्यायालय की खण्डपीठ द्वारा न्याय दृष्टांत ***लक्ष्मी वर्मा वि. शारिक खान व अन्य***[76] में इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख के साक्ष्यिक मूल्य पर विचार करते हुए यह अवधारित किया गया है कि इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख के रूप में प्रस्तुत साक्ष्य मौखिक साक्ष्य का अध्यारोहण करती है और मजबूत साक्ष्य है।

इस प्रकार उपरोक्त चर्चा के आलोक में हम यह कह सकते हैं कि इलेक्ट्रानिक अभिलेख का साक्ष्यिक मूल्य भी उसी प्रकार प्रत्येक मामले के तथ्यों, परिस्थितियों एवं अन्य कारकों पर निर्भर करेगा जैसा कि किसी अन्य साक्ष्य का साक्ष्यिक मूल्य निर्भर करता है। इस तथ्य को एक और उदाहरण के द्वारा समझने का प्रयास करें तो सामान्यतया यदि किसी घटना में बुरी तरीके से घायल और अस्पताल में भर्ती किसी आहत के मृत्युकालिक कथन लेखबद्ध करने की कार्यवाही का वीडियो तैयार कर लिया जाये और इस वीडियो को न्यायालय में प्रस्तुत किया जाये तो प्रत्येक व्यक्ति उस वीडियो में रिकॉर्ड

75. Tukaram S. Dighole v. Manikrao Shivaji Kokate, (2010) 4 SCC 329
76. Laxmi Verma (Smt.) v. Sharik Khan and Ors., ILR 2017 MP 1978

की गई बातों को सही मान लेगा। यही माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के न्याय दृष्टांत ***लक्ष्मी उर्फ लच्छू 77***के मामले में हुआ था, जहां दहेज की मांग को लेकर मृतका को जलाकर मारने का आरोप अभियुक्तगण पर था, मृतका के मृत्युकालिक कथन की वीडियोग्राफी कराई गई थी, जब वीडियोग्राफी न्यायालय में चलाई गई तो यह देखा गया कि मृतका का प्रत्येक उत्तर नपा-तुला था, प्रत्यक्ष एवं पूर्व नियोजित प्रश्न मृतका से पूछे जा रहे थे और मृतका भी उनके उत्तर में सुस्पष्ट एवं निर्णयात्मक अभिकथन कर रही थी। इन परिस्थितियों में माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया कि मृत्युकालिक कथन विश्वसनीय नहीं हैं क्योंकि यह प्रथम दृष्ट्या पूर्वाभ्यास (Pre rehearsal)का परिणाम थे एवं मृतका को सिखाकर या बताकर बयान लेखबद्ध कराये जा रहे थे।

इस प्रकार निष्कर्ष से यह कहा जा सकता है कि इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख का साक्ष्य में ग्राह्य हो जाना उसकी सत्यता का द्योतक नहीं होगा और यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा कि उस मामले में प्रस्तुत की गई डिजिटल साक्ष्य का साक्ष्यिक मूल्य क्या हो। साक्ष्यिक मूल्य का अनुमान लगाने के लिये न्यायालय उन्हीं पारंपरिक एवं समसामयिक सिद्धांतों से शासित होंगे जैसे किसी भी अन्य प्रकृति की साक्ष्य के साक्ष्यिक मूल्य का अनुमान लगाने के लिये शासित होते हैं। परन्तु यदि इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख की सत्यता एवं विश्वसनीयता स्थापित कर दी जाती है तो वहां यह मजबूत साक्ष्य होगा और मौखिक साक्ष्य पर अभ्यारोही प्रभाव रखेगा।

6. प्रकीर्ण विषय (Miscellaneous Issues) &

(1) सुपुर्दनामा

जब भी किसी मामले में अनुसंधान के दौरान कम्प्यूटर हार्डवेयर जैसे लैपटॉप, सी.पी.यू., हार्ड डिस्क, मोबाईल फोन अथवा अन्य इलेक्ट्रॉनिक उपकरण की जप्ती की जायेगी तो रिमाण्ड के साथ ही ऐसे जप्तशुदा संपत्ति के सुपुर्दनामे का आवेदन न्यायालय में प्रस्तुत किया जायेगा। तब न्यायालय को यह समाधान करना होगा कि ऐसे जप्तशुदा इलेक्ट्रॉनिक हार्डवेयर को सुपुर्दनामे पर सौंपा जाये अथवा नहीं। इस प्रश्न का उत्तर आसान नहीं है। सुपुर्दनामा आवेदन के निराकरण में जप्तशुदा इलेक्ट्रॉनिक उपकरण को सुपुर्दनामे पर दिया जाये अथवा नहीं दिया जाये, इस प्रश्न का निराकरण कई कारकों पर निर्भर करेगा और न्यायालयों को ऐसे कारकों पर एक साथ विचार कर अपना मत बनाना होगा।

माननीय मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा ***लेनोवो इंडिया 78***के मामले में यह प्रतिपादित किया गया है इलेक्ट्रॉनिक उपकरण भी संपत्ति की उस श्रेणी में आते हैं जो शीघ्र एवं प्रकृत्या क्षयशील हैं (perishable in nature)। अर्थात् सुपुर्दनामे पर देने के साथ-साथ न्यायालय को इस बिन्दु पर भी विचार करना होगा कि यदि ऐसे इलेक्ट्रॉनिक उपकरण का कोई दावाकर्ता न हो तो दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 459 के अनुसार उसका विक्रय कर दिया जाए।

इलेक्ट्रॉनिक उपकरण कई प्रकार के मामलों में जप्त किये जा सकते हैं और यह अपराध की प्रकृति पर निर्भर होगा कि साक्ष्य के दौरान इलेक्ट्रॉनिक उपकरण की आवश्यकता किस रूप में होगी। उदाहरण के लिये यदि कोई लैपटॉप अथवा मोबाईल फोन चोरी हो जाता है तो ऐसे लैपटॉप अथवा मोबाईल फोन की अंतर्वस्तु न्यायालय के निष्कर्ष पर कोई प्रभाव नहीं डालेगी और मामले से पूर्णतः

77. Laxmi @ Laccho And Another v. State NCT of Delhi, 2016 Law Suit (Del) 761
78. Lenovo India and another v. The State, 2013 Law Suit (Mad) 2343

असंगत होगी। ऐसी स्थिति में बिना किसी विशेष निर्देश के लैपटाॅप अथवा मोबाईल फोन सुपुर्दनामे पर सौंपे जा सकते हैं।

वहीं दूसरी ओर यदि किसी व्यक्ति पर अपने मोबाईल फोन में बालक से संबंधित अश्लील वीडियो रखने एवं उन्हें प्रसारित करने का आरोप है तो यहां मोबाईल फोन की अंतर्वस्तु ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण साक्ष्य होगी। यदि मोबाईल फोन ऐसे मामले में सुपुर्दगी पर सौंप दिया गया तो संभावना होगी कि उसकी अंतर्वस्तु को नष्ट कर दिया जायेगा। तब न्यायालय को ऐसे मोबाईल फोन को सुपुर्दनामे पर देने से इंकार कर देना चाहिए।

इसे एक अन्य उदाहरण से समझने का प्रयास करें तो यदि किसी मामले में लैपटाॅप जप्त किया जाता है जिसमें कोई ऐसी प्रविष्टि रखने का आरोप है जो देश की सुरक्षा को नुकसान पहुंचा सकती है। प्रथम दृष्ट्या लैपटाॅप में ऐसी कोई सामग्री नहीं मिलती है और विधि विज्ञान प्रयोगशाला में जांच करने पर लैपटाॅप की हार्ड डिस्क से ऐसी डिलीटेड फाइल प्राप्त कर ली जाती है जो लैपटाॅप के स्वामी को अपराध से संयोजित करती हो। यहां लैपटाॅप की हार्ड डिस्क को लैपटाॅप से पृथक किया जा सकता है और ऐसी हार्ड डिस्क की इमेज काॅपी (प्रतिबिंब) तैयार कर उस पर फाॅरेंसिक्स किया जा सकता है। लैपटाॅप की हार्डडिस्क निकालने के बाद शेष लैपटाॅप का साक्ष्य में कोई उपयोग नहीं होगा। तब न्यायालय सुपुर्दनामा आवेदन का निराकरण इस निर्देश के साथ कर सकती है कि सुसंगत हार्डडिस्क उस लैपटाॅप से पृथक कर दी जाये और लैपटाॅप आवेदक को सुपुर्दनामे पर सौंप दिया जाये।

कुछ ऐसे उपकरण भी हो सकते हैं जिनकी आंतरिक स्मृति (internal memory)हो कि उन्हें उपकरण से पृथक नहीं किया जा सकता हो। ऐसे उपकरणों को सुपुर्दनामे पर देने से इंकार किया जा सकता है यदि उनकी अंतर्वस्तु साक्ष्य का महत्वपूर्ण भाग हो।

न्यायालय के समक्ष आने वाले सुपुर्दनामा आवेदन कुछ मामलों में ऐसे इलेक्ट्राॅनिक उपकरणों के संबंध में भी लगाये जा सकते हैं जिनका उपयोग तो अपराध कारित करने के लिये किया गया हो परन्तु उनकी अंतर्वस्तु साक्ष्य का भाग न हो। माननीय मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष न्याय दृष्टांत ***चरल सिंह***[79]के मामले में प्रसव पूर्व एवं प्रसव पश्चात् (लिंग चयन का निषेध) अधिनियम, 1994 के अधीन पंजीबद्ध मामले में जप्त की गई सोनोग्राफी मशीन सुपुर्दगी पर चाही गई थी। अभियोजन का आक्षेप था कि सानोग्राफी मशीन का उपयोग अभियुक्त द्वारा लिंग चयन के लिये किया जा रहा है। माननीय मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया कि सोनोग्राफी मशीन एक अत्यधिक मूल्यवान संपत्ति है और जप्त एवं सीलबंद रहने से अनुपयोगी हो जायेगी। उसकी अंतर्वस्तु भी साक्ष्य का प्रसंग नहीं है। अतः सुपुर्दनामा आवेदन स्वीकार किया गया।

इसी प्रकार न्याय दृष्टांत ***रानू गुप्ता***[80]में सार्वजनिक द्यूत अधिनियम, 1867 की धारा 4ए के उल्लंघन का मामला जिसमें पुलिस द्वारा छापामारी कर अभियुक्त के आधिपत्य से नकदी के साथ-साथ कई इलेक्ट्राॅनिक उपकरण जैसे कम्प्यूटर, लैपटाॅप और मोबाईल फोन जप्त किये गए थे। माननीय छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि नकदी के अतिरिक्त शेष इलेक्ट्राॅनिक उपकरण समय के साथ अपना मूल्य खो देंगे और उन्हें अभिरक्षा में रखने से किसी का हित सिद्ध नहीं होगा। अतः जप्तशुदा इलेक्ट्राॅनिक उपकरण अभियुक्त को सशर्त सौंपे जाने का आदेश दिया गया।

79.Charal Singh v. Sanjay Goyal, 2015 ILR (MP) 1597
80.Ranu Gupta v. State of Chattisgarh, 2007 (2) Crimes(HC) 601

इस प्रकार इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के सुपुर्दनामा आवेदन पत्र उपरोक्त विधि के आलोक में निराकृत किये जा सकते हैं।

(2) धारा 207 दं.प्र.सं. का अनुपालन

ऐसे प्रत्येक मामले में जहां इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख साक्ष्य की विषय-वस्तु हो और अनुसंधान के दौरान अनुसंधान अधिकारी द्वारा उन्हें जप्त किया गया हो, वहां अभियोग पत्र प्रस्तुत होने पर न्यायालयों के समक्ष एक प्रश्न और उत्पन्न होगा कि ऐसे इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख की प्रति दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 207 के अनुपालन में किसी अभियुक्त को दिलाई जाये अथवा नहीं। इसके साथ यह प्रश्न भी उत्पन्न होगा कि यदि प्रति अभियुक्त को दिलाई जानी है तो किस प्रकार दिलाई जाये?

इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख के मामले में दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 207 का अनुपालन सुनिश्चित कराने के बिन्दु पर न्याय दृष्टांत ***धरमबीर विरूद्ध सी.बी.आई.***[81] में माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय सुसंगत है। माननीय उच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि किसी कम्प्यूटर की हार्ड डिस्क एवं हार्ड डिस्क की अंतर्वस्तु को कॉपी करके बनाई गई सी.डी. भी दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 207 के उद्देश्य से दस्तावेज है एवं धारा 207 सहपठित धारा 173(5) का पालन सुनिश्चित करते हुए प्रत्येक अभियुक्त को इसकी प्रतिलिपि उपलब्ध कराया जाना आवश्यक है।

दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष ही न्याय दृष्टांत ***आशुतोष वर्मा***[82] में भी इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख के आउटपुट की प्रतिलिपि अभियुक्तगण को उपलब्ध कराये जाने का प्रश्न अंतर्वलित था। इस मामले में अभियुक्तगण के ऋजु विचारण के अधिकार को सुनिश्चित कराने के उद्देश्य से यह आदेशित किया गया कि उन्हें संपूर्ण सी.डी.आर., अभियुक्तगण के मध्य बातचीत करने की पूर्ण एवं सही अनुलिपि (transcript)एवं अनुसंधान एजेंसी द्वारा जप्त की गई पूर्ण एवं मूल स्वरूप की वीडियो फुटज उपलब्ध कराई जाये।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष भी यह प्रश्न ***तरूण त्यागी***[83] के मामले में उत्पन्न हुआ था जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दण्ड प्रक्रिया की धारा 207 के अनुसार अभियुक्त के कम्प्यूटर की हार्ड डिस्क की प्रतिलिपि प्राप्त करने के अधिकार की पुष्टि की गई है।

उपरोक्त न्याय दृष्टांतों में प्रतिपादित विधि के आलोक में यह कहा जा सकता है कि जिस भी मामले में इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख पर अभियोजन अपना मामला आधारित करता है वहां इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख की प्रति अभियुक्त को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 207 के अनुसार दिलाई जानी चाहिये। इसका केवल एक ही अपवाद हो सकता है जो दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 207 की उपधारा 5 में बतलाया गया है। जहां इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख की अंतर्वस्तु इतनी बड़ी मात्रा में हो कि उसकी प्रति दिलाया जाना संभव नहीं होगा, वहां इसके सुसंगत भाग की प्रति दिलाई जा सकती है अथवा संपूर्ण इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख की अंतर्वस्तु के अवलोकन का अवसर प्रदान किया जा सकता है।

अब अगला प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि दण्ड प्रक्रिया की धारा 207 का अनुपालन किस रीति से कराया जाये? अर्थात् किस प्रकार और कैसे कम्प्यूटर हार्ड डिस्क की प्रति अथवा सी.डी. की प्रति अभियुक्त को उपलब्ध कराई जाये। अभियुक्त के द्वारा हमेशा यह आपत्ति की जायेगी कि जो प्रति

81.Dharambir v. Central Bureau of Investigation, 148 (2008) DLT 289
82.Ashutosh Verma v. CBI, Crl.M.C. No. 79/2014 Judgment dated 4th December, 2014
83.Tarun Tyagi v. CBI, 2017 (4) SCC 490

उसे उपलब्ध कराई गयी है वह जप्तशुदा प्रति से भिन्न है। दूसरी ओर अभियुक्त को हार्ड डिस्क या सी.डी. की जो प्रति दी जायेगी उसमें अभियुक्त स्वयं भी परिवर्तन कर सकता है।

यह प्रश्न माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष तरूण त्यागी (पूर्वोक्त) में भी उत्पन्न हुआ था जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा हार्ड डिस्क एवं सी.डी. की क्लोन इमेज (clone image)अभियुक्त को उपलब्ध कराने का निर्देश दिया था और विचारण के प्रक्रम पर अभियुक्त स्वयं को प्रदान की गई प्रति की सत्यता को चुनौती न दे, यह सुनिश्चित करने वाली दो शर्तें अधिरोपित की थीं जो निम्नानुसार हैं -

(क) अभियुक्त को प्रतिलिपि उपलब्ध कराने के पूर्व इलेक्ट्रानिक अभिलेख की अंतर्वस्तु अभियुक्त एवं अभियोगी अथवा उनके अधिवक्ताओं की उपस्थिति में न्यायालय द्वारा लेखबद्ध की जायेगी और उस पर दोनों पक्षों के हस्ताक्षर लेकर उसकी सत्यता अभिप्रमाणित की जायेगी, जिससे कि पश्चातवर्ती प्रक्रम पर अभियुक्त उसे प्रदान की गई प्रति की सत्यता को चुनौती न दे सके।

(ख) अभियुक्त इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख की अंतर्वस्तु का किसी भी प्रकार से कैसे भी उद्देश्य के लिये दुरूपयोग नहीं करेगा और ऐसा न करने का वचन शपथ पत्र पर न्यायालय में देगा।

इस प्रकार उपरोक्त न्याय दृष्टांत से सहायता लेकर न्यायालय भी दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 207 का अनुपालन ऐसी शर्तें अधिरोपित कर सुनिश्चित करा सकते हैं। इसके साथ-साथ प्रत्येक इलेक्ट्रानिक अभिलेख को संधारित करने वाले भंडारण यंत्र हार्ड डिस्क, सी.डी., डी.वी.डी., पेन ड्राइव आदि की हैष वेल्यू भी निकालकर ऐसी भंडारण यंत्र की क्लोनिंग कर प्रतिबिंब तैयार कर मूल एवं प्रतिलिपि की हैश वेल्यू का मिलान कर उनकी अंतर्वस्तु की सत्यता सुनिश्चित कर उनके या उनके प्रतिबिंब की प्रति अभियुक्त को दिलाई जा सकती है।

यही प्रक्रिया सिविल मामलों में एक पक्ष द्वारा प्रस्तुत इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों की प्रतिलिपि विपक्षी को उपलब्ध कराने के लिए अपनाई जानी चाहिए।

(3) विचारण लंबित रहने के दौरान इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख का रखरखाव

न्यायालयों के समक्ष इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख मूल अवस्था में अथवा आउटपुट के रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। आउटपुट यदि पेपर पर निकाला गया प्रिंटआउट है तो वह अभिलेख की नस्ती में ही संलग्न हो जायेगा और उसके पृथक रख-रखाव की कोई आवश्यकता नहीं होगी।

परंतु जहां आउटपुट सी.डी./डी.वी.डी./पेन ड्राइव/फ्लैश ड्राइव में है अथवा मूल इलेक्ट्रानिक उपकरण ही साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जाता है तो वहां विचारण के दौरान इनके रख-रखरखाव का प्रश्न उत्पन्न होगा। ऐसे इलेक्ट्रानिक उपकरणों एवं भंडारण यंत्रों का रख-रखाव इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि इनकी अंतर्वस्तु महत्वपूर्ण हो सकती है जो इलेक्ट्रो-मैग्नेटिक पदार्थ में संधारित होती है। उचित रख-रखाव के अभाव में ऐसे इलेक्ट्रानिक उपकरण एवं भंडारण यंत्र खराब हो सकते हैं और उसमें अंतर्विष्ट साक्ष्य न्यायालय में आने से विरत रह जायेगी।

इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का रख-रखाव तो एक पहलू है। इलेक्ट्रो-मैग्नेटिक पदार्थ का उपयोग होनेकेकारणउचितरख-रखाव के बावजूद भी इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों केखराबहोनेकी संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है। इसलिए भले इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों एवं भंडारण यंत्रों का विचारण केदौरानउचितरख-रखावकिया जा रहा हो, तब भी न्यायालयोंकोभरसकप्रयासकरनाचाहिएकि ऐसी इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य को किसी भी मामले के विचारण में यथा-शीघ्र लेखबद्ध कर लिया जाये और विचारण के उत्तरोत्तर प्रक्रम तक साक्ष्य लेखबद्ध करने के लिए प्रतीक्षा न की जाये। यह मत माननीय मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा भी न्याय दृष्टांत ***लेनेवो इंडिया*** (पूर्वोक्त) में व्यक्त किया गया है।

अब रख-रखाव के बिन्दु पर विचार करें तो सर्वप्रथम तो यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि न्यायालयों के मालखाने अभी इस स्थिति में नहीं हैं कि वहां इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों को विचारण के दौरान उचित अभिरक्षा में रखा जा सके। इसलिए जहां तक संभव हो मालखाने अथवा नजारत अनुभाग में इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों को रखने से बचना चाहिए।

यदि इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का आकार छोटा हो तो उन्हें एन्टि-स्टैटिक बैग (Anti-static Bag)[84]के भीतर रखकर उसके बाद परंपरागत रीति से सीलबंद कर न्यायालय में ही संबंधित रीडर की अभिरक्षा में अभिलेख से पृथक रखना चाहिए।

एन्टि-स्टैटिक बैग का व्यय कौन वहन करेगा ? यह न्यायालयों के समक्ष पुनः एक दक्ष प्रश्न के रूप में उत्पन्न होगा। मेरे विनम्र मत में जो भी पक्ष इलेक्ट्रॉनिक उपकरण को साक्ष्य के रूप में न्यायालय में प्रस्तावित करता है और उसे न्यायालय में प्रस्तुत करना चाहता है, उस पक्ष को ही एन्टि-स्टैटिक बैग का व्यय वहन करना चाहिए।

जहां इलेक्ट्रॉनिक उपकरण का आकार इतना बड़ा हो कि उसे न्यायालय में रीडर की अभिरक्षा में रखना प्रासंगिक एवं व्यावहारिक नहीं हो, वहां न्यायालय को प्रयास करना चाहिए कि संबंधित थाने के मालखाने में अन्यथा किसी सुरक्षित स्थान पर ऐसे इलेक्ट्रॉनिक उपकरण को रखा जाए। ऐसा वैकल्पिक सुरक्षित स्थान जिला मुख्यालय का साईबर सेल अथवा पुलिस अधीक्षक कार्यालय भी हो सकता है।

माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों एवं उपकरणों के सुरक्षित रखे जाने केलिएनियमबनाएगयेहैंपरन्तुमध्यप्रदेशराज्य में कार्यरत् न्यायालयोंकीअधोसरंचना मेंउक्त नियमों का पालन अभी संभव नहीं है। इसलिए जब तक माननीय मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों के विचारण के दौरान संधारण के संबंध में पृथक नियम नहीं बना दिये जाते, तब तक उपरोक्त सुझावों अनुसार इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों का रख-रखाव सुनिश्चित किया जा सकता है।

(4) इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों का अंतिम निराकरण

कई बार ऐसी स्थिति निर्मित हो सकती है कि अनुसंधान के दौरान जप्त किए गए मूल इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख एवं इलेक्ट्रॉनिक उपकरण न्यायालय द्वारा सुपुर्दनामे पर न सौंपे जाएं अथवा कोई भी व्यक्ति ऐसे जप्तशुदा उपकरण को प्राप्त करने के लिये न्यायालय के समक्ष उपस्थित न हो। दूसरी ओर ऐसी भी स्थिति उत्पन्न हो सकती है कि जप्तशुदा संपत्ति सुपुर्दनामे पर किसी व्यक्ति को सौंप दी जाए और मामले के अंतिम निराकरण पर न्यायालय का यह मत हो कि संपत्ति अधिहृत की जानी

84. Anti-static Bag एक विशेष प्रकार का लिफाफानुमा बैग होता है जिसमें इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों को रखने से उनका Electro Magnetic पदार्थ किसी भी बाहरी प्रभाव से सुरक्षित रहता है।

चाहिए अथवा उसका विनष्टीकरण किया जाना चाहिए अथवा किसी अन्य व्यक्ति को सौंपी जानी चाहिए। कई बार स्थिति यह भी हो सकती है कि जप्तशुदा इलेक्ट्रॉनिक उपकरण की अंतर्वस्तु अथवा उसकी स्मृति में संधारित अभिलेख आपत्तिजनक/लोकहित को विपरीत रूप से प्रभावित करने वाले हों और किसी भी व्यक्ति को ऐसी आपत्तिजनक सामग्री सौंपा जाना न्यायालय के मत में उचित न हो।

उपरोक्त सभी मामलों में इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों का अंतिम निराकरण भिन्न-भिन्न रीति से किया जाना होगा। अतः इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख के अंतिम निराकरण के लिए कोई सीधा निष्कर्ष या सुझाव दिया जाना संभव नहीं है।

इस संबंध में दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 452 सुसंगत है और प्रत्येक इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख के निराकरण में न्यायालय का निष्कर्ष उन्हीं सिद्धांतों पर आधारित होना चाहिए जो किसी भी अन्य जप्तशुदा संपत्ति के निराकरण के लिए स्थापित हैं। इसके साथ-साथ जो अन्य कारक न्यायालय के निष्कर्ष को प्रभावित करेंगे उनमें केन्द्र सरकार द्वारा जारी इलेक्ट्रॉनिक कचरा प्रबंधन एवं संचालन नियम, 2011[85] हैं। किसी भी इलेक्ट्रॉनिक उपकरण का विनष्टीकरण इन नियमों के अनुसार ही किया जाना चाहिए।

जहां किसी इलेक्ट्रॉनिक उपकरण की स्मृति में आपत्तिजनक/लोकहित को विपरीत रूप से प्रभावित करने वाली सामग्री संधारित हो वहां न्यायालय को Anti-Forensicतकनीक का प्रयोग कर ऐसे उपकरण को ForensicallyWipeकरने के उपरांत राजसात करने का आदेश देना चाहिए।[86] ऐसे Wipeकिए गए इलेक्ट्रॉनिक उपकरण को नष्ट करने के स्थान पर लोक नीलामी द्वारा उसका मूल्य प्राप्त कर राजकोष में जमा किया जा सकता है, बशर्ते ऐसा इलेक्ट्रॉनिक उपकरण उपयोगी बचा हो।

इस प्रकार उपरोक्त सुझावों के अनुसार इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों के अंतिम निराकरण का आदेश न्यायालय द्वारा किया जा सकता है।

(5) धारा 65बी का प्रमाणपत्र कौन जारी कर करता है?

एक और दक्ष प्रश्न जो न्यायालयों के समक्ष उत्पन्न होता है वह यह है कि धारा 65बी(4)का प्रमाणपत्र कौन जारी कर सकता है। इस संबंध में साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65बी(4) में ही यह प्रावधान है कि अपेक्षित प्रमाणपत्र किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित किया जाना चाहिये जो कम्प्यूटर आउटपुट उत्सर्जित करने वाली युक्ति के प्रचालन अथवा जिन क्रियाकलापों के दौरान ऐसा आउटपुट उत्सर्जित किया गया हो, उसके प्रबंधन के संबंध में उत्तरदायी पदीय हैसियत रखता हो।

इसे आसान शब्दों में समझने का प्रयास करें तो धारा 65बी(4) द्वारा अपेक्षित प्रमाणपत्र एक ऐसे व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित किया जाना तात्पर्यित है जो या तो उस कम्प्यूटर तंत्र का आॅपरेटर/उपयोगकर्ता हो अथवा उस कार्यालय में प्रबंधकीय पद धारण करता हो, जिसकी कार्यवाही के दौरान ऐसा कम्प्यूटर आउटपुट उत्सर्जित किया गया है जो न्यायालय में साक्ष्य के रूप में प्रस्तावित है।

उदाहरण स्वरूप एक पुलिस थाने में रो जनामचा सान्हा की प्रविष्टि का कार्य एक आरक्षक करता है। तब रोजनामचा सान्हा का प्रिंटआउट यदि साक्ष्य के रूप में न्यायालय में प्रस्तुत किया जाता है तो

85.E-waste Management and Handling Rules, 2011

86.Wiping Digital Forensic में एक Anti-Forensic तकनीक है जिसके द्वारा किसी भी भंडारण यंत्र की स्मृति को पूरी तरह से साफ कर दिया जाता है।)

उसके साथ ऐसे कम्प्यूटर आॅपरेटर/आरक्षक का प्रमाणपत्र संलग्न करना होगा। यहां थाना प्रभारी थाने की समस्त गतिविधियों का प्रबंधन करने के लिये उत्तरदायी हैं। यदि थाना प्रभारी स्वयं का प्रमाणपत्र संलग्न करते हैं तो यह प्रमाणपत्र भी धारा 65बी(4) की अपेक्षाओं को पूरा करेगा और ऐसे आउटपुट को साक्ष्य में ग्राह्य बनाने के लिये पर्याप्त होगा। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि प्रमाणपत्र जारी करने वाले व्यक्ति का कम्प्यूटर विशेषज्ञ होना कदापि आवश्यक नहीं है और कोई भी व्यक्ति जो या तो उस कम्प्यूटर तंत्र का उपयोगकर्ता हो अथवा उसके उपयोग के संबंध में कोई प्रबंधकीय पद धारण करता हो, प्रमाणपत्र जारी कर सकता है।

किसी मामले में कितने व्यक्तियों द्वारा धारा 65बी(4) का प्रमाणपत्र इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख के आउटपुट के साथ संलग्न करना होगा, यह इस तथ्य पर निर्भर करता है कि इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख कितने हाथों से होकर गुजरते हुए न्यायालय में प्रस्तुत हुआ है। उदाहरण के लिये ***महाराष्ट्र राज्य विरूद्ध राजेश*** (पूर्वोक्त) के मामले में पूर्व में हमने देखा है कि एक पेट्रोल पंप पर लगे सी.सी.टी.वी. रिकाॅर्डिंग को न्यायालय में साबित करने के लिये चार व्यक्तियों को धारा 65बी(4) के प्रमाणपत्र संलग्न करने पड़े थे। इसी प्रकार सी.डी.आर. की ग्राह्यता के बिन्दु पर भी हमने देखा है कि न्यायालय में सी.डी.आर. साबित करने के लिये दो अथवा तीन अथवा इससे अधिक व्यक्तियों के पृथक प्रमाणपत्र भी प्रस्तुत करने पड़ सकते हैं।

एक और प्रश्न न्यायालयों के समक्ष उठाया जा सकता है कि धारा 65बी(4) में उपयोग शब्दावली ***पदीय हैसियत*** ***(Official Position)*** से क्या कोई शासकीय कर्मचारी ही अपेक्षित है? यह प्रश्न माननीय मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष न्याय दृष्टांत ***सी.वी. मनीगंदन***[87] में उत्पन्न हुआ, जिस पर माननीय न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि धारा 65बी(4) द्वारा अपेक्षित प्रमाणपत्र किसी शासकीय अधिकारी अथवा उसके कार्य के द्वारा जारी किया जाना अपेक्षित नहीं है। यहां कोई निजी व्यक्ति भी प्रमाणपत्र जारी कर सकता है यदि वह उस इलेक्ट्राॅनिक युक्ति का उपयोगकर्ता अथवा गतिविधियों का प्रबंधक हो जिसके द्वारा इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख का आउटपुट प्राप्त किया गया है।

(6) क्या धारा 65बी(4) का प्रमाणपत्र इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख के आउटपुट का समसामयिक होना चाहिये?

बार-बार न्यायालयों के समक्ष यह प्रश्न उठाये जाते हैं कि जब इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख का आउटपुट प्राप्त किया गया था तब कोई प्रमाणपत्र प्रस्तुत नहीं किया गया था। इसलिए पश्चातवर्ती प्रक्रम पर यदि प्रमाणपत्र संलग्न किया भी जाता है तो ऐसा प्रमाणपत्र महत्वहीन होगा और सम-सामयिक *(Contemporaneous)* न होने के कारण इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख के आउटपुट को साक्ष्य में ग्राह्य नहीं बनायेगा।

यह प्रश्न माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष ***कुंदन सिंह*** (पूर्वोक्त) एवं माननीय मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष ***के. रमाजयम*** (पूर्वोक्त) के मामलों में उत्पन्न हुआ था। दोनों ही न्याय दृष्टांतों में क्रमशः माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय एवं माननीय मद्रास उच्च न्यायालय की खण्डपीठ के द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि यदि साक्ष्य एकत्रित करने के समय धारा 65बी(4) का प्रमाणपत्र प्राप्त नहीं किया गया था तब भी विचारण के समय उस इलेक्ट्राॅनिक अभिलेख का आउटपुट निकालने वाले कम्प्यूटर अथवा सर्वर के प्रभारी व्यक्ति के माध्यम से प्रमाणपत्र प्राप्त कर उसे प्रस्तुत किया जा सकता

87. C.V. Manigandan v. Sub-Inspector of Police, 2018 Lawsuit (Mad) 6268

है। स्पष्ट शब्दों में कहा जाये तो माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय और मद्रास उच्च न्यायालय का यह मत है कि 65बी(4) का प्रमाणपत्र इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख के आउटपुट का सम-सामयिक होना आज्ञापक नहीं है।

माननीय राजस्थान उच्च न्यायालय ने भी न्याय दृष्टांत ***पारस जैन***[88]में यह प्रतिपादित किया गया है कि यदि किसी प्राधिकृत मामले में अभियोग पत्र के साथ इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख को साक्ष्य के रूप में प्रस्तावित किया गया है तो उसके साथ धारा 65बी(4) का प्रमाणपत्र संलग्न नहीं है तो भी ऐसा प्रमाणपत्र पश्चातवर्ती प्रक्रम पर प्रस्तुत किया जा सकता है। माननीय बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा भी न्याय दृष्टांत ***इग्नेशियष टॉपी परेरा***[89] में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जहां धारा 65बी के प्रावधानों की अपेक्षा पूर्ण न करने के कारण किसी प्रमाणपत्र को न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया जाता है, वहां नया प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया जा सकता है।

इसके विपरीत माननीय मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा न्याय दृष्टांत ***कमल पटेल विरूद्ध रामकिशोर दोगने***[90] एवं ***शारदेंदु तिवारी विरूद्ध अजय अर्जुन सिंह***[91] के मामले में यह मत दिया गया है कि इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख के आउटपुट के स्त्रोत एवं उसकी सत्यता को सुनिश्चित करने वाला ऐसा आउटपुट प्राप्त करने के समय ही उसका सम-सामयिक प्रमाणपत्र अंतर्गत धारा 65बी(4) प्राप्त करना आज्ञापक है और पश्चातवर्ती प्रक्रम पर प्रमाणपत्र प्रस्तुत कर ऐसे इलेक्ट्रॉनिक आउटपुट की विश्वसनीयता प्रमाणित नहीं की जा सकती है। अतः माननीय मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय का यह मत है कि धारा 65बी(4) का प्रमाणपत्र इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख के आउटपुट का सम-सामयिक होना चाहिये।

यहां यह उल्लेखनीय है कि माननीय मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा उपरोक्त दोनों ही निर्णय चुनाव याचिका के विचारण के दौरान पारित किये गये थे। दोनों ही मामलों में दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 91 एवं 311 एवं साक्ष्य अधिनियम की धारा 165 में प्रावधानित न्यायालय की शक्तियों पर विचार नहीं किया गया था। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 न्यायालय को सशक्त करती है कि किसी भी मामले के विचारण के दौरान न्यायालय उस मामले के न्यायसंगत विनिश्चिय के लिये किसी भी ऐसे व्यक्ति को साक्ष्य के रूप में आहूत कर सकता है जिसका परीक्षण किया जाना वह आवश्यक समझता हो। इसी प्रकार धारा 91 न्यायालय को किसी भी मामले के विचारण या अन्य कार्यवाही के प्रयोजन के लिये किसी दस्तावेज का प्रस्तुत किया जाना आदेशित करने के लिये सशक्त करती है जो न्यायालय के मत में वांछनीय हो। वहीं साक्ष्य अधिनियम की धारा 165 न्यायालय को सुसंगत तथ्य का पता लगाने के लिये या उन्हें उचित प्रमाण प्राप्त करने के लिये किसी भी साक्षी अथवा पक्षकार से प्रश्न पूछने अथवा किसी भी दस्तावेज अथवा वस्तु को प्रस्तुत करने का आदेश देने की शक्ति प्रदान करती है।

तब किसी हत्या के विचारण के दौरान यदि न्यायालय को ऐसा प्रकट होता हो कि हत्या की घटना सी.सी.टी.वी. कैमरे में रिकार्ड हो गयी थी और अनुसंधान के दौरान ऐसे सी.सी.टी.वी. फुटेज के सुसंगत भाग की सी.डी. भी प्राप्त की गई थी परन्तु सी.डी. के साथ धारा 65बी(4) का प्रमाणपत्र प्राप्त करना भूलवश रह गया था, तो भी न्यायालय को मात्र इस आधार पर कि धारा 65बी(4) का प्रमाणपत्र

88. Paras Jain and Ors. v. State of Rajasthan, 2015 LawSuit(Raj) 1457
89. Ignatious Topy Pareira v. Travel Corporation (India) Pvt. Ltd., 2016 SCC Bom 97
90.Kamal Patel v. Ram Kishore Dogne, 2016 (1) MPLJ 528
91.Sharadendu Tiwari v. Ajay Arjun Singh, 2017 LawSuit (MP) 95

प्रस्तुत नहीं किया गया है, ऐसी सी.डी. को अस्वीकार नहीं करना चाहिए। अपितु दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 91 एवं 311 तथा साक्ष्य अधिनियम की धारा 165 के द्वारा प्रदत्त शक्तियों का उपयोग कर सुसंगत व्यक्ति से ऐसी सी.डी. के संबंध में धारा 65बी(4) का प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने की अपेक्षा करनी चाहिये और उसे साक्ष्य में ग्राह्य करना चाहिये।

यहां एक और उल्लेखनीय बिन्दु है। कुछ मामलों में यह संभव है कि जब इलेक्ट्रानिक अभिलेख का आउटपुट निकाला जा रहा था, तब धारा 65बी(4) का प्रमाणपत्र प्राप्त न किया गया हो परन्तु न्यायालय में जब ऐसे आउटपुट को साक्ष्य के रूप में प्रस्तावित किया जाये तब भी मूल इलेक्ट्रानिक अभिलेख अस्तित्व में हो। ऐसे मामलों में यद्यपि माननीय मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के मतानुसार पूर्व में निकाले गये इलेक्ट्रानिक अभिलेख का आउटपुट साक्ष्य में ग्राह्य नहीं होगा, परन्तु न्यायालय मूल इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख के अस्तित्व में होने के कारण पुनः उसके आउटपुट को प्रमाणपत्र के साथ प्रस्तुत करने की अपेक्षा कर सकती है और तब ऐसा दस्तावेज साक्ष्य में ग्राह्य होगा।

इस बिन्दु पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा न्याय दृष्टांत ***सोनू उर्फ अमर*** (पूर्वोक्त) के मामले में पारित निर्णय भी सुसंगत एवं महत्वपूर्ण है। इस मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न अंतर्वलित था कि धारा 65बी(4) के प्रमाणपत्र के न होने की आपत्ति इलेक्ट्रानिक अभिलेख के आउटपुट की ग्राह्यता के प्रश्न पर क्या प्रभाव रखती है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि धारा 65बी(4) के प्रमाणपत्र की आवश्यकता इलेक्ट्रानिक अभिलेख के आउटपुट की ग्राह्यता से संबंधित है और प्रमाणपत्र के अभाव में ऐसे साक्ष्य की सुसंगतता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो यदि साक्ष्य लेखबद्ध करने के दौरान इलेक्ट्रानिक अभिलेख के आउटपुट के साथ धारा 65बी(4) का प्रमाणपत्र संलग्न न होने की कोई आपत्ति नहीं उठाई जाती है और ऐसा आउटपुट न्यायालय द्वारा ग्राह्य कर लिया जाता है तो अपीलीय न्यायालय में ऐसी आपत्ति स्वीकार नहीं की जायेगी। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार प्रमाणपत्र की आवश्यकता होने संबंधी आपत्ति वस्तुतः साबित करने की रीति (mode of proof) से संबंधित आपत्ति है। यदि विचारण न्यायालय के समक्ष प्रमाणपत्र के अभाव की आपत्ति उठाई जायेगी तो इलेक्ट्रानिक अभिलेख का आउटपुट प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति के पास यह अवसर होगा कि वह प्रमाणपत्र प्राप्त कर एवं उसे प्रस्तुत कर ऐसे आउटपुट को साक्ष्य में ग्राह्य बना ले। अतः माननीय सर्वोच्च न्यायालय का भी मत यह है कि प्रमाणपत्र सम-सामयिक होना आज्ञापक नहीं है और इसे पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर भी प्राप्त कर प्रस्तुत किया जा सकता है।

यह प्रश्न हाल ही में पुनः माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष ***आपराधिक अपील क्रमांक 819/2019 कर्नाटक राज्य द्वारा लोकायुक्त पुलिस थाना, बेंगलुरू विरूद्ध एम.आर. हिरेमथ*** के मामले में उत्पन्न हुआ था। इस मामले में पारित निर्णय दिनांक 01.05.2019 के द्वारा यह स्पष्ट कर दिया गया है कि धारा 65बी(4) के प्रमाणपत्र के प्रस्तुतिकरण की आवश्यकता तब होती है जब विचारण के दौरान इलेक्ट्रानिक अभिलेख साक्ष्य में प्रस्तुत किया जा रहा हो। अतः प्रमाणपत्र का इलेक्ट्रानिक अभिलेख का समसामयिक होना आवश्यक नहीं है।

(7) धारा 65बी का प्रमाणपत्र कौन प्रदर्शित कर सकता है ?

विचारण न्यायालयों के समक्ष जब भी इलेक्ट्रानिक अभिलेख का आउटपुट साक्ष्य में प्रस्तुत किया जाता है तो एक दक्ष प्रश्न प्रबलता से उत्पन्न होता है कि क्या ऐसे इलेक्ट्रानिक अभिलेख के आउटपुट

एवं उसके साथ प्रस्तुत प्रमाणपत्र अंतर्गत धारा 65बी(4) साक्ष्य अधिनियम को उसी व्यक्ति के द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है जिसने प्रमाणपत्र जारी किया है अथवा इसका कोई अपवाद भी है?

इस प्रश्न के उत्तर के लिए कोई प्रत्यक्ष प्रावधान साक्ष्य विधान में उपलब्ध नहीं है। अन्य दस्तावेजी साक्ष्य को प्रदर्शित एवं प्रमाणित करने की प्रक्रिया पर विचार करें तो हम पाते हैं कि किसी दस्तावेज को प्रदर्शित करना और उसे प्रमाणित करना, दोनों भिन्न-भिन्न कार्य हैं और किसी दस्तावेज के लेखक अथवा निष्पादक को उसे प्रदर्शित करने के लिए प्रत्येक मामले में परीक्षित किया जाना आवश्यक नहीं है।

इसी सिद्धांत को इलेक्ट्रानिक अभिलेख के आउटपुट पर भी लागू करें तो पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर यह मिलेगा कि इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख का आउटपुट प्रदर्शित एवं प्रमाणित करने के लिए प्रत्येक परिस्थिति में प्रमाणपत्र जारी किये जाने वाले व्यक्ति का परीक्षण किया जाना आज्ञापक नहीं है।

माननीय मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा भी न्याय दृष्टांत ***के. रमाजयम*** (पूर्वोक्त) के मामले में यह प्रतिपादित किया गया है कि विधि की यह आज्ञापक अपेक्षा नहीं है कि धारा 65बी(4) का प्रमाणपत्र जारी करने वाले व्यक्ति को साक्ष्य में आहूत किया ही जाये। जहां इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख के आउटपुट की सत्यता को चुनौती दी जाती है अथवा जहां उसकी विश्वसनीयता संदिग्ध प्रतीत होती हो अथवा जहां प्रमाणपत्र जारी करने वाले व्यक्ति का प्रतिपरीक्षण करने का अवसर न मिलने से अभियुक्त के हित पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो, वहां धारा 65बी(4) का प्रमाणपत्र जारी करने वाले व्यक्ति को साक्ष्य हेतु आहूत करना चाहिए। इस विधि के आलोक में यह निष्कर्ष निकलता है कि धारा 65बी(4) का प्रमाणपत्र उसे जारी करने वाले व्यक्ति से ही प्रदर्शित एवं प्रमाणित किया जाना आज्ञापक नहीं है।

इस बिन्दु को उदाहरण स्वरूप देखें तो यदि किसी मामले में अभियुक्त के मोबाइल फोन की सी.डी.आर. प्रस्तुत की जाती है तो ऐसी सी.डी.आर. के आउटपुट के साथ टेलीकॉम सेवा प्रदाता के नोडल अधिकारी का प्रमाणपत्र भी प्रस्तुत किया जायेगा। इस नोडल अधिकारी के प्रमाणपत्र को प्रदर्शित एवं प्रमाणित करने के लिए प्रमाणपत्र एकत्रित करने वाला व्यक्ति अर्थात् अनुसंधान अधिकारी सक्षम होगा और जब तक कि अभियुक्त के द्वारा सी.डी.आर. की सत्यता को चुनौती न दी जाये तब तक ऐसे नोडल अधिकारी को परीक्षण हेतु आहूत करना आवश्यक नहीं होगा।

एक विपरीत उदाहरण से देखा जाए तो किसी मामले में यदि प्राइवेट फोटोग्राफर को विवादित स्थान पर ले जाकर वहां की फोटो ली जाती है और फोटो का प्रिंटआउट साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जाता है तो उसके साथ फोटोग्राफर द्वारा जारी धारा 65बी(4) का प्रमाणपत्र संलग्न होगा। फोटोग्राफ मानव द्वारा ली जाती है और प्रिंटआउट लेते समय उसमें मानवीय हस्तक्षेप भी होता है। ऐसी स्थिति में यदि विपक्षी को ऐसे फोटोग्राफर का प्रतिपरीक्षण करने का अवसर नहीं दिया गया तो निश्चित रूप से उसके हित पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। अतः यहां इलेक्ट्रानिक अभिलेख के आउटपुट अर्थात् फोटोग्राफ को प्रदर्शित और प्रमाणित करने के लिए फोटोग्राफर को आहूत किया जाना आज्ञापक होगा।

(8) जमानत आवेदन के निराकरण के प्रक्रम पर धारा 65बी(4) के प्रमाणपत्र की प्रयोज्यता

किसी अपराध के पंजीबद्ध होने के उपरांत अनुसंधान किया जाता है और अनुसंधान के दौरान साक्ष्य संकलन का प्रयास होता है। यदि अभियुक्त के विरूद्ध अपराध किए जाने की ठोस साक्ष्य संकलित होती है तो अभियुक्त को गिरफ्तार किया जाता है।

यदि अभियोजन का मामला इलेक्ट्रानिक अभिलेख पर आधारित है और अभियोजन द्वारा इलेक्ट्रानिक अभिलेख का आउटपुट साक्ष्य के रूप में प्राप्त किया जाता है, तो न्यायालय में अभियुक्त द्वारा रिमाण्ड कार्यवाही के दौरान प्रस्तुत जमानत आवेदन के निराकरण के समय यह प्रश्न भी उठाया जा सकता है कि एकत्रित किया गया इलेक्ट्रानिक अभिलेख का आउटपुट धारा 65बी(4) के प्रमाणपत्र के साथ समर्थित न होने के कारण अभियुक्त के विरूद्ध पठनीय नहीं है और अभियुक्त को इसका लाभ दिया जाना चाहिए।

यह प्रश्न माननीय उड़ीसा उच्च न्यायालय के समक्ष न्याय दृष्टांत ***प्रवत कुमार त्रिपाठी***[92] में उत्पन्न हुआ था। माननीय उड़ीसा उच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जमानत आवेदन की सुनवाई के प्रक्रम पर अनुसंधान के दौरान एकत्रित साक्ष्य की ग्राहयता यथा धारा 65बी(4) के प्रमाण पत्र की अनुपलब्धता को विचार में लेने की आवश्यकता नहीं है। इसका आधार यह है कि अभी भी अनुसंधान गतिशील है और अभियोजन के पास प्रमाणपत्र प्राप्त करने का अवसर बचा हुआ है।

अतः इस न्याय दृष्टांत में प्रतिपादित विधि से मार्गदर्शन लेते हुए यह सुझाव दिया जा सकता है कि जमानत आवेदन पर विचार करते समय न्यायालय को इलेक्ट्रानिक अभिलेख के आउटपुट के साथ धारा 65बी(4) के प्रमाणपत्र की अनिवार्यता पर विचार नहीं करना चाहिए।

(9) क्या इलेक्ट्रानिक अभिलेख की ग्राहयता के संबंध में साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65ए एवं 65बी के प्रावधान कुटुम्ब न्यायालय की कार्यवाहियों पर भी लागू होते हैं ?

कुटुंब न्यायालय की कार्यवाहयों पर साक्ष्य अधिनियम, 1872 के प्रावधान कठोर मायने में लागू नहीं होते हैं। कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1872 की धारा 14 यह प्रावधान करती है कि -

> **"14. भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 का लागू होना :-**
>
> **कोई कुटुंब न्यायालय ऐसे किसी प्रतिवेदन, कथन, दस्तावेज, जानकारी या बात को जो उसके मत में किसी विवाद को प्रभावकारी रूप से निपटाने में सहायक होगा, साक्ष्य के रूप में ग्राहय कर सकता है, चाहे वह साक्ष्य अधिनियम, 1872 के अधीन ग्राहय अथवा सुसंगत हो या नहीं। "**

ऐसी स्थिति में यह प्रश्न उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि क्या कुटुंब न्यायालय के समक्ष इलेक्ट्रानिक साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने पर साक्ष्य अधिनियम के सुसंगत प्रावधान अर्थात् धारा 65ए एवं 65बी का पालन अनिवार्य होगा ?

माननीय केरल उच्च न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न न्याय दृष्टांत ***प्रमोद ई.के. वि. लौना वी.सी.***[93] में उत्पन्न हुआ था। माननीय उच्च न्यायालय द्वारा इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक रूप से देते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 14 के प्रभाव से कुटुंब न्यायालय साक्ष्य की सुसंगतता एवं ग्राहयता संबंधी जटिल नियमों से बंधे हुए नहीं हैं। अतः सुसंगत सी.डी. धारा 65 बी (4) के प्रमाण पत्र के अभाव में भी कुटुंब न्यायालय की कार्यवाही में ग्राहय है।

•

92 Pravata Kumar Tripathy v. Union of India (CBI), 2014 LawSuit(Ori) 481
93 Pramod EK v. Louna VC, 2019 LawSuit(Ker) 51

PART – II

NOTES ON IMPORTANT JUDGMENTS

101. ACCOMMODATION CONTROL ACT, 1961 (M.P.) – Sections 12 (1)(a), 12 (1)(f), 12 (2), 13 and 23J

(i) Jurisdiction of Civil Court – Composite suit for eviction by special landlord – Held, where ground raised by special category of landlord is not only *bona fide* requirement but also includes other grounds specified in the Act, such suit is maintainable in Civil Court. (*Sulochana v. Rajinder Singh, AIR 2008 SC 2611,* followed)

(ii) Tender of rent to counsel issuing notice – Validity – Held, where notice sent by counsel directed that arrears of rent should be paid to his client, tenant is required to tender the rent to landlord and not to counsel – Refusal by counsel to accept rent is valid.

(iii) Default in deposit of rent during pendency of proceedings – Plaintiff is entitled to decree of eviction.

स्थान नियंत्रण अधिनियम, 1961 (म.प्र.) - धाराएं 12 (1)(क), 12(1)(च), 12 (2), 13 एवं 23´

(i) सिविल न्यायालय की अधिकारिता - विशेष श्रेणी के भवन स्वामी द्वारा निष्कासन के लिए सम्मिश्रित वाद - अभिनिर्धारित, जहां विशेष श्रेणी के भवन स्वामी द्वारा न केवल सद्भाविक आवश्यकता, अपितु अधिनियम में निर्दिष्ट अन्य आधार भी उठाए जाते हैं, ऐसा वाद सिविल न्यायालय में सुनवाई योग्य है। (***सुलोचना विरूद्ध राजिंदर सिंह, एआईआर 2008 एससी 2611,*** अनुसरित)

(ii) सूचना पत्र प्रेषित करने वाले अभिभाषक को किराया निविदत्त किया जाना - वैधता - अभिनिर्धारित, जहां अभिभाषक द्वारा प्रेषित सूचना पत्र में यह निर्देश दिया जाता है कि अवशेष किराए का भुगतान उसके पक्षकार को किया जाना चाहिए, वहां किरायेदार को किराए का भुगतान भवन स्वामी को करना चाहिए, अभिभाषक को नहीं - अभिभाषक द्वारा ऐसा निविदत्त किराया स्वीकार न करना उचित है।

(iii) कार्यवाही के लंबन के दौरान किराया अदायगी में व्यतिक्रम - वादी को निष्कासन की आज्ञप्ति का अधिकारी बनाता है।

Satish v. Murlidhar

Judgment dated 19.04.2017 passed by the High Court of Madhya Pradesh (Indore Bench) in Second Appeal No. 257 of 2016, reported in ILR 2017 MP 1706

Relevant extracts from the judgment:

The defendant took specific objection that the plaintiff being a retired government employee comes under the specific category of landlord under section 23J of the M.P. Accommodation Control Act and therefore, he was required to file an application before the rent control authority and the civil suit is not maintainable. The trial Court has held that though the plaintiff comes under the category of special landlord, but he filed composite suit under section 12 (1)(a), 12 (1)(c) and 12 (1)(f) of the Act, therefore the Civil Court is having jurisdiction to entertain the suit.

The Apex Court in the case of ***Sulochana v. Rajinder Singh, 2009 JLJ (1) 244,*** has held that the composite suit for eviction of the tenant can be filed by plaintiff of special category. ... Even otherwise Supreme Court in the matter of ***Smt. Sulochana v. Rajindra Singh, 2008 (III) MPJR 271,*** has held that a composite suit for eviction filed not only on the ground of *bonafide* requirement but also on the ground of default of payment of rent and denial of relationship of landlord and tenant by special category of landlord, is maintainable in the civil Court.

X X X

The plaintiff has demanded arrears of rent by sending notice through his counsel and according to the defendant, he got prepared pay order and sent to the counsel who gave notice to him, but he refused to accept the said rent as he was not authorized to receive the rent. The plaintiff sent the notice dated 26/06/2005 (Ex.-P/27) through his counsel Dilip Kumar Saxena. In this notice, the counsel has directed the defendant that the entire arrears of rent be paid to his client and obtain receipt, therefore, the defendant was required to pay the rent to the plaintiff and not to the counsel, who rightly refused to accept rent.

In cross-examination, the plaintiff has specifically stated that he did not authorize his counsel to receive the rent. The defendant in his cross-examination in para 38, admitted that he deposited the amount of ` 10,800/- in the Court after 1½ months from the receipt of the summons. He has not produced the receipts of the said deposit. He does not remember the month and year, in which he deposited the rent. The first Appellate Court has recorded the findings that first time, he deposited the arrears of rent on 09/12/2005 for the period from 04/02/2005 upto 03/02/2006 *i.e.* after one month as required under Section 13. There was delay in depositing the rent in time. This Court in the case of ***Vinay Kumar and others v. Radheshyam and others, 2005 (II) MPACJ 276,*** has held that if there is any default in deposit of rent during pendency of the suit as well as appeal, the plaintiff is entitled for decree of eviction.

•

102. ACCOMMODATION CONTROL ACT, 1961 (M.P.) – Sections 12 (1)(c) and 12 (1)(f)

EVIDENCE ACT, 1872 – Section 116

(i) Eviction suit – Denial of title – Relationship of landlord and tenant admitted in various documents and duly proved by landlord – Tenant denying title of landlord and establishing it in third party – Held, tenant is estopped from raising plea regarding title – Tenant is liable to be evicted under Section 12 (1)(c).

(ii) *Bonafide* requirement – Age of landlord is not a bar to give relief of eviction under Section 12 (1)(f).

(iii) *Bonafide* requirement; assessment of – Landlord is the best person to assess his need – *Bonafide* need is to be assessed on the basis of subjective satisfaction of the landlord – Once *bonafide* need is established, the suitability of accommodation cannot be interfered by the Court.

(iv) *Bonafide* requirement on the ground of expansion of business – Expansion carries commercial connotation and it could not be inferred through statistics only – It is not necessary that a person with reduced sale over the years cannot undertake expansion – Rather, that person has the urgency and urge to expand his business.

स्थान नियंत्रण अधिनियम, 1961 (म.प्र.) - धाराएं 12 (1)(ग) एवं 12 (1)(च)

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 116

(i) निष्कासन का वाद - स्वत्व से इंकारी - भवन स्वामी और किरायेदार के संबंध विभिन्न दस्तावेजों में स्वीकार किए गए और भवन स्वामी द्‌वारा विधिवत प्रमाणित किए गए - किरायेदार ने ऐसे भवन स्वामी के स्वत्व से इन्कार किया और इसे तीसरे व्यक्ति में स्थापित किया - अभिनिर्धारित, किरायेदार स्वत्व को चुनौती देने से विबंधित है - किरायेदार धारा 12 (1)(ग) के अधीन निष्कासन के लिए उत्तरदायी है।

(ii) सद्भाविक आवश्यकता - भवन स्वामी की आयु धारा 12 (1)(च) के अधीन निष्कासन का अनुतोष देने के लिए बाधा नहीं है।

(iii) सद्भाविक आवश्यकता का मूल्यांकन - भवन स्वामी अपनी आवश्यकता का आंकलन करने के लिए सबसे योग्य व्यक्ति है - सद्भाविक आवश्यकता का आंकलन भवन स्वामी की व्यक्तिपरक संतुष्टि के आधार पर किया जाना चाहिए - एक बार यदि सद्भाविक आवश्यकता स्थापित हो जाती है, तो स्थान की उपयुक्तता पर न्यायालय द्‌वारा हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

(iv) व्यवसाय के विस्तार के आधार पर सद्भाविक आवश्यकता - विस्तार वाणिज्यिक अर्थ रखता है और इसे केवल आंकड़ों के आधार पर आंकलित नहीं किया जा सकता है - यह आवश्यक नहीं है कि कई वर्षों से कम बिक्री वाला व्यक्ति अपने व्यवसाय का विस्तार नहीं कर सकता है - अपितु उस व्यक्ति की अपने व्यवसाय का विस्तार करने की तात्कालिक एवं तीव्र आवश्यकता होगी।

Narendra Kumar Jain v. Nirmalchand Jain

Judgment dated 08.05.2018 passed by the High Court of Madhya Pradesh (Gwalior Bench) in First Appeal No. 246 of 2012, reported in 2019 (1) MPLJ 579

Relevant extracts from the judgment:

The Apex Court in the case of ***Dilbagrai Punjabi v. Sharad Chandra, 1988 JLJ 560,*** held that tenant admitted landlord to be the owner in reply to the quick notice and also rent receipts, then ownership is established. Here the tenant accepted the landlord-tenant relationship but denied the ownership in written statement but through the rent agreement dated 01/12/1997 (Ex.P/2) (execution of the same is accepted by the tenant) and accepted the ownership of the shop in question of plaintiff, therefore, by the mandate of the said judgment of the Apex Court, ownership is established. Not only this, while relying upon this judgment as well as other pronouncements by this Court, wherein this Court had the occasion to dwell upon the same controversy and in the case of ***Ram Kishan Soni v. Dr. Surendra Bahre, 2010 (1) MPLJ 587,*** held that once the tenant accepted the landlord-tenant relationship and paying rent to the landlord regularly then it is not open for the tenant to challenge title of the respondent as Section 116 of the Indian Evidence Act would come into operation. Here in the present case, through the documents referred above defendant has accepted that owner of the suit shop is the plaintiff then he has accepted not only the ownership but also the landlordship of the plaintiff therefore, he is estopped to raise such plea.

Defendant produced the memorandum of partition in which properties between the brothers was partitioned as per para 2 of the deed, Wool Corner (shop of the plaintiff) and Jain Brothers (suit shop) came in possession of both the brothers and both are occupying the said shop as respective owners. As far as possession is concerned, admittedly defendant is in it since 1972. As per Ex.D/1, para 3, plaintiff and Kapoor Chand are joint owners of the property. Since matter pertains to eviction and not of title, therefore, going into such details was not the domain of the trial Court and the trial Court rightly refrained to do so. Even otherwise, it is settled in law that one co-owner can file a suit for eviction on behalf of other co-owner (See: ***Harbans Singh (Lt. Col.) v. Smt. Margret G. Bhingardive, 1990 JLJ 97 FB***). Therefore, the ownership of the plaintiff was proved beyond doubt.

Defendant relied upon the judgment rendered by the Apex Court in the case of ***Sheela and others v. Firm Prahlad Rai Prem Prakash, (2002) 3 SCC 375,*** the same is not applicable in the present fact situation of the case because in the written statement filed by the defendant (and later on amended) by way of

para 1(a) and 4(a), the title of the owner *i.e.* present plaintiff has been challenged and the said title has been set up in third party *i.e.* Kapoor Chand, brother of plaintiff, therefore, defendant has challenged the title of the plaintiff in categorical terms. Therefore, the benefits tried to be extracted by the defendant on the basis of legal pronouncement by the Apex Court in the case of ***Sheela and others v. Firm Prahlad Rai Prem Prakash*** (supra) is not available. Therefore, it can be inferred that defendant has challenged the title of plaintiff and plaintiff proved his ownership through various documents and therefore, defendant was liable to be evicted under Section 12(1)(a) and (c) of the Act of 1961.

X X X

Similarly, age of plaintiff cannot be a bar to grant relief under Section 12(1)(f) of the Act of 1961. It is settled in law that plaintiff is the best person to assess the need of *bonafide* requirement and once the *bonafide*need is proved, the plea of suitability cannot be interfered with by the Court and it is to be assessed on the basis of subjective satisfaction of the landlord. The judgment rendered by the parties have been appropriately dealt with by the trial Court and while considering the judgment rendered by the Apex Court in the case of ***Shiv Sarup Gupta v. Dr. Mahesh Chand Gupta, (1999) 6 SCC 222,*** as well as ***Damodar Sharma v. Nandram, 1960 JLJ 473,*** the trial Court rightly came to the conclusion about the *bonafide* requirement of the plaintiff.

X X X

Expansion of Business is the concept which differs from person to person in the business. Expansion carries commercial connotation and it could not be interfered through statistics only. The landlord is the best judge to decide about the expansion of his business. It is not necessary that a person with reduced sale over the years cannot undertake expansion, rather that person has the urgency and urge to expand his business.

•

103. ARBITRATION AND CONCILIATION ACT, 1996 – Sections 7 and 11

(i) Arbitration agreement; Interpretation of – Held, arbitration agreement must be construed strictly.

(ii) Arbitration agreement – Contract of insurance – Arbitration clause specifically excluded any dispute where insurance company had denied the liability – Such a dispute is not referable to arbitration – Only remedy is to institute a civil suit.

माध्यस्थम् एवं सुलह अधिनियम, 1996 - धाराएं 7 एवं 11

(i) मध्यस्थता अनुबंध की व्याख्या - अभिनिर्धारित, मध्यस्थता अनुबंध का निर्वचन कठोर अर्थ में किया जाना चाहिए।

(ii) मध्यस्थता अनुबंध - बीमा की संविदा - मध्यस्थता खंड विशेष रूप से उन विवादों को अपवर्जित करता था जहां बीमा कंपनी ने दायित्व से इंकार किया था - ऐसा विवाद मध्यस्थता के लिए संदर्भित योग्य नहीं है - एकमात्र अनुतोष सिविल वाद संस्थित किया जाना है।

Oriental Insurance Company Ltd. v. Narbheram Power and Steel Pvt. Ltd.

Judgment dated 02.05.2018 passed by the Supreme Court in Civil Appeal No. 2268 of 2018, reported in 2019 (1) MPLJ 509 (SC) (3 Judge Bench)

Relevant extracts from the judgment:

It does not need special emphasis that an arbitration clause is required to be strictly construed. Any expression in the clause must unequivocally express the intent of arbitration. It can also lay the postulate in which situations the arbitration clause cannot be given effect to. If a clause stipulates that under certain circumstances there can be no arbitration, and they are demonstrably clear then the controversy pertaining to the appointment of arbitrator has to be put to rest.

X X X

In the instant case, Clause 13 categorically lays the postulate that if the insurer has disputed or not accepted the liability, no difference or dispute shall be referred to arbitration. The thrust of the matter is whether the insurer has disputed or not accepted the liability under or in respect of the policy. The rejection of the claim of the respondent made vide letter dated 26.12.2014 ascribes the following reasons:-

1. Alleged loss of imported coal is clearly an inventory shortage.
2. There was no actual loss of stock in process.
3. The damage to the sponge iron is due to inherent vice.
4. The loss towards building/sheds etc. are exaggerated to cover insured maintenance.
5. As there is no material damage thus business interruption loss does not triggered.

The aforesaid communication, submits the learned senior counsel for the respondent, does not amount to denial of liability under or in respect of the policy. On a reading of the communication, we think, the disputation squarely comes within Part II of Clause 13. The said Part of the Clause clearly spells out that the parties have agreed and understood that no differences and disputes shall be referable to arbitration if the company has disputed or not accepted the liability. The communication ascribes reasons for not accepting the claim at all. It is nothing else but denial of liability by the insurer in toto. It is not a disputation pertaining to quantum. In the present case, we are not concerned with regard to whether the policy was void or not as the same was not raised by the insurer. The insurance-company has, on facts, repudiated the claim by denying to accept the liability on the basis of the aforesaid reasons. No inference can be drawn

that there is some kind of dispute with regard to quantification. It is a denial to indemnify the loss as claimed by the respondent. Such a situation, according to us, falls on all fours within the concept of denial of disputes and non-acceptance of liability. It is not one of the arbitration clauses which can be interpreted in a way that denial of a claim would itself amount to dispute and, therefore, it has to be referred to arbitration. The parties are bound by the terms and conditions agreed under the policy and the arbitration clause contained in it. It is not a case where mere allegation of fraud is leaned upon to avoid the arbitration. It is not a situation where a stand is taken that certain claims pertain to excepted matters and are, hence, not arbitrable. The language used in the second part is absolutely categorical and unequivocal inasmuch as it stipulates that it is clearly agreed and understood that no difference or disputes shall be referable to arbitration if the company has disputed or not accepted the liability. The High Court has fallen into grave error by expressing the opinion that there is incongruity between Part II and Part III. The said analysis runs counter to the principles laid down in the three-Judge Bench decision in ***Vulcan Insurance Co. Ltd v. Maharaj Singh and anr., (1976) 1 SCC 943.*** Therefore, the only remedy which the respondent can take recourse to is to institute a civil suit for mitigation of the grievances.

•

***104. CIVIL PROCEDURE CODE, 1908 – Sections 21 and 47**

Whether an objection as to the territorial jurisdiction and pecuniary jurisdiction can be allowed by the Executing Court? Held, No – An objection as to territorial jurisdiction and pecuniary jurisdiction is different from inherent jurisdiction – Such objections do not travel to the root of or to inherent lack of jurisdiction of a civil Court to entertain the suit.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धाराएं 21 एवं 47

क्या निष्पादन न्यायालय द्वारा क्षेत्रीय अधिकारिता और आर्थिक अधिकारिता के संबंध में आपत्ति अनुज्ञात की जा सकती है? अभिनिर्धारित, नहीं - क्षेत्रीय अधिकारिता और आर्थिक अधिकारिता के संबंध में आपत्ति, अंतर्निहित अधिकारिता की आपत्ति से भिन्न है - ऐसी आपत्तियां वाद की जड़ या उसके सिविल न्यायालय में पोषणीय होने की अंतर्निहित अधिकारिता के अभाव तक नहीं पहुंचती हैं।।

Sneh Lata Goel v. Pushplata

Judgment dated 07.01.2019 passed by the Supreme Court in Civil Appeal No. 116 of 2019, reported in AIR 2019 SC 824

•

105. CIVIL PROCEDURE CODE, 1908 – Section 144

Application for restitution – The application lies to a situation where a decree or an order is varied or reversed in appeal, revision or any other proceeding or is set aside or modified in any suit instituted for the purpose – If there is no variation or reversal of decree or order as contemplated under Section 144, the provisions of Section 144 CPC will not be attracted.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 144

प्रत्यास्थापन के लिये आवेदन - ऐसा आवेदन उन परिस्थितियों में प्रस्तुत हो सकता है जब किसी डिक्री या आदेश को अपील, पुनरीक्षण या अन्य कार्यवाही में बदला या अपास्त किया जाए अथवा इस प्रयोजन के लिए संस्थित किसी वाद में अपास्त किया जाए या उपान्तरित किया जाए - यदि डिक्री या आदेश में धारा 144 में अनुध्यात कोई उलटाव या फेरफार नहीं हुआ है, तो सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के प्रावधान आकर्षित नहीं होंगे।

Murti Bhawani Mata Mandir Represented through Pujari Ganeshi Lal (D) Through LR Kailash v. Ramesh

Judgment dated 21.01.2019 passed by the Supreme Court in Civil Appeal No. 880 of 2019, reported in AIR 2019 SC 679

Relevant extracts from the judgment:

Section 144 applies to a situation where a decree or an order is varied or reversed in appeal, revision or any other proceeding or is set aside or modified in any suit instituted for the purpose. In that situation, the Court which has passed the decree may cause restitution to be made, on an application of any party entitled, so as to place the parties in the position which they would have occupied but for the decree or order or such part thereof as has been varied, reversed, set aside or modified. The Court is empowered to pass orders which are consequential in nature to the decree or order being varied or reversed.

In the present case, the interim order of the Trial Court did not require the defendant to hand over the possession to the plaintiff. There was no decree or order of the Trial Court by virtue of which the appellant was given possession of the property, nor did any decree or order mandate that the respondent hand over possession to the appellant.

In these circumstances, the provisions of Section 144 CPC were not attracted, there being no variation or reversal of a decree or order as contemplated by Section 144.

The remedy of the first respondent, if any, did not lie in an application for restitution before the executing Court under Section 144 CPC. The executing Court was justified in declining to entertain the application under Section 144 CPC.

•

106. CIVIL PROCEDURE CODE, 1908 – Order 6 Rule 17

Amendment of plaint – Amendment of plaint cannot be allowed after commencement of trial unless Court is satisfied that inspite of due diligence, party could not have raised the matter before the commencement of the trial – Further, the amendment may be refused if it introduces a totally different, new and inconsistent case, or challenges the fundamental character of the suit or is malafide or causes prejudice to other side which cannot be compensated adequately in terms of money.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 6 नियम 17

वादपत्र का संशोधन - वादपत्र में संशोधन विचारण प्रारंभ होने के पश्चात् अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है जब तक कि न्यायालय का यह समाधान नहीं हो जाता कि सम्यक् सतर्कता के उपरांत भी पक्षकार विचारण प्रारंभ होने के पूर्व विषय को नहीं उठा सका था - आगे यह भी कि, ऐसा संशोधन तब अस्वीकार किया जा सकता है यदि वह सर्वथा नवीन और असंगत मामला प्रस्तुत करता हो या वाद के मूलभूत स्वरूप को ही चुनौती देता हो या विद्वेषपूर्ण हो या दूसरे पक्ष को ऐसी हानि कारित करता हो जिसकी धन के रूप में युक्तियुक्त क्षतिपूर्ति नहीं हो सकती हो।

M. Revanna v. Anjanamma

Judgment dated 14.02.2019 passed by the Supreme Court in Civil Appeal No. 1669 of 2019, reported in AIR 2019 SC 933

Relevant extracts from the judgment:

Leave to amend may be refused if it introduces a totally different, new and inconsistent case, or challenges the fundamental character of the suit. The proviso to Order 6 Rule 17 of the CPC virtually prevents an application for amendment of pleadings from being allowed after the trial has commenced, unless the Court comes to the conclusion that inspite of due diligence, the party could not have raised the matter before the commencement of the trial. The proviso, to an extent, curtails absolute discretion to allow amendment at any stage. Therefore, the burden is on the person who seeks an amendment after commencement of the trial to show that inspite of due diligence, such an amendment could not have been sought earlier. There cannot be any dispute that an amendment cannot be claimed as a matter of right, and under all circumstances. Though normally amendments are allowed in the pleadings to avoid multiplicity of litigation, the Court needs to take into consideration whether the application for amendment is *bonafide* or malafide and whether the amendment causes such prejudice to the other side which cannot be compensated adequately in terms of money.

As mentioned supra, the suit was filed in the year 1993 and at that point of time, Defendant Nos. 4 to 6 were not made parties to the suit. Plaintiff Nos. 1 to 5 and Defendant Nos.1 to 3 were the only parties. They had filed a joint

memorandum for the dismissal of the suit on 22.04.1993, which was within one or two months of the filing of the suit. The compromise petition came to be rightly dismissed by the High Court in RFA No. 297/1994. In the compromise petition, curiously, it was noted that the joint family properties were divided by metes and bounds in the year 1972. If the partition had really taken place in the year 1972 and was acted upon as per the Panchayat Parikath, then Plaintiff Nos. 1 to 5 would not have filed a suit for partition and separate possession in the year 1993. Be that as it may, it is clear from records that the suit was being prolonged on one pretext or the other by the Plaintiff Nos. 1 to 5 and ultimately, the application for amendment of the plaint came to be filed on 01.09.2008. By that time, the evidence of both the parties had been recorded and the matter was listed for final hearing before the Trial Court. If there indeed was a partition of the joint family properties earlier, nothing prevented Plaintiff Nos. 1 to 5 from making the necessary application for the amendment of the plaint earlier. So also, nothing prevented them from making the necessary averment in the plaint itself, inasmuch as the suit was filed in the year 1993. Even according to Plaintiff Nos. 1 to 5, they came to know about the compromise in the year 1993 itself. Thus, there is no explanation by them as to why they did not file the application for amendment till the year 2008, given that the suit had been filed in 1993. Though, even when Plaintiff Nos. 1 to 5 came to know about the partition deed dated 18.05.1972 (Panchayat Parikath) on 22.04.1993, they kept quiet without filing an application for amendment of the plaint within a reasonable time. On the contrary, they proceeded to cross examine PW-1 thoroughly and took more than five years' time to get the examination of PW-2 completed, and only thereafter filed an application seeking amendment of the plaint on 01.09.2008, that too when the suit was posted for final arguments. As mentioned supra, the suit itself is for partition and separate possession. Now, by virtue of the application for amendment of pleadings, Plaintiff Nos. 1 to 5 want to plead that the partition had already taken place in the year 1972 and they are not interested to pursue the suit. Per contra, Plaintiff No. 6/Respondent No.1 herein wants to continue the proceedings in the suit for partition on the ground that the partition had not taken place at all.

Having regard to the totality of the facts and circumstances of the case, we are of the considered opinion that the application for amendment of the plaint is not only belated but also not *bonafide*, and if allowed, would change the nature and character of the suit. If the application for amendment is allowed, the same would lead to a travesty of justice, inasmuch as the Court would be allowing Plaintiff Nos. 1 to 5 to withdraw their admission made in the plaint that the partition had not taken place earlier. Hence, to grant permission for amendment of the plaint at this stage would cause serious prejudice to Plaintiff No. 6/Respondent No. 1 herein.

•

***107. CIVIL PROCEDURE CODE, 1908 – Order 6 Rule 17**

Amendment of plaint – Trial already concluded and suit was fixed for final arguments – Plaintiff sought to amend plaint – The amendment application was already pending and evidence was led on the proposed pleadings also – Plaintiff also giving undertaking that no new evidence shall be led by him – Held, no prejudice shall be caused to the parties if amendment is allowed – Application allowed. [*Mohinder Kumar Mehra v. Roop Rani Mehra and ors., (2018) 2 SCC 132,* followed]

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 6 नियम 17

वादपत्र का संशोधन - विचारण पहले ही समाप्त हो गया था और अंतिम तर्क के लिए प्रकरण नियत किया गया था - वादी ने संशोधन करना चाहा - संशोधन आवेदन पहले से ही लंबित था और प्रस्तावित अभिवचनों पर भी साक्ष्य प्रस्तुत की गई थी - वादी ने यह वचन भी दिया कि वह अपने पक्ष में कोई भी नवीन साक्ष्य प्रस्तुत नहीं करेगा - अभिनिर्धारित, यदि संशोधन की अनुमति दी जाती है, तो पक्षकारों के हित पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं होगा - आवेदन स्वीकार किया गया। [***मोहिंदर कुमार मेहरा विरूद्ध रूप रानी मेहरा तथा अन्य, (2018) 2 एससीसी 132,*** अनुसरित,]

Sainik Grih Nirman Sehkari Samiti, Jabalpur v. M.P. Rajya Sehkari Awas Sangh Maryadit and others

Order dated 14.09.2018 passed by the High Court of Madhya Pradesh in Writ Petition No. 839 of 2017, reported in 2019 (1) MPLJ 571

•

***108. CIVIL PROCEDURE CODE, 1908 – Order 6 Rule 17**

(i) Amendment of written statement, principles governing – Reiterated – Amendment of written statement stands on a different footing than amendment of plaint – Courts should be more liberal while allowing amendments of a written statement.

(ii) Amendment based on subsequent events occurred during pendency of civil suit – Application rejected for want of affidavit – Held, trial Court should have given an opportunity to file such an affidavit.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 6 नियम 17

(i) लिखित कथन में संशोधन को शासित करने वाले सिद्धांत - पुनरूद्धरित किए गए - लिखित कथन का संशोधन, वादपत्र के संशोधन की तुलना में एक पृथक पायदान पर होता है - लिखित कथन के संशोधन की अनुमति देते समय न्यायालयों को अधिक उदार होना चाहिए।

(ii) सिविल वाद के लंबन के दौरान होने वाली घटनाओं के आधार पर संशोधन - शपथपत्र के अभाव में आवेदन खारिज किया गया - अभिनिर्धारित, विचारण न्यायालय को ऐसा शपथपत्र प्रस्तुत करने का अवसर देना चाहिए था।

Kewal Singh Thakur and others v. Oriental Farmers and Builders Pvt. Ltd. and another
Judgment dated 27.04.2018 passed by the High Court of Madhya Pradesh in Miscellaneous Petition No. 1082 of 2018, reported in 2019 (1) MPLJ 638

•

***109. CIVIL PROCEDURE CODE, 1908 – Order 6 Rule 17**
ACCOMMODATION CONTROL ACT, 1961 (M.P.) – Section 12 (1)(f)
Eviction suit – Whether change of beneficiary for whose *bonafide* requirement the eviction was sought would change the nature of suit? Held, No – Suit filed for *bonafide* need of unmarried daughter – Amendment sought to amend unemployed son in place of unmarried daughter – Held, there is no change of nature of suit – Amendment allowed.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 6 नियम 17

स्थान नियंत्रण अधिनियम, 1961 (म.प्र.) - धारा 12(1)(च)

निष्कासन का वाद - क्या लाभार्थी, जिसकी साद्भाविक आवश्यकता के लिए निष्कासन मांगा गया था, का परिवर्तन, वाद की प्रकृति को बदल देगा? अभिनिर्धारित, नहीं - अविवाहित पुत्री की सद्भाविक आवश्यकता के लिए वाद संस्थित किया गया था - अविवाहित पुत्री के स्थान पर बेरोजगार पुत्र संशोधित करने हेतु संशोधन याचित - अभिनिर्धारित, वाद की प्रकृति में कोई परिवर्तन नहीं होता है - संशोधन की अनुमति दी गई।

Jagdish Singh Kushwah v. Chandrakanta Kushwah and another
Judgment dated 20.11.2018 passed by the High Court of Madhya Pradesh (Gwalior Bench) in Miscellaneous Petition No. 2288 of 2018, reported in 2019 (1) MPLJ 686

•

110. CIVIL PROCEDURE CODE, 1908 – Order 9 Rule 9
Restoration of suit dismissed in default, consideration for the application of – It has to be determined whether party to the suit honestly and sincerely intended to remain present before the Court when it was called on and did its best to do so.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 9 नियम 9

अनुपस्थिति में खारिज वाद के पुनस्र्थापन के आवेदन के लिए विचारणीय तथ्य - यह अवधारित करना होगा कि क्या वाद का पक्षकार निष्ठापूर्वक एवं ईमानदारी से न्यायालय के समक्ष उपस्थित रहना चाहता था जब उसे पुकारा गया था और ऐसा करने के लिए उसने वह सर्वोत्तम किया था जो वह कर सकता था।

Smt Sushila Sharma v. Sunil Malviya

Judgment dated 04.12.2018 passed by the High Court of Madhya Pradesh in Civil Revision No. 319 of 2018, reported in AIR 2019 MP 57

Relevant extracts from the judgment:

The question which falls for consideration of this Court is whether the learned Judge of the Trial Court was justified in allowing the application filed by the plaintiff/non-applicant under Order 9 Rule 9 of CPC.

Order 9, Rule 9 provides that such application where a suit has been dismissed for non-appearance of the plaintiff can be entertained if the plaintiff satisfies the Court that there was sufficient cause for his non-appearance when the suit was called on for hearing, the Court shall make an order setting aside the dismissal upon such terms as to costs or otherwise or as it may deem fit. A perusal of the record reveals that a suit was filed by the plaintiff on 11.07.2011 for specific performance of contract dated 29.06.2009 to purchase a plot for a consideration of Rs. 29,00,000/- . Towards the aforesaid contract, the plaintiff has also paid an advance of Rs. 1,00,000/- to the applicant/defendant, however due to non-performance of the same, the said suit has been filed. It is also a matter of record that the issues in the suit were framed on 23.08.2013 and the matter was fixed for leading the plaintiff's evidence on 03.09.2013. From 03.09.2013 till 10.02.2017 *i.e.* for a period of more than three and a half years the plaintiff did not lead his evidence although in the meantime the contract in question was also got impounded by the plaintiff but it was at his instance only and even otherwise the same was received back from the office of District Registrar on 07.07.2015 *i.e.* more than two years ago. On 10.02.2017 also the time was sought on the ground of illness of the sister of the counsel appearing for the plaintiff and in the aforesaid order dated 10.02.2017, it is observed that the matter is pending since 2011 and on 30.06.2016 and 08.08.2016 the time was granted to the plaintiff at the cost of Rs. 200/- and Rs. 500/- respectively to lead evidence but neither the evidence was led nor any list of witnesses was filed, hence at the cost of Rs. 500/- the matter was adjourned on 10.02.2017 to 28.02.2017 but on 28.02.2017, on which date as already observed above due to non-appearance of the plaintiff the case has been dismissed. In the considered opinion of this Court, malafide of the plaintiff is writ large on the face of the proceedings. It is surprising that despite obtaining several opportunities to lead evidence the non applicant/plaintiff did not lead his evidence even on cost as many as three occasions as mentioned above on 30/06/2016, 08/08/2016 and 10/02/2017. On 28.02.2017 when the impugned order was passed, the plaintiff did not appear to lead his evidence and the reasons assigned for non-appearance that he was not present at Bhopal cannot be said to be justifiable or reasonable looking to the fact that the case was pending before the Civil Court since 2011 and he has already availed many opportunities to lead evidence including three opportunities with cost which shows the malafide intention of the non applicant/plaintiff to proceed with the case apparently to gain undue advantage of his dilatory tactics.

It is also apparent that the plaintiff would be seeking the execution of the sale deed for consideration of Rs. 29.00 lakhs after a period of 10 years, for which the contract was entered into between the parties only in the year 2009. It is anybody's guess that the valuable property of the contract which took place between the parties on 29.06.2009 for consideration of Rs. 29.00 lakhs must have risen substantially and may be by manifolds and by keeping the matter pending before the Trial Court, the plaintiff has already gained the advantage of higher market value of the property.

So far as the cost imposed by the Trial Court on the plaintiff is concerned, it was ridiculously low and must have been happily accepted by the plaintiff. In the considered opinion of this Court, the conduct of the plaintiff is deplorable and has caused utter prejudice to the rights of the applicant/defendant. In the considered opinion of this Court, it is a sheer misuse of the process of the Court and the expenses incurred by him until now cannot be ground to condone his action and restore the suit. In the case of ***Rama Shankar v. Balak Das, 2013(4) MPLJ 167,*** this Court in para 10 held as under:-

> "10. It may further be mentioned here that to consider the application under Order 9, Rule 9 of the Code of Civil Procedure, it has to be determined whether party to the suit honestly and sincerely intended to remain present before the Court when it was called on and did its best to do so. In this case, as discussed above, appellants were not prevented by sufficient cause, to show that they honestly and sincerely intended to remain present when the suit was called on for hearing. They did not even care to gather the information about the pending suit in a Court. Hence, the cause shown by them is the cause for which they could be blamed for non-appearance. The meaning of word "Sufficient" is "adequate" or "enough", inasmuch as may be necessary to answer the purpose intended. The sufficient cause must establish that, the party had not acted in negligent manner or there was a want of *bonafide* on its part."

●

111. CIVIL PROCEDURE CODE, 1908 – Order 21 Rule 10 and Order 41 Rule 5

(i) Execution proceedings; stay of – Ordinarily, a money decree shall not be stayed unless there are special circumstances.

(ii) Execution proceedings; stay of – Appellate Court can stay the execution of a decree only after complying with the provisions of Order 41 Rule 5 sub-rule (3) CPC – Appellate Court ordered stay of execution without directing judgment debtor to furnish security or deposit amount – Such an order is not good as Court failed to exercise discretion vested in it.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 21 नियम 10 एवं आदेश 41 नियम 5

(i) निष्पादन की कार्यवाही स्थगित किया जाना - सामान्यतया, धन की आज्ञप्ति में स्थगन नहीं दिया जाना चाहिए जब तक कि विशेष परिस्थितियां न हों।

(ii) निष्पादन की कार्यवाही स्थगित किया जाना - अपीलीय न्यायालय आदेश 41 नियम 5 उप-नियम (3) सि.प्र.सं. के प्रावधानों का पालन करने के बाद ही आज्ञप्ति का निष्पादन स्थगित कर सकता है - अपीलीय न्यायालय ने निर्णीत ऋणी को प्रतिभूति प्रस्तुत करने अथवा राशि अदा करने का आदेश दिए बिना ही आज्ञप्ति का निष्पादन स्थगित कर दिया - ऐसा आदेश सही नहीं है क्योंकि न्यायालय अपनी वैवेकीय शक्ति का उपयोग करने में विफल रहा है।

Ashok Lalwani v. State Bank of India

Order dated 09.08.2018 passed by the High Court of Madhya Pradesh in Miscellaneous Petition No. 1873 of 2017, reported in 2019 (1) MPLJ 575

Relevant extracts from the order:

The Andhra High Court in the case of ***Pamulapati Varadayya v. Kommareddi Chinnappareddi and another, AIR 1956 AP 64,*** in para 5 has held as under:-

> "5. If so, the next question is whether this is a fit case for staying execution of the decree. It is an established rule of practice that ordinarily stay of money decrees will not be given unless there are special circumstances. In this case, the appellant is only a surety and the primary liability rests upon defendant 1.
>
> In the circumstances, we think the ends of justice would be met if the appellant is directed to deposit half the decree amount and costs within two months from this date. Respondent 1 may draw out the amount so deposited and the attachment already effected would continue. The appellant may, if he chooses, apply to the lower Court under O.21 R. 83 for appropriate directions. There will be no order as to costs."

As per the said judgment, ordinarily a money decree cannot be stayed unless there are special circumstances.

In the present case also, while passing the order, the First Appellate Court has not given any special circumstances for staying the judgment and decree.

Similar view was taken by the Nagpur High Court in the case of ***Anandi Prashad v. Govinda Bapu, AIR 1934 Nag 160,*** which has held as under:-

> "It is argued that O.41 R. 5 does not empower the Court to impose terms. That is perfectly true, but equally it expressly prohibits stay except in the circumstances mentioned in sub-Cl. (3), none of which exists here; and when a Court acts in contravention of a statutory prohibition, it acts without jurisdiction."

In the present case also, no such conditions have been imposed by the First Appellate Court while staying the execution of the judgment and decree regarding the *mesne* profit is concerned. The Apex Court in the case of ***M/s Mehta Teja Singh and Company v. Grindlays Bank Limited, (1982) 3 SCC 199,*** has held that the High Court should have granted stay of a money decree, and that too, by requiring the appellant before it Grindlays Bank Limited to deposit only a part of the decreetal amount and the Apex Court has directed the respondent to deposit the entire amount in the High Court within a period of four weeks. Thus, in this judgment, the respondent is also a Bank inspite of that the Court has directed the Bank to deposit the amount before staying the execution of the judgment and decree.

Learned counsel for the respondent relied on the judgment passed by the Apex Court in the case of ***Sihor Nagar Palika Bureau v. Bhabhlubhai Virabhai and Company, (2005) 4 SCC 1.*** Relying on this judgment, learned counsel for the respondent submits that furnishing of security instead of depositing of decree amount in the Court in case of money decree, the discretion lies with the Appellate Court to direct either, as it may think fit. Thus relying on this judgment, he submits that it is the discretion of the Appellate Court to permit the respondent/Bank either to furnish the security or to deposit the amount. But in the present case, no such discretion has been exercised by the First Appellate Court and undertaking has been given. Thus, the First Appellate Court has erred in exercising the jurisdiction vested in it.

•

112. CIVIL PROCEDURE CODE, 1908 – Order 21 Rules 97, 100 and 102
TRANSFER OF PROPERTY ACT, 1882 – Section 52

(i) Execution proceeding – Doctrine of *lis pendens;* applicability of – Transferee *pendente lite* resisted the execution of decree of specific performance of agreement to sale – Held, doctrine of *lis pendens* applies not only to the parties to the suit but also to their alienees – Rule 102 to Order 21 prohibits a transferee *pendente lite* from resisting the execution of decree.

(ii) Resistance to execution of decree – Duty of Court; Explained – When decree-holder complains of resistance to execution, Executing Court should decide whether the questions raised by objector or resistor legally arise between the parties – If the answer is negative, there is no need to determine the questions – Similarly, Executing Court can also decide whether the objector or resistor is bound by the decree and refuses to obey it – This determination need not always require recording of evidence and Court can decide it on the basis of admissions.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 21 नियम 97, 101 एवं 102
संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 - धारा 52

(i) निष्पादन कार्यवाही - विचाराधीन वाद के सिद्धांत की प्रयोज्यता - वादकालीन अंतरिती ने विक्रय की संविदा के विशिष्ट अनुपालन की आज्ञप्ति के निष्पादन का विरोध किया - अभिनिर्धारित, विचाराधीन वाद का सिद्धांत न केवल पक्षकारों अपितु उनके अंतरितों पर भी लागू होता है - आदेश 21 नियम 102 वादकालीन अंतरिती को आज्ञप्ति के निष्पादन का विरोध करने से प्रतिबंधित करता है।

(ii) आज्ञप्ति के निष्पादन का प्रतिरोध - न्यायालय का कर्तव्य; समझाया गया - जब आज्ञप्तिधारक निष्पादन के प्रतिरोध की शिकायत करता है तो निष्पादन न्यायालय को यह तय करना चाहिए कि क्या आपत्तिकर्ता या प्रतिरोधक द्वारा उठाये गये प्रश्न पक्षकारों के मध्य विधिक रूप से उत्पन्न होते हैं - यदि उत्तर नकारात्मक है, तो प्रश्न निराकृत करने की कोई आवश्यकता नहीं है - इसी तरह, निष्पादन न्यायालय यह भी तय कर सकता है कि क्या आपत्ति करने वाला या प्रतिरोध करने वाला व्यक्ति आज्ञप्ति से बाध्य है और इसे मानने से इंकार कर रहा है - इस निर्धारण के लिए सदैव साक्ष्य अभिलिखित करने की आवश्यकता नहीं होती है और न्यायालय इसे स्वीकारोक्तियों के आधार पर निर्धारित कर सकता है।

Chandra Kumar Chandwani and others. v. Anil Gupta and another

Judgment dated 13.04.2017 passed by the High Court of Madhya Pradesh in First Appeal No. 603 of 2016, reported in ILR 2017 MP 1701

Relevant extracts from the judgment:

On the said point, law is no longer *res-integra*. A third party to the decree who offers resistance or obstruction to execution of the decree would fall within the ambit of Rule 101 if an adjudication is warranted as a consequence of the resistance or obstruction made by him to the execution of the decree. No doubt if the resistance was made by a transferee *pendente lite* of the judgment debtor, the scope of the adjudication would be shrunk to the limited question whether he is such transferee and on a finding in the affirmative regarding that point the execution Court has to hold that he has no right to resist in view of the clear language contained in Rule 102. Exclusion of such a transferee from raising further contentions is based on the salutary principle enumerated in Section 52 of the Transfer of property Act.

Before one and half century, in ***Bellamy v. Sabine, (1857) 1 DG and J 566 : 44 ER 847,*** Lord Cranwoth, L.C. proclaimed that where a litigation is pending between a plaintiff and a defendant as to the right to a particular estate, the necessities of mankind require that the decision of the Court in the suit shall be binding not only on the litigating parties, but also on those who derive title under them by alienations made pending the suit, whether such alienees had or had not notice of the pending proceedings. If this were not so, there could be no certainty that the litigation would ever come to an end.

It is thus settled law that a purchaser of suit property during the pendency of litigation has no right to resist or obstruct execution of decree passed by a competent Court. The doctrine of *'lis pendens'* prohibits a party from dealing with the property which is the subject matter of suit. *'Lis pendens'* itself is treated as constructive notice to a purchaser that he is bound by a decree to be entered in the pending suit. Rule 102, therefore, clarifies that there should not be resistance or obstruction by a transferee *pendente lite*. It declares that if the resistance is caused or obstruction is offered by a transferee *pendente lite* of the judgment debtor, he cannot seek benefit of Rule 98 or 100 of Order XXI.

X X X

When a decree-holder complains of resistance to the execution of a decree it is incumbent on the execution Court to adjudicate upon it. The words "all questions arising between the parties to a proceeding on an application under Rule 97" would envelop only such questions as would legally arise for determination between those parties. In other words, the Court is not obliged to determine a question merely because the resistor raised it. The questions which executing Court is obliged to determine under Rule 101, must possess two adjuncts. First is that such questions should have legally arisen between the parties, and the second is, such questions must be relevant for consideration and determination between the parties, e.g. if the obstructor admits that he is a transferee pendente lite it is not necessary to determine a question raised by him that he was unaware of the litigation when he purchased the property. Similarly, a third party, who questions the validity of a transfer made by a decree-holder to an assignee, cannot claim that the question regarding its validity should be decided during execution proceedings. In the adjudication process envisaged in Order 21 Rule 97(2) of the Code, execution Court can decide whether the question raised by a resistor or obstructor legally arises between the parties. An answer to the said question also would be the result of the adjudication contemplated in the sub-section.

The executing Court can decide whether the resistor or obstructor is a person bound by the decree and he refused to vacate the property. That question also squarely falls within the adjudicatory process contemplated in Order 21 Rule 97(2) of the Code. The adjudication mentioned in Order 21 Rule (2) of the C.P.C. need not necessarily involve a detailed enquiry or collection of evidence. Court can make the adjudication on admitted facts or even on the averments made by the resistor. Of course the Court can direct the parties to adduce evidence for such determination, if the Court deems it necessary.

•

113. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 31

Sentence in cases of conviction of several offences in one trial – When Magistrate convicts and sentences an accused for two offences in a trial and imposes two sentences for each offence, it is necessary for him to specify whether the sentences would run concurrently or consequently.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 31

एक ही विचारण में कई अपराधों के लिए दोषसिद्धि होने के मामलों में दण्डादेश - जब मजिस्ट्रेट किसी विचारण में एक अभियुक्त को दो अपराधों के लिए दोषसिद्ध और दण्डादिष्ट करता है और प्रत्येक अपराध के लिए दो दण्ड अधिरोपित करता है, वहां यह आवश्यक है कि वह यह विनिर्दिष्ट करे कि दण्ड एक साथ भोगे जाएंगे अथवा एक के बाद एक प्रारंभ होंगे।

Gagan Kumar v. State of Punjab

Judgment dated 14.02.2019 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No.266 of 2019, reported in AIR 2019 SC 1009

Relevant extracts from the judgment:

In our considered opinion, it was necessary for the Magistrate to have ensured compliance of Section 31 of the Code when she convicted and sentenced the appellant for two offences in a trial and inflicted two punishments for each offence, namely, Section 279 and Section 304-A IPC.

In such a situation, it was necessary for the Magistrate to have specified in the order by taking recourse to Section 31 of the Code as to whether the punishment of sentence of imprisonment so awarded by her for each offence would run concurrently or consecutively.

Indeed, it being a legal requirement contemplated under Section 31 of the Code, the Magistrate erred in not ensuring its compliance while inflicting the twopunishments to the appellant.

If the Magistrate failed in her duty, the Additional Sessions Judge and the High Court should have noticed this error committed by the Magistrate and accordingly should have corrected it. It was, however, not done and hence interference is called for to that extent.

As mentioned above, the appellant was convicted and accordingly punished with a sentence to undergo two years rigorous imprisonment with a fine amount of ` 1000/- and in default of payment of fine amount to further undergo one month simple imprisonment under Section 304-A and 6 months rigorous imprisonment with a fine amount of Rs. 1000/- and in default of payment of fine amount to further undergo 15 days simple imprisonment under Section 279 IPC.

In our view, having regard to the facts and circumstances of the case and keeping in view the nature of controversy involved in the case, both theaforementioned sentences awarded by the Magistrate to the appellant would run "concurrently".

•

***114. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 125**

(i) Maintenance – Liability of husband – If the husband is an able-bodied person, he cannot refuse to maintain his wife on ground that he is not having sufficient income.

(ii) **Grant of maintenance – Husband not ready and willing to keep his wife with him without any reasonable reason – In absence of any complaint made by husband regarding misbehavior of wife or an application u/S 9 of Hindu Marriage Act, wife is entitled for maintenance.**

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 125

(i) भरण-पोषण - पति का दायित्व - यदि पति शारीरिक रूप से सक्षम व्यक्ति है, तो वह अपनी पत्नी का भरणपोषण करने से इस आधार पर इंकार नहीं कर सकता कि उसकी पर्याप्त आय नहीं है।

(ii) भरण-पोषण अनुदत्त किया जाना - पति बिना किसी पर्याप्त कारण के उसकी पत्नी को अपने साथ रखने के लिये तत्पर एवं रजामंद नहीं है - पत्नी के दुव्र्यवहार के संबंध में पति द्वारा किसी परिवाद के या हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 9 के अंतर्गत आवेदन के अभाव में, पत्नी भरण-पोषण की हकदार है।

Hemant Kumar Chakradhar v. Vinita Chakradhar

Order dated 11.01.2018 passed by the High Court of Madhya Pradesh in Criminal Revision No. 609 of 2015 reported in 2019 (1) ANJ (MP) 110

•

***115. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Sections 154 and 156**

Lodging of FIR – Remedies available to complainant – Law summarised – High Court should not be approached u/S 482 CrPC directly without exhausting remedy available under Section 156 (3) CrPC.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धाराएं 154 एवं 156

प्रथम सूचना रिपोर्ट लेखबद्ध किया जाना - परिवादी को उपलब्ध उपचार - विधि समेकित की गई - धारा 156 (3) दं.प्र.सं के अधीन उपलब्ध उपचार का उपयोग किए बिना दं.प्र.सं. की धारा 482 के अधीन सीधे उच्च न्यायालय में याचिका नहीं लगाई जानी चाहिए।

Ramkrishan Solvex Private Limited (M/s) v. Superintendent of Police and others

Order dated 28.03.2017 passed by the High Court of Madhya Pradesh in M.Cr.C. No. 9023 of 2015, reported in ILR 2017 MP 1770

•

116. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Sections 216, 386 and 464

INDIAN PENAL CODE, 1860 – Sections 34 and 149

(i) **Whether Appellate Court may alter charge? Held, Yes.**

(ii) **Group liability – If some of the co-accused, charged with Section 149 IPC are acquitted and the remaining accused are less than five in number, then charge under Section 149 IPC against remaining accused collapses – However, they can be**

convicted with the aid of Section 34 IPC if evidence of common intention is available.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धाराएं 216, 386 एवं 464

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 - धाराएं 34 एवं 149

(i) क्या अपीलीय न्यायालय आरोप परिवर्तित कर सकता है? अभिनिर्धारित, हां।

(ii) सामूहिक दायित्व - यदि धारा 149 भा.दं.सं. से आरोपित कुछ सह-अभियुक्त दोषमुक्त हो जाते हैं और शेष अभियुक्त संख्या में पांच से कम हैं तो शेष अभियुक्तगण के संबंध में धारा 149 भा.दं.सं. का आरोप निष्फल हो जाएगा - हालांकि, यदि सामान्य आशय की साक्ष्य उपलब्ध हो तो वे भा.दं.वि. की धारा 34 की सहायता से दोषसिद्ध किए जा सकते हैं।

Mala Singh v. State of Haryana

Judgment dated 12.02.2019 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No.1144 of 2009, reported in AIR 2019 SC 1026

Relevant extracts from the judgment:

(i) Section 216 of Cr.P.C. deals with powers of the Court to alter the charge. Section 386 of Cr.P.C. deals with powers of the Appellate Court and Section 464 of Cr.P.C. deals with the effect of omission to frame, or absence of, or error in framing the charge.

Combined reading of Sections 216, 386 and 464 of Cr.P.C. would reveal that an alteration of charge where no prejudice is caused to the accused or the prosecution is well within the powers and the jurisdiction of the Court including the Appellate Court.

In other words, it is only when any omission to frame the charge initially or till culmination of the proceedings or at the appellate stage results in failure of justice or causes prejudice, the same may result in vitiating the trial in appropriate case.

(ii) First, once eight co-accused were acquitted by the High Court under Section 302/149 IPC by giving them the benefit of doubt and their acquittal attained finality, the charge under Section 149 IPC collapsed against the three appellants also because there could be no unlawful assembly consisting of less than five accused persons. In other words, the appellants (3 in number) could not be then charged with the aid of Section 149 IPC for want of numbers and were, therefore, rightly not proceeded with under Section 149 IPC.

Second, keeping in view the law laid down by this Court in the cases referred supra, the High Court though had the jurisdiction to alter the charge from Section 149 IPC to Section 34 IPC qua the three appellants, yet, in our view, in the absence of any evidence of common intention qua the three appellants so as to bring their case within the net of Section 34 IPC, their conviction under Section 302/34 IPC is not legally sustainable.

In other words, in our view, the prosecution failed to adduce any evidence against the three appellants to prove their common intention to murder Mahendro Bai. Even the High Court while altering the charge from Section 149 IPC to Section 34 IPC did not refer to any evidence nor gave any reasons as to on what basis these three appellants could still be proceeded with under Section 34 IPC notwithstanding the acquittal of remaining eight co-accused.

The prosecution, in our view, never came with a case that all the 11 accused persons shared a common intention under Section 34 IPC to eliminate Mahendro Bai and nor came with a case even at the appellate stage that only 3 appellants had shared common intention independent of 8 co-accused to eliminate Mahendro Bai.

When prosecution did not set up such case at any stage of the proceedings against the appellants nor adduced any evidence against the appellants that they (three) prior to date of the incident had at any point of time shared the "common intention" and in furtherance of sharing such common intention came on the spot to eliminate Mahendro Bai and lastly, the High Court having failed to give any reasons in support of altered conviction except saying in one line that conviction is upheld under Section 302/34 IPC in place of Section 302/149 IPC, the invoking of Section 34 IPC at the appellate stage by the High Court, in our view, cannot be upheld.

In a case of this nature, when there is a fight between the two groups and where there are gun shots exchanged between the two groups against each other and when on evidence eight co-accused are completely let off and where the State does not pursue their plea of Section 149 IPC against the acquitted eight accused which attains finality and where the plea of Section 34 IPC is not framed against any accused and where even at the appellate stage no evidence is relied on by the prosecution to sustain the charge of Section 34 IPC qua the three accused appellants independent of eight acquitted co-accused and when out of two main accused assailants, one has died and the other is acquitted and lastly, in the absence of any reasoning given by the High Court for sustaining the conviction of the three appellants in support of alteration of the charge, we are of the considered view that the two appellants are entitled to claim the benefit of entire scenario and seek alteration of their conviction for commission of the offence punishable under Section 324 IPC simplicitor rather than to suffer conviction under Section 302/34 IPC, if not complete acquittal alike other eight co-accused.

•

117. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 319

Summoning of additional accused; test for – The test that has to be applied is of a degree of satisfaction which is more than that of a *prima facie* case as exercised at the time of framing of charge – The satisfaction should be to an extent that the evidence, if goes unrebutted, may lead to conviction of the proposed accused.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 319

अतिरिक्त अभियुक्त को समन करने के लिये परीक्षण - लागू होने वाला परीक्षण समाधान की ऐसी कोटि का होना चाहिए जो आरोप विरचना के समय प्रयुक्त प्रथम दृष्टया मामले से अधिक हो - ऐसा समाधान इस सीमा तक होना चाहिए कि यदि साक्ष्य अखंडित रहती है तो प्रस्तावित अभियुक्त की दोषसिद्धि की जा सकती है।

Dev Wati v. State of Haryana

Judgment dated 24.01.2019 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 134 of 2019, reported in AIR 2019 SC 641

Relevant extracts from the judgment:

Section 319 (1) of the Cr.P.C. empowers the Court to proceed against other persons who “appear” to be guilty of an offence, though not accused before the Court. A Constitution Bench of this Court in the case of ***Hardeep Singh v. The State of Punjab, (2014) 3 SCC 92,*** has ruled that the word “appear” means “clear to the comprehension”, or a phrase near to, if not synonymous with “proved”, and imparts a lesser degree of probability than proof. Though only a *prima facie* case is to be established from the evidence led before the Court, it requires much stronger evidence than a mere probability of the complicity of the persons against whom the deponent has deposed. The test that has to be applied is of a degree of satisfaction which is more than that of a *prima facie* case as exercised at the time of framing of charge, but short of satisfaction to an extent that the evidence, if goes unrebutted, may lead to conviction of the proposed accused. In the absence of such satisfaction, the Court should refrain from exercising the power under Section 319 of the Cr.P.C.

•

118. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 319

(i) Summoning as additional accused – Where in course of any inquiry or trial of offence, it appears from evidence that any person not being an accused has committed any offence for which such person, whose name was not even included in F.I.R., could be tried together with accused, Court may proceed against such person for offence which he appears to have committed.

(ii) Summoning as additional accused – Exercise of jurisdiction – Section 319 requires satisfaction of the Court about more than *prima facie* case as exercised at the time of framing of charge.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 319

(i) अतिरिक्त अभियुक्त के रूप में समन किया जाना - जहाँ किसी अपराध की जांच या विचारण के अनुक्रम में साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि अभियुक्त न होते हुए किसी व्यक्ति ने, जिसका नाम प्रथम सूचना प्रतिवेदन में समाहित नहीं है, कोई अपराध किया है, अभियुक्त के साथ विचारित किया जा सकता है, न्यायालय ऐसे

व्यक्ति के विरूद्ध उस अपराध, जो उसके द्वारा कारित किया जाना प्रतीत होता है, के लिए अग्रसर हो सकता है।

(ii) अतिरिक्त अभियुक्तके रूप में समन किया जाना - अधिकारिता का प्रयोग - धारा 319 अपराध की विरचना के समय प्रयुक्त प्रथम दृष्टया मामले से अधिक समाधान की अपेक्षा करती है।

Labhuji Amratji Thakor v. State of Gujarat

Judgment dated 13.11.2018 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No.1349 of 2018, reported in AIR 2019 SC 735

Relevant extracts from the judgment:

Section 319 Cr.P.C., 1973 provides that where, in the course of any inquiry or trial of an offence, it appears from the evidence that any person not being the accused has committed any offence for which such person could be tried together with the accused, the Court may proceed against such person for the offence which he appears to have committed. The Court, thus, during the trial on the basis of any evidence is fully empowered to proceed against any person, whose name was not even included in the F.I.R. or the Charge Sheet. The parameters of exercise of power under Section 319 Cr.P.C., 1973 has been explained by this Court time and again. It is sufficient to refer to Constitution Bench judgment in ***Hardeep Singh v. State of Punjab, (2014) 3 SCC 92,*** where this Court had considered the following issue amongst others:-

> "6.4. (iv) What is the nature of the satisfaction required to invoke the power under section 319 CrPC, 1973 to arraign an accused? Whether the power under section 319(1) CrPC, 1973 can be exercised only if the Court is satisfied that the accused summoned will in all likelihood be convicted?"

The Constitution Bench in the above judgment has held that under Section 319 Cr.P.C., 1973 Court can proceed against any person, who is not an accused in a case before it. The Constitution Bench, however, has held that the person against whom the Court decides to proceed, "has to be a person whose complicity may be indicated and connected with the commission of the offence".

In Paragraph Nos. 105 and 106 of the judgment, following was laid down by the Constitution Bench:-

> "105. Power under section 319 CrPC, 1973 is a discretionary and an extraordinary power. It is to be exercised sparingly and only in those cases where the circumstances of the case so warrant. It is not to be exercised because the Magistrate or the Sessions Judge is of the opinion that some other person may also be guilty of committing that offence. Only where strong and cogent evidence occurs against a person from the evidence led before the Court that such power should be exercised and not in a casual and cavalier manner.

> 106. Thus, we hold that though only a *prima facie* case is to be established from the evidence led before the Court, not necessarily tested on the anvil of cross-examination, it requires much stronger evidence than mere probability of his complicity. The test that has to be applied is one which is more than *prima facie* case as exercised at the time of framing of charge, but short of satisfaction to an extent that the evidence, if goes unrebutted, would lead to conviction. In the absence of such satisfaction, the Court should refrain from exercising power under section 319 CrPC, 1973. In section 319 CrPC, 1973 the purpose of providing if "it appears from the evidence that any person not being the accused has committed any offence" is clear from the words "for which such person could be tried together with the accused". The words used are not "for which such person could be convicted". There is, therefore, no scope for the Court acting under section 319 CrPC, 1973 to form any opinion as to the guilt of the accused."

The Constitution Bench has given a caution that power under Section 319 Cr.P.C., 1973 is a discretionary and extraordinary power, which should be exercised sparingly and only in those cases where the circumstances of the case so warrant. The crucial test, which has been laid down as noted above is "the test that has to be applied is one which is more than *prima facie* case as exercised at the time of framing of charge, but short of satisfaction to an extent that the evidence, if goes unrebutted, would lead to conviction."

•

119. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 397

(i) Revision petition – Necessary party – Held, in every criminal revision, the party/complainant on whose application the impugned order was passed, is a necessary party along with State – Such party/complainant should also be impleaded as respondent in the revision petition.

(ii) Jurisdiction of revisional Court, extent of – Explained –High Court passed an order directing the Sessions Judge to "consider and allow" the bail application of accused persons – Held, such a direction amounts to usurping the powers and interfering in the discretionary power of the subordinate Courts – Such order is not legal.

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 397

(i) पुनरीक्षण याचिका - आवश्यक पक्षकार - अभिनिर्धारित, प्रत्येक आपराधिक पुनरीक्षण में, आवेदक/परिवादी, जिसके आवेदन पर आक्षेपित आदेश पारित किया गया था, राज्य के साथ एक आवश्यक पक्षकार होता है - ऐसे

आवेदक/परिवादी को भी पुनरीक्षण याचिका में प्रत्यर्थी के रूप में संयोजित किया जाना चाहिए।

(ii) पुनरीक्षण न्यायालय की अधिकारिता का विस्तार - समझाया गया - उच्च न्यायालय ने सत्र न्यायाधीश को अभियुक्तगण के जमानत आवेदन पर ''विचार कर उसे स्वीकार करने'' का निर्देश दिया था - अभिनिर्धारित, इस तरह का निर्देश, अधीनस्थ न्यायालयों की शक्ति का अतिक्रमण है एवं उनकी वैवेकीय शक्ति में हस्तक्षेप करने के समान है - ऐसा आदेश विधिसम्मत नहीं है।

Madan Mohan v. State of Rajasthan and another

Judgment dated 14.12.2017 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 2178 of 2017, reported in 2018 (2) Crimes 154 (SC)

Relevant extracts from the judgment:

In our considered opinion, the Single Judge seemed to have passed the impugned order without application of judicial mind inasmuch as he committed two glaring errors while passing the order. First, he failed to see that the complainant at whose instance the Sessions Judge had passed the order and had allowed his application under Section 193 of the Code was a necessary party to the criminal revision along with the State. Therefore, he should have been impleaded as respondent along with the State in the revision. In other words, the Complainant also had a right of hearing in the Revision because the order impugned in the Revision was passed by the Session Judge on his application. This aspect of the case was, however, not noticed by the Single Judge.

X X X

Second and more importantly was that the Single Judge grossly erred in giving direction to the Sessions Judge to consider the bail application of respondent Nos. 2 and 3 and “allow” it on the “same day”.

In our considered opinion, the High Court had no jurisdiction to direct the Sessions Judge to “allow” the application for grant of bail. Indeed, once such direction had been issued by the High Court then what was left for the Sessions Judge to decide except to follow the directions of the High Court and grant bail to respondent Nos. 2 and 3. In other words, in compliance to the mandatory directions issued by the High Court, the Sessions Judge had no jurisdiction to reject the bail application but to allow it.

No superior Court in hierarchical jurisdiction can issue such direction/mandamus to any subordinate Court commanding them to pass a particular order on any application filed by any party. The judicial independence of every Court in passing the orders in cases is well settled. It cannot be interfered with by any Court including superior Court.

When an order is passed, it can be questioned by the aggrieved party in appeal or revision, as the case may be, to the superior Court. It is then for the

Appellate/Revisionery Court to decide as to what orders need to be passed in exercise of its Appellate/Revisionery jurisdiction. Even while remanding the case to the subordinate Court, the Superior Court cannot issue a direction to the subordinate Court to either "allow" the case or "reject" it. If any such directions are issued, it would amount to usurping the powers of that Court and would amount to interfering in the discretionary powers of the subordinate Court. Such order is, therefore, not legally sustainable.

It is the sole discretion of the Sessions Judge to find out while hearing the bail application as to whether any case on facts is made out for grant of bail by the accused or not. If made out then to grant the bail and if not made out, to reject the bail. In either case, *i.e.*, to grant or reject, the Sessions Judge has to apply his independent judicial mind and accordingly pass appropriate reasoned order keeping in view the facts involved in the case and the legal principles applicable for grant/rejection of the bail. In this case, the Single Judge failed to keep in his mind this legal principle.

It is for this reason, in our view, such directions were wholly uncalled for and should not have been given. This Court cannot countenance issuing of such direction by the High Court.

In our view, at best, the High Court could have made an observation to the effect that the respondent Nos. 2 and 3 (accused persons) are at liberty to approach the Sessions Judge for grant of bail and, if any application is filed, it would be decided by the Sessions Judge on its merits and in accordance with law expeditiously but not beyond it.

•

120. CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 437(6)

Bail under Section 437(6) Cr.P.C. – Nature explained – Factors to be considered delineated – Held, there needs to be something more serious reasons for denying bail under Section 437(6) than mere grounds on which the bail may be refused under Section 437(1).

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 437(6)

दं.प्र.सं. की धारा 437(6) के अधीन जमानत - प्रकृति समझाई गई - विचार में लेने योग्य कारक, निरूपित किए गए - अभिनिर्धारित, धारा 437(6) के अधीन जमानत आवेदन अस्वीकार करने के लिए धारा 437(1) के अधीन प्रस्तुत जमानत आवेदन अस्वीकार करने के आधारों से कुछ अधिक गंभीर कारण होने आवश्यक हैं।

Ishwar Prasad v. State of Madhya Pradesh

Judgment dated 03.02.2017 passed by the High Court of Madhya Pradesh in M.Cr.C. No. 562 of 2017, reported in ILR 2017 MP 1756

Relevant extracts from the judgment:

The legislature has given no indication as to the reasons which might be germane for declining the bail to accused under Section 437(6) of the Cr.P.C;

however, as has been noted above, collective judicial wisdom over the years, seek to provide guidelines for exercise of discretion to the Magistrate. Various judicial pronouncements have recognized certain principle which may govern the exercise of discretion by the Magistrate under Section 437(6) of the Cr.P.C.

(1) Gravity of offence, quantum of punishment and manner in which the accused was involved in committing offence.
(2) Large number of witnesses that are necessary to be examined on behalf of the prosecution and quantum of prosecution evidence to be placed before the Magistrate.
(3) Delay in progress of trial attributable to the accused.
(4) Where the accused or a co-accused had been absconding at any stage during the course of inquiry, investigation or trial.
(5) Likelihood of jumping bail having regard to the facts and circumstances of the case.
(6) Overall impact of the offence and release of the person accused of such offence on the society.
(7) Likelihood of tempering with the evidence by the accused in case of his release on bail.

Aforesaid list of course is enumerative and not exhaustive, as there may be other relevant factors in a case which may have a bearing on the exercise of discretion by the Magistrate.

The presence of all or any of the aforesaid factors may influence the Court in declining to release the accused on bail. Reasons for refusing bail under Section 437(1) of the Code of Criminal Procedure and 437(6) of the Code of Criminal Procedure may sometimes be overlapping. It is obvious that there needs to be something more for denying bail under sub-section (6) than mere grounds on which the bail may be refused under Section (1), for the simple reason that the accused would be in jail after 2 months from the first date of evidence only where the grounds for refusing bail under Section 437(1) are in existence. If same reasons are cited against for denying bail under Section 437(6), it would render the provision under sub-Section (6) of Section 437 otiose. However, broadly speaking it may be observed that mere probability, without any reasonable basis, that the accused would abscond if released on bail or accused had prayed for adjournment once or twice, should not be cited as reasons for denying bail to the accused.

•

121. CRIMINAL TRIAL:

Adverse remarks in Judgment against Investigating Officer that he did not conduct enquiry fairly – Before passing such remarks, opportunity of hearing not afforded to him – Held, Judge has unrestricted right to express his views in any matter – Nevertheless

there is a corresponding duty in a judge not to make unmerited and undeserving remarks affecting character and reputation especially in case of witnesses or the parties who are not before him unless it is absolutely necessary for just and proper decision of the case and that too after affording an opportunity of explaining or defending, to that witness or the party.

आपराधिक विचारणः

निर्णय में - विवेचनाधिकारी के विरूद्ध विपरीत टिप्पणी कि उसने ऋजुपूर्ण जांच नहीं की -ऐसी टिप्पणी करने के पूर्व उसे सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया - अभिनिर्धारित, न्यायाधीश के पास किसी भी मामले में अपनी राय व्यक्त करने की अप्रतिबंधित शक्ति होती है - परंतु न्यायाधीश पर, चरित्र तथा प्रतिष्ठा को प्रभावित करने वाली अनुपयुक्त व अयोग्य टिप्पणियां न करने का एक तत्स्थानी कर्तव्य भी होता है, विशेषकर ऐसे साक्षियों और पक्षकारों के मामले में जो उसके समक्ष नहीं हैं जब तक कि यह मामले के ऋजु व उचित निर्णय के लिए आवश्यक न हो और वह भी ऐसे साक्षी या पक्षकार को समझाने अथवा बचाव करने का अवसर प्रदान करने के बाद ही।

Gappu Lal Pal v. Director General of Police

Order dated 09.03.2018 passed by the High Court of Madhya Pradesh in M.Cr.C. No. 26039 of 2017, (unreported)

Relevant extracts from the order:

In the case of ***The State of U.P. v. Mohammad Naim, AIR 1964 SC 703,*** the Apex Court has held that, "We think that the High Court of Bombay is correct and the High Court can in the exercise of its inherent jurisdiction expunge remarks made by it or by a lower Court if it be necessary to do so to prevent abuse of the process of the Court or otherwise to secure the ends of justice; the jurisdiction is however of an exceptional nature and has to be exercised in exceptional cases only.

Their Lordships have also laid down the test in considering the expunction of disparaging remarks made against persons or authorities whose conduct comes for consideration before the Court of law to be decided by them by summing up asunder:-

(a) whether the party whose conduct is in question before the Court has an opportunity of explaining or defending himself.

(b) whether there is evidence on record bearing on that conduct justifying the remarks; and

(c) whether it is necessary for the decision of the case as an integral part thereof, to animadvert on that conduct. It has also been recognized that judicial pronouncement must be judicial in nature, and should not normally depart from sobriety, moderation and reserve.

The Supreme Court in the case ***Dr. Raghubir Saran v. State of Bihar, AIR 1964 SC 1,*** has held that, the High Court has inherent power to expunge objectionable remarks in judgment and order of the subordinate Court against stranger, after it has become final and culled out the principles as under:-

From the aforesaid discussion the following principles emerge:

1. A judgment of a criminal Court is final; it can be set aside or modified only in the manner prescribed by law.
2. Every Judge, whatever may be his rank in the hierarchy, must have an unrestricted right to express his views in any manner before him without fear or favour.
3. There is a correlative and self-imposed duty in a Judge not to make irrelevant remarks or observations without any foundation, especially in the case of witnesses or parties not before him, affecting their character or reputation.
4. An appellate Court has jurisdiction judicially to correct such remarks, but it do so only in exceptional cases where such remarks would cause irrevocable harm to witness or a party not before it.

In the case of ***A.M. Mathur v. Pramod Kumar Gupta, (1990) 2 SCC 533,*** the Supreme Court has emphasized the need for judicial restraint and held that judicial restraint and discipline are necessary to the orderly administration of justice and observed as under:-

Judicial restraint and discipline are necessary to the orderly administration of justice as they are to the effectiveness of the army. The duty of restraint, this humility of function should be constant theme of our Judges. This quality in decision making is as much necessary for Judges to command respect as to protect the independence of the judiciary. Judicial restraint in this regard might better be called judicial respect, that is, respect by the judiciary. Respect to those who come before the Court as well to other co-ordinate branches of the State, the executive and the legislature. There must be mutual respect. When these qualities fail or when litigants and public believe that the Judge has failed to these qualities, it will be neither good for the Judge nor for the judicial process.

A conspectus of the judgment mentioned hereinabove would show that though Judge has unrestricted right to express his views in any matter before him but there is corresponding duty in a Judge not to make unmerited and undeserving remarks specially in case of witnesses or the parties who are not before him affecting their character and reputation, unless it is absolutely necessary for just and proper decision of the case and that too after affording an opportunity of explaining or defending that witness or the party as the case may be. Judicial decisions must be judicial in nature and it must show judicial respect to the litigant/party, witnesses who come before the Court for their cause.

The petitioner as an investigation officer had investigated the offence in question and filed the charge-sheet against the accused persons. The accused

persons were tried for the offences and eventually acquitted for the prosecution witnesses did not support the same. The learned Magistrate has given the finding and the adverse remarks that the petitioner had not conducted the enquiry fairly. Therefore, relying on this statement, the police had instituted a departmental enquiry against the petitioner.

The tests laid down in the case of ***Mohammad Naim*** (supra), if applied in the present case, would appear that the petitioner did not have an opportunity to reply the said circumstances wherein, opportunity could not be given to the petitioner to explain the circumstances by the learned JMFC. As it is not the case of the State that petitioner was afforded an opportunity to explain those circumstances, therefore, the adverse remarks were neither necessary nor justifiable. In the test mentioned above, the adverse remarks at Para 15 made by the learned JMFC is, therefore, uncalled for. As such retention of those remarks would cause legal enquiry to the petitioner as he has been proposed to face a departmental enquiry on one hand and on the other hand, the remarks will affect his career.

•

122. DRUGS AND COSMETICS ACT, 1940 – Sections 18, 27 and 28
EVIDENCE ACT, 1872 – Section 62

(i) Essentials for conviction for sale of drug without license – Under Section 18 (c) of the Act, stocking or storing of drugs for sale cannot be done without a licence – Hence, before a person is convicted under Section 18 (c) read with Section 27 (b)(ii) of the Act, prosecution must establish that drugs are stocked or stored for sale without licence.

(ii) Admission of carbon copy – Under section 62 of the Evidence Act, carbon copies can be taken into consideration as primary evidence.

औषधि और प्रसाधन सामग्री अधिनियम, 1940 - धाराएं 18, 27 एवं 28
साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 62

(i) बिना अनुज्ञापत्र औषधि के विक्रय के लिये दण्डादेष हेतु अपेक्षाएं - अधिनियम की धारा 18 (ग) के अधीन बिना अनुज्ञप्ति के व्रिक्रय के लिए औषधियों का संग्रहण या स्टाॅक नहीं रखा जा सकता है - अतएव, अधिनियम की धारा 27 (ख)(ii) सहपठित धारा 18 (ग) के अधीन दोषसिद्ध किए जाने के पूर्व अभियोजन द्वारा यह स्थापित किया जाना चाहिए कि उन औषधियों को बिना अनुज्ञप्ति विक्रय हेतु संग्रहीत या स्टाक किया गया था।

(ii) कार्बन प्रति की ग्राह्यता/ग्राहयता - भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 62 के अधीन, कार्बन प्रति को प्राथमिक साक्ष्य के रूप में विचार में लिया जा सकता है।

State Represented by the Drugs Inspector v. Manimaran
Judgment dated 30.11.2018 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 1493 of 2018, reported in AIR 2019 SC 655

Relevant extracts from the judgment:

Under section 18(c) of the Drugs and Cosmetics Act, licence is required for sale of any drug. Under Section 18(c) of the Act, stocking or storing of drugs for sale cannot be done without a licence. Respondent is charged for having stored drugs for sale without licence. Before a person is convicted under Section 18(c) read with Section 27(b)(ii) of the Act, the prosecution must establish that the drugs are stocked or stored for sale without licence.

On the date of inspection *i.e.* on 17.12.2008, when N. Banumathi, Drugs Inspector (PW-1) inspected the respondent's shop, he did not have any licence. He only stated that he was not aware that he has to obtain the licence. When the respondent has stocked the drugs and was selling the same without licence, there was violation of Section 18(c) of the Act which is punishable under Section 27(b)(ii) of the Act. The Drugs and Cosmetics Act, 1940 is a social statute which provides for checks and balances so that drugs are sold strictly only by the licence-holder or that the adulterated drugs are not sold. From the evidence of PW-1 and from the admission of the respondent in Exs. P-4 and P-7, the prosecution has established that the respondent did not have licence for sale of the drugs.

Learned counsel for the respondent has submitted that Exs.P-4 and P-7, that is, the statements of respondent were only carbon copies and that admission of such carbon copies raises serious doubt about the prosecution case. As pointed out by the trial Court as well as by the first appellate Court, under section 62 of the Indian Evidence Act, carbon copies can be taken into consideration as primary evidence and we find no infirmity in admitting carbon copies of those documents.

•

***123. ELECTRICITY ACT, 2003 – Sections 126 and 135**

Distinction between 'unauthorised use of electricity u/S 126' and 'theft of electricity u/S 135' – Section 126 deals with assessment of electricity charges payable by consumer for unauthorised use of electricity whereas Section 135 deals with cases of theft of electricity – Both Sections 126 and 135 are independent and provide different kinds of liability and consequences – Section 126 involves monetary liability whereas Section 135 involves criminal liability.

विद्युत अधिनियम, 2003 - धाराएं 126 एवं 135

धारा 126 के अधीन विद्युत के अनाधिकृत उपयोग एवं धारा 135 के अधीन विद्युत की चोरी में विभेद - धारा 126 विद्युत के अनाधिकृत उपयोग के लिये उपभोक्ता द्वारा देय विद्युत प्रभार के निर्धारण से संबंधित है जबकि धारा 135 विद्युत चोरी के मामले पर कार्यवाही से संबंधित है - दोनों धाराएं 126 एवं 135 सभी दृष्टि से स्वतंत्र हैं और दायित्व एवं परिणाम के भिन्न प्रकार उपबंधित करती हैं - धारा 126 मौद्रिक दायित्व से संबंधित है जबकि धारा 135 दाण्डिक दायित्व से संबंधित है।

Maharashtra State Electricity Distribution Company Ltd. v. Appellate Authority and another

Judgment dated 15.02.2018 passed by the Supreme Court in Civil Appeal No. 3370 of 2007, reported in 2018 (4) MPLJ 515

•

124. EVIDENCE ACT, 1872 – Sections 3 and 32

(i) Whether a related witness can be said to be an 'interested' witness merely by virtue of being a relative of the victim? Held, No.

(ii) Interested witness and related witness; distinction between – A witness may be called "interested" only when he or she derives some benefit from the result of a litigation – In the context of a criminal case, it would mean that the witness has a direct or indirect interest in seeing the accused punished due to prior enmity or other reasons, and thus has a motive to falsely implicate the accused – A witness who is a natural one and is the only possible eye witness in the circumstances of a case, cannot be said to be "interested".

(iii) Appreciation of evidence – Evidence of related witness – Court may not treat his or her testimony as inherently tainted, and needs to ensure only that the evidence is inherently reliable, probable, cogent and consistent – The evidence cannot be ignored or thrown out solely because it comes from the mouth of a person who is closely related to the victim.

(iv) Whether dying declaration can form the basis of conviction? Held, Yes – Dying declaration if found reliable and not an attempt by deceased to cover truth or to falsely implicate accused, can be safely relied upon and can form basis of conviction.

साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धाराएं 3 और 32

(i) क्या नातेदार साक्षी को मात्र इस कारण 'हितबद्ध' साक्षी कहा जा सकता है कि वह पीड़ित का संबंधी है? अभिनिर्धारित, नहीं।

(ii) नातेदार साक्षी तथा हितबद्ध साक्षी में भेद - कोई साक्षी तभी हितबद्ध कहा जा सकता है जब वह वाद के परिणाम से कुछ लाभ प्राप्त करता है - आपराधिक मामले के संदर्भ में, दूसरा आशय यह है कि पूर्व शत्रुता या अन्य कारणों से उस साक्षी का अभियुक्त को दण्डित होते देखने में प्रत्यक्ष या परोक्ष हित हो और इस कारण अभियुक्त को मिथ्या आलिप्त करने का हेतु रखता हो - ऐसा साक्षी जो स्वाभाविक है और मामलों की परिस्थितियों में एक मात्र संभव चक्षुदर्शी साक्षी है, उसे हितबद्ध नहीं कहा जा सकता है।

(iii) साक्ष्य का मूल्यांकन - नातेदार साक्षी की साक्ष्य - न्यायालय उसकी साक्ष्य को अंतर्निहित रूप से दूषित नहीं मान सकता है और केवल यह सुनिश्चित करना

आवश्यक है कि वह साक्ष्य अंतर्निहित रूप से विश्वसनीय, संभाव्य, निश्चयात्मक और सतत् है - ऐसी साक्ष्य की मात्र इस कारण उपेक्षा नहीं की जा सकती है कि यह ऐसे व्यक्ति के मुख से निकली है जो पीड़ित का निकट संबंधी है।

(iv) क्या मृत्युकालिक कथन दोषसिद्धि का आधार हो सकता है? अभिनिर्धारित, हां - मृत्युकालिक कथन यदि विश्वसनीय पाया जाता है और मृतक द्वारा सत्य को छिपाने या अभियुक्त को मिथ्या आलिप्त करने का प्रयास नहीं किया गया है तो उस पर सुरक्षित रूप से भरोसा किया जा सकता है तथा दोषसिद्धि का आधार हो सकता है।

Laltu Ghosh v. State of West Bengal

Judgment dated 19.02.2019 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 312 of 2010, reported in AIR 2019 SC 1058

Relevant extracts from the judgment:

As regards the contention that the eye-witnesses are close relatives of the deceased, it is by now well-settled that a related witness cannot be said to be an 'interested' witness merely by virtue of being a relative of the victim. This Court has elucidated the difference between 'interested' and 'related' witnesses in a plethora of cases, stating that a witness may be called interested only when he or she derives some benefit from the result of a litigation, which in the context of a criminal case would mean that the witness has a direct or indirect interest in seeing the accused punished due to prior enmity or other reasons, and thus has a motive to falsely implicate the accused [for instance, see ***State of Rajasthan v. Kalki, (1981) 2 SCC 752; Amit v. State of Uttar Pradesh, (2012) 4 SCC 107;*** and ***Gangabhavani v. Rayapati Venkat Reddy, (2013) 15 SCC 298].*** Recently, this difference was reiterated in ***Ganapathi v. State of Tamil Nadu, (2018) 5 SCC 549,*** in the following terms, by referring to the three-Judge bench decision in ***State of Rajasthan v. Kalki, (1981) 2 SCC 752:***

> "14. "Related" is not equivalent to "interested". A witness may be called "interested" only when he or she derives some benefit from the result of a litigation; in the decree in a civil case, or in seeing an accused person punished. A witness who is a natural one and is the only possible eye witness in the circumstances of a case cannot be said to be "interested"..."

In criminal cases, it is often the case that the offence is witnessed by a close relative of the victim, whose presence on the scene of the offence would be natural. The evidence of such a witness cannot automatically be discarded by labelling the witness as interested. Indeed, one of the earliest statements with respect to interested witnesses in criminal cases was made by this Court in ***Dalip Singh v. State of Punjab, 1954 SCR 145,*** wherein this Court observed:

> "26. A witness is normally to be considered independent unless he or she springs from sources which are likely to be tainted and that usually means unless the witness has cause, such as enmity against the accused, to wish to implicate him falsely. Ordinarily, a close relative would be the last to screen the real culprit and falsely implicate an innocent person..."

In case of a related witness, the Court may not treat his or her testimony as inherently tainted, and needs to ensure only that the evidence is inherently reliable, probable, cogent and consistent. We may refer to the observations of this Court in ***Jayabalan v. Union Territory of Pondicherry, (2010) 1 SCC 199***:

> "23. We are of the considered view that in cases where the Court is called upon to deal with the evidence of the interested witnesses, the approach of the Court while appreciating the evidence of such witnesses must not be pedantic. The Court must be cautious in appreciating and accepting the evidence given by the interested witnesses but the Court must not be suspicious of such evidence. The primary endeavour of the Court must be to look for consistency. The evidence of a witness cannot be ignored or thrown out solely because it comes from the mouth of a person who is closely related to the victim."

In the instant matter, as already discussed above, we find the testimony of the eye-witnesses to be consistent and reliable, and therefore reject the contention of the appellants that the testimony of the eye-witnesses must be disbelieved because they are close relatives of the deceased and hence interested witnesses.

It cannot be laid down as an absolute rule of law that a dying declaration cannot form the sole basis of conviction unless it is corroborated by other evidence. A dying declaration, if found reliable, and if it is not an attempt by the deceased to cover the truth or to falsely implicate the accused, can be safely relied upon by the Courts and can form the basis of conviction. More so, where the version given by the deceased as the dying declaration is supported and corroborated by other prosecution evidence, there is no reason for the Courts to doubt the truthfulness of such dying declaration. The doctor PW-18, who recorded the statement of the deceased which was ultimately treated as his dying declaration, has fully supported the case of the prosecution by deposing about recording the dying declaration. He also deposed that the victim was in a fit state of mind while making the said declaration. We also do not find any material to show that the victim was tutored or prompted by anybody so as to create suspicion in the mind of the Court. Moreover, in this case the evidence of the eyewitnesses, which is fully reliable, is corroborated by the dying declaration in all material particulars. The High Court, on reappreciation of the entire

evidence before it, has come to an independent and just conclusion by setting aside the judgment of acquittal passed by the Trial Court. The High Court has found that there are substantial and compelling reasons to differ from the finding of acquittal recorded by the Trial Court. The High Court having found that the view taken by the Trial Court was not plausible in view of the facts and circumstances of the case, has on independent evaluation and by assigning reasons set aside the judgment of acquittal passed by the Trial Court.

•

***125. EVIDENCE ACT, 1872 – Section 32**

(i) Dying Declaration, relevancy of – Case in which cause of death comes in question, dying declaration of such person as to cause of his death or circumstances which resulted in his death is relevant – Dying declaration is an exception to rule against hearsay evidence.

(ii) Genuineness of dying declaration – Two dying declarations – One recorded by Special Executive Magistrate after obtaining fitness certificate and due permission from the Doctor – Another dying declaration recorded by Constable – Dying declaration cannot be disbelieved on ground that it was recorded twice – Statements in both dying declarations were consistent – Turning of prosecution witnesses hostile and minor discrepancies in prosecution case is immaterial to disbelieve dying declaration.

साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 32

(i) मृत्युकालिक कथन की सुसंगतता - उस प्रकरण में, जिसमें मृत्यु का कारण प्रश्नगत होता है, ऐसे व्यक्ति का मृत्युकालिक कथन उसकी मृत्यु के कारण के रूप में या उन परिस्थितियों के रूप में जिनकी परिणति में उसकी मृत्यु हुई है, सुसंगत है - मृत्युकालिक कथन अनुश्रुत साक्ष्य के नियम का अपवाद है।

(ii) मृत्युकालिक कथन की सत्यता - दो मृत्युकालिक कथन - एक का अभिलेखन विशेष कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा योग्यता प्रमाण पत्र अभिप्राप्त करने के पश्चात् तथा डॉक्टर की सम्यक् अनुमति से किया गया - अन्य मृत्युकालिक कथन कांस्टेबल द्वारा अभिलिखित किया गया - मृत्युकालिक कथन पर इस आधार पर अविश्वास नहीं किया जा सकता है कि इसे दो बार अभिलिखित किया गया - दोनों मृत्युकालिक कथनों के विवरण स्थिर थे - अभियोजन साक्षीगण का पक्षविरोधी हो जाना तथा अभियोजन मामले में कि छोटी विसंगतियाँ, मृत्युकालिक कथन के अविश्वास किये जाने के लिए अतात्विक हैं।

Madan @ Madhu Patekar v. The State of Maharashtra
Judgment dated 06.02.2018 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 1025 of 2011, reported in 2019 (1) ANJ (SC) 109

•

***126. EXCISE ACT, 1915 (M.P.) – Sections 34 (2), 44 and 61**

Cognizance of offence – F.I.R. registered for breach of condition of permit – Held, according to provision of Section 61 of the Act of 1915, Magistrate shall take cognizance of such an offence only upon complaint filed by Collector or Excise Officer not below the rank of District Excise Officer.

आबकारी अधिनियम, 1915 (म.प्र.) - धाराएं 34 (2), 44 एवं 61

अपराध का संज्ञान - अनुज्ञापत्र की शर्त के उल्लंघन के लिये प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई - अभिनिर्धारित, 1915 के अधिनियम की धारा 61 के प्रावधान के अनुसार, मजिस्ट्रेट ऐसे अपराधों का संज्ञान केवल कलेक्टर या जिला आबकारी अधिकारी से अनिम्न श्रेणी के आबकारी अधिकारी द्वारा किये गये परिवाद पर ही लेगा।

Dinesh v. State of M.P.

Order dated 15.03.2017 passed by the High Court of Madhya Pradesh (Indore Bench) in M.Cr.C. No. 13134 of 2016, reported in ILR (2017) MP 1544

•

127. HINDU SUCCESSION ACT, 1956 – Section 30

Whether a coparcener can dispose of his undivided share in Mitakshara joint family property by Will or any testamentary disposition? Held, Yes.

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 - धारा 30

क्या कोई सहदायिक, मिताक्षरा संयुक्त परिवार की सम्पत्ति में अपने अविभाजित अंश को इच्छापत्र अथवा किसी वसीयती व्ययन द्वारा व्ययनित कर सकता है? अभिनिर्धारित, हाँ।

Radhamma v. H.N. Muddukrishna

Judgment dated 23.01.2019 passed by the Supreme Court in Civil Appeal No.7092 of 2010, reported in AIR 2019 SC 643

Relevant extracts from the judgment:

It is true that prior to coming into force of the Hindu Succession Act, no coparcener could dispose of whole or any portion of his undivided coparcenary interest by Will but by virtue of Section 30 of the Act read with explanation, a coparcener derives his right to dispose of his undivided share in Mitakshara joint family property by Will or any testamentary disposition *i.e.* by virtue of law.

Section 30 of the Act permits the disposition by way of Will of a male Hindu in a Mitakshara coparcenary property. The significant fact which may be noticed is that while the legislature was aware of the strict rule against alienation by way of gift, it only relaxed the rule in favour of disposition by way of a Will of a male Hindu in a Mitakshara coparcenary property. Therefore, the law insofar as it applies to joint family property governed by the Mitakshara school, prior to the

amendment of 2005, when a male Hindu dies after the commencement of the Hindu Succession Act, 1956 leaving at the time of his death an interest in Mitakshara coparcenary property, his interest in the property will devolve by survivorship upon the surviving members of the coparcenary. An exception is contained in the explanation to Section 30 of the Act making it clear that notwithstanding anything contained in the Act, the interest of a male Hindu in Mitakshara coparcenary property can be disposed of by him by Will or any other testamentary disposition.

•

128. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Sections 34, 302 and 364
CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 313

(i) Circumstantial evidence – 'Last seen theory' alongwith other circumstances were established by prosecution – It was theduty of the accused to explain these circumstancesinhis examination – Accused merely denied his involvement in the crime – Held, accused rightly convicted.

(ii) Whether death of one of the main co-accused sharing common intention while committing crime would exonerate the other co-accused? Held, No – In case of common intention of two accused persons, death of one is of no significance so far as the prosecution of other is concerned.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 - धाराएं 34, 302 एवं 364
दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 313

(i) परिस्थितिजन्य साक्ष्य - अन्य परिस्थितियों के साथ-साथ अभियोजन पक्ष द्वारा 'अंतिम बार साथ देखा जाना' भी स्थापित किया गया - अपने परीक्षण में इन परिस्थितियों को स्पष्ट करने का दायित्व अभियुक्त पर था - अभियुक्त ने मात्र अपराध में अपनी भागीदारी से इंकार किया - अभिनिर्धारित, अभियुक्त को उचित ही दोषी ठहराया।

(ii) क्या अपराध करते समय सामान्य आशय रखने वाले मुख्य सह-अभियुक्त की मृत्यु अन्य सह-अभियुक्त को दोषमुक्त कर देगी? अभिनिर्धारित, नहीं - दो अभियुक्तगण के सामान्य आशय के मामले में एक की मृत्यु का कोई महत्व नहीं है जहां तक दूसरे के अभियोजन का संबंध है।

Murugan v. State of Tamil Nadu

Judgment dated 02.05.2018 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 1498 of 2010, reported in 2018 (2) Crimes 333 (SC)

Relevant extracts from the judgment:

That apart, in our opinion, it was necessary for the appellant to have explained the aforementioned circumstances appearing against him in the proceedings under Section 313 of the Code. The appellant, however, failed to explain any circumstances and denied his involvement in the crime.

We find from the evidence eight circumstances appearing against the appellant. These circumstances are: *First* motive was against the deceased due to his not agreeing to the proposal of marriage of Kumar with his daughter; *Second*, the appellant and Kumar, both being the cousins, knew each other very well; *Third*, both went together to the house of the deceased to invite him for a dinner at Kumar's house; *Fourth*, all the three had dinner together at Kumar's house; *Fifth*, Murugan died immediately after dinner; *Sixth*, Kumar gave his confessional statement; *Seventh*, recovery of weapon and cloths at the instance of Kumar; and *Eighth*, the dead body was found lying near iron cot where Murugan (deceased) had last dinner with Kumar and the appellant.

In our view, the aforementioned eight circumstances do constitute a chain of events against the appellant and lead to draw a strong conclusion against the appellant and Kumar for having committed the murder of Murugan.

In our view, it clearly establishes that both (Kumar and the appellant) had a common intention to eliminate Murugan. In our view, there could be no other person other than the appellant and Kumar, who committed the crime in question.

A theory of "accused last seen in the company of the deceased" is a strong circumstance against the accused while appreciating the circumstantial evidence. In such cases, unless the accused is able to explain properly the material circumstances appearing against him, he can be held guilty for commission of offence for which he is charged. In this case, it was rightly held by the two Courts below against the appellant and we find no good ground to disturb this finding.

X X X

We are not impressed by the submission of the learned counsel for the appellant when she argued that Kumar (main accused) having died without facing the trial, the present appellant is entitled for a clean acquittal because nothing now survives against the appellant after Kumar's death for appellant's prosecution. We do not agree with this submission.

In our view, death of Kumar was of no significance so far as the appellant's prosecution is concerned. The reason being that this was a case of common intention of the two accused persons to eliminate Murugan and the appellant was one of the accused persons, who was found actively participating in the crime till last along with the other accused, who died.

•

***129. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Section 302**

Murder – Plea of accused that deceased died in train accident – Postmortem of deceased reveals that injuries were inflicted upon vital organs *i.e.* chest and lung by sharp weapon which is homicidal in nature – Accused had animosity with deceased – Held, prosecution story is duly supported by prosecution evidence and injuries are sufficient to cause death of deceased in ordinary course of nature to disbelieve defence of accused.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 - धारा 302

हत्या - अभियुक्त का अभिवाक् कि मृतक की मृत्यु रेल दुर्घटना में हुई - मृतक की शव परीक्षा यह प्रकट करती है कि क्षतियाँ मार्मिक अंगों जैसे सीने एवं फेफडों पर धारदार हथियार द्वारा कारित की गई थी, जो मानव वध प्रकृति की थीं - अभियुक्त की मृतक से शत्रुता थी - अभिनिर्धारित, अभियोजन कहानी, अभियोजन साक्ष्य द्वारा सम्यक् रूप से समर्थित है और अभियुक्त के बचाव पर अविश्वास किये जाने के लिये क्षतियाँ प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृतक की मृत्यु कारित करने के लिये पर्याप्त हैं।

Ajay Choudhari v. State of M.P.

Judgment dated 17.05.2018 passed by the High Court of Madhya Pradesh in Criminal Appeal No. 1061 of 2008, reported in 2019 (1) ANJ (MP) 93

•

***130. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Section 302**

Whether an accused may be acquitted on the sole ground that the other co-accused have been acquitted? Held, No – If there is clinching evidence on record to establish the accused's guilt and involvement in the commission of offence, the accused will not be eligible for benefit of doubt.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 - धारा 302

क्या कोई अभियुक्त इस एकमेव आधार पर दोषमुक्त किया जा सकता है कि अन्य सह अभियुक्तगण दोषमुक्त कर दिए गए हैं? अभिनिर्धारित, नहीं - यदि अपराध के कारित किए जाने में अभियुक्त की संलिप्तता एवं दोष को स्थापित करने हेतु अभिलेख पर सुनिश्चित साक्ष्य है, तो ऐसा अभियुक्त संदेह का लाभ प्रदान किए जाने का पात्र नहीं होगा।

Pappi @ Mehboob v. State of Rajasthan

Judgment dated 05.02.2019 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 497 of 2009, reported in AIR 2019 SC 904

•

***131. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Section 302**

APPRECIATION OF EVIDENCE:

(i) Whether evidence can be rejected just because it is partisan? Held, No.

(ii) Whether facts of recovery can be disregarded merely because it was not made before independent witness? Held, No.

(iii) Evidence of police officials – There is no such legal proposition that the evidence of police officials unless supported by independent witness is unworthy of acceptance or the evidence of police officials can be outrightly disregarded.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 - धारा 302
साक्ष्य का मूल्यांकनः

(i) क्या साक्ष्य केवल इस आधार पर अस्वीकार की जा सकती है कि वह पक्षपोषी है?अभिनिर्धारित, नहीं।

(ii) क्या अभिग्रहण का तथ्य मात्र इस कारण अस्वीकार किया जा सकता है कि वह स्वतंत्र साक्षियों के समक्ष नहीं किया गया था? अभिनिर्धारित, नहीं।

(iii) पुलिस अधिकारियों की साक्ष्य - ऐसी कोई विधिक प्रतिपादना नहीं है कि पुलिस अधिकारियों की साक्ष्य जब तक कि स्वतंत्र साक्षियों से अनुसमर्थित न हो, स्वीकृति के अयोग्य है अथवा पुलिस अधिकारियों की ऐसी साक्ष्य पूर्णतः अस्वीकार कर देनी चाहिए।

Kripal Singh v. State of Rajasthan
Judgment dated 15.02.2019 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 2100 of 2008, reported in AIR 2019 SC 947

•

132. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Section 302
EVIDENCE ACT, 1872 – Section 32
APPRECIATION OF EVIDENCE:

(i) Dying declaration; evidentiary value of – Explained – Dying declaration was recorded by Medical Officer treating the deceased – He endorsed that deceased was in fit condition to give dying declaration – He duly proved the dying declaration in Court – Police had made requisition for recording dying declaration but before it could reach the treating doctor, dying declaration was recorded by him – *Dehati Nalishi*/FIR was recorded just before the dying declaration – Held, dying declaration is acceptable and trustworthy.

(ii) Identification of accused in dying declaration – Complete address of accused is not always mandatory in dying declaration – Identification of accused may be gathered from dying declaration and attending evidence – Eye witnesses proved that initially a quarrel took place between accused Pappu and deceased Bhagirath – Thereafter accused went to the spot alongwith his father Dayaram – Deceased stated in his dying declaration that he was assaulted by Pappu son of Dayaram Lahari – Held, accused was identifiable by the description mentioned in dying declaration.

(iii) Interpolation of date in FIR/*Dehati Nalishi*; Effect of – Explained – *Dehati Nalishi* was recorded at 11:50 p.m. on 19/06/1996 and FIR was recorded on 20/06/1996 at around 00:20 a.m. – Dehati Nalishi is fully supported by FIR – It is possible that date on

***Dehati Nalishi* could have been mentioned by mistake – Entire *Dehati Nalishi* could not be discarded on the ground that this mistake is corrected by interpolating the date.**

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 - धारा 302

साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 32

साक्ष्य का मूल्यांकनः

(i) मृत्युकालिक कथन का साक्ष्यिक मूल्य - व्याख्या की गई - मृतक का इलाज करने वाले चिकित्साधिकारी द्वारा मृत्युकालिक कथन लेखबद्ध किया गया था - उसने कथन देते समय मृतक के उचित स्थिति में होने की पुष्टि की थी - उसने न्यायालय में मृत्युकालिक कथन सम्यक रूप से प्रमाणित किया था - पुलिस ने भी मृत्युकालिक कथन लेख करने का आवेदन तैयार किया था परन्तु आवेदन, इलाज करने वाले चिकित्सक तक पहुंचने के पूर्व ही उसके द्वारा मृत्युकालिक कथन लेख कर लिया गया था - देहाती नालिशी/प्रथम सूचना रिपोर्ट मृत्युकालिक कथन से ठीक पहले लेखबद्ध की गई थी - अभिनिर्धारित, मृत्युकालिक कथन विश्वसनीय और स्वीकार्य है।

(ii) मृत्युकालिक कथन में अभियुक्त की पहचान - मृत्युकालिक कथन में अभियुक्त का पूरा पता सदैव अनिवार्य नहीं होता है - अभियुक्त की पहचान मृत्युकालिक कथन और उपलब्ध साक्ष्य से सुनिश्चित की जा सकती है - चक्षुदर्शी साक्षियों ने प्रमाणित किया कि प्रारंभ में अभियुक्त पप्पू और मृतक भागीरथ में झगड़ा हुआ था - इसके बाद अभियुक्त अपने पिता दयाराम के साथ घटना स्थल पर आया था - मृतक ने अपने मृत्युकालिक कथन में बताया था कि दयाराम लाहरी के पुत्र पप्पू द्वारा उसके साथ मारपीट की गई थी - अभिनिर्धारित, अभियुक्त मृत्युकालिक कथन में दिए गए विवरण से पहचानने योग्य था।

(iii) प्रथम सूचना रिपोर्ट/देहाती नालिशी में तिथि के अंतरवेषण का प्रभाव - स्पष्ट किया गया - देहाती नालिशी दिनांक 19/06/1996 की रात्रि 11: 50 बजे दर्ज की गई थी और प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 20/06/1996 की प्रातः लगभग 00:20 बजे पंजीबद्ध की गई थी - देहाती नालिशी पूरी तरह से प्रथम सूचना रिपोर्ट द्वारा समर्थित थी - यह संभव है कि देहाती नालिशी पर त्रुटिवश गलत तिथि का उल्लेख कर दिया गया था - संपूर्ण देहाती नालिशी को इस आधार पर अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि इस त्रुटि को तिथि में अंतरवेषण कर सुधारा गया है।

Pappu @ Chandra Prakash v. State of Madhya Pradesh

Judgment dated 23.05.2017 passed by the High Court of Madhya Pradesh (Gwalior Bench) in Criminal Appeal No. 167 of 2002, reported in ILR 2017 MP 1724

Relevant extracts from the judgment:

The FIR/Dehati Nalishi Ex.P10 was lodged by the deceased Bhagirath himself and it is duly proved by ASI RA Tiwari (PW11). ASI RA Tiwari (PW11) has stated that he went to the hospital and recorded a Dehati Nalishi Ex.P10. He also gave a requisition to the concerned doctor for recording of Dying Declaration and that application was Ex.D4. In the mean time, the Dying Declaration Ex.P5 was recorded by Dr.Vishwajit Jalaj (PW10). He proved the Dying Declaration Ex.P5. The Dying Declaration was recorded in question-answer form and Dr. Vishwajit Jalaj (PW10) has clearly opined at closure of the Dying Declaration that the deceased Bhagirath was in a fit condition to give Dying Declaration. In that Dying Declaration, the deceased Bhagirath has stated that the injuries were caused by the appellant Pappu alias Chandra Prakash, son of Dayaram Lahari.

The learned Senior Advocate for the appellant has relied upon the judgment passed by the Division Bench of this Court in the case of ***Sitaram v. State of MP, 2010 (III) MPWN 9,*** in which it is held that Dying Declaration should be proved by admissible evidence. If Dying Declaration Ex.P5 recorded by Dr. Vishwajit Jalaj (PW10) is considered, then before the trial Court, Dr. Vishwajit Jalaj had to give the complete description of Dying Declaration and according to the judgment passed by the Division Bench of this Court in the case of ***Sitaram*** (supra), the Dying Declaration is properly proved. The learned Senior Advocate for the appellant has also submitted that the deceased Bhagirath sustained many injuries and that he was not in a position to give any statement, therefore, the Dying Declaration Ex.P5 was not the actual Dying Declaration of the deceased. In this connection, the judgment passed by the Apex Court in the case of ***Smt. Laxmi v. Om Prakash and others, AIR 2001 SC (Cri) 2383,*** was referred, in which it is mentioned that before accepting the Dying Declaration the Court should satisfy that the deceased was in a fit state of mind and capable to make the statement when he gave a Dying Declaration and the same was recorded. In the present case, Dr. Vishwajit Jalaj (PW10) has categorically stated that the deceased Bhagirath was in a fit condition to give his statement and he gave answers to the questions asked by Dr. Vishwajit Jalaj. When a doctor confirms about the mental state of the deceased at the time of recording of Dying Declaration then it cannot be accepted that the deceased Bhagirath was not in a condition so that he could not give Dying Declaration. The Dying Declaration Ex.P5 as recorded by Dr. Vishwajit Jalaj is acceptable.

X X X

The learned Senior Advocate for the appellant has also submitted that a complete address of the appellant was not given in Dying Declaration Ex.P5 and, therefore, it cannot be accepted to connect the appellant with the crime. In this connection, the judgment passed by the Apex Court in the case of ***Gopal Singh and another v. State of MP and another, AIR 1972 SC 1557,*** is referred, in which it is held that in Dying Declaration if names and addresses of the accused persons are omitted then such Dying Declaration cannot be used against the accused persons. However, in the present case, the various witnesses have

stated that initially a quarrel took place between the deceased Bhagirath and the appellant Pappu alias Chandra Prakash and thereafter, the appellant went to the spot along-with his father Dayaram who had also participated in the assault and quarrel. Therefore, if the deceased Bhagirath has stated that he was assaulted by Pappu son of Dayaram Lahari then he gave a complete address and identification of the appellant. It was for the appellant to prove that he had a brother who is known as Pappu, son of Dayaram Lahari but the appellant could not prove any of his brothers was called by name of Pappu. Hence, the appellant was identifiable by the description given in the Dying Declaration Ex.P5. Hence, the law laid down in the case of ***Gopal Singh*** (supra) is not acceptable in the present case. On the basis of the aforesaid discussion, the Dying Declaration Ex.P5 proved by Dr. Vishwajit Jalaj (PW10) is acceptable. The Dying Declaration is a substantive piece of evidence and the accused can be convicted for the offence under Section 302 of IPC on the sole basis of Dying Declaration. However, in the present case, there is availability of the eye-witnesses in the case. Hence, the Dying Declaration can be used as a substantive piece of evidence as well as for corroboration of eye-witnesses.

X X X

The evidence of eye-witnesses is duly corroborated by the Dehati Nalishi Ex.P10 recorded by ASI RA Tiwari (PW11). Though it is pointed out by learned Senior Advocate for the appellant that there was interpolation in the date of the Dehati Nalishi Ex.P10 but since the Dehati Nalishi was taken soon before 12 O'clock in the night and it was possible that ASI RA Tiwari (PW11) would have mentioned the date 20/06/1996 by mistake with the apprehension that Dehati Nalishi was recorded after 12 O'clock and thereafter, if he corrected his mistake, then by such correction the entire Dehati Nalishi cannot be discarded. Dehati Nalishi is duly supported by the FIR Ex.P11 which was recorded on 20/06/1996 at about 00:10 am *i.e.* within 20 minutes of recording of Dehati Nalishi. Hence, it cannot be said that ASI RA Tiwari had recorded Dehati Nalishi after the death of the deceased Bhagirath or that it was an ante-timed document.

•

133. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Section 307

Attempt to murder – Proof of grievous or life-threatening hurt not a *sine qua non* for the offence punishable under Section 307 – Intention of the accused is important which can be ascertained from the actual injury and surrounding circumstances including nature of weapon used and severity of blows inflicted.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 - धारा 307

हत्या का प्रयास - घोर या जीवन संकटापित करने वाली उपहति का सबूत धारा 307 के अधीन दण्डनीय अपराध हेतु अनिवार्य नहीं है - अभियुक्त का आशय महत्वपूर्ण है जिसे वास्तविक क्षति और प्रयुक्त आयुध व कारित प्रहारों की गंभीरता सहित प्रतिवेशी परिस्थितियों से अभिनिर्धारित किया जा सकता है।

State of Madhya Pradesh v. Kanha @ Omprakash

Judgment dated 04.02.2019 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 1589 of 2018, reported in AIR 2019 SC 713

Relevant extracts from the judgment:

The first part of Section 307 refers to "an act with such intention or knowledge, and under such circumstances that, if he by that act caused death, he would be guilty of murder". The second part of Section 307, which carries a heavier punishment, refers to 'hurt' caused in pursuance of such an 'act'.

Several judgments of this Court have interpreted Section 307 of the Penal Code. In ***State of Maharashtra v. Balram Bama Patil, (1983) 2 SCC 28,*** this Court held that it is not necessary that a bodily injury sufficient under normal circumstances to cause death should have been inflicted:

> "9...To justify a conviction under this Section it is not essential that bodily injury capable of causing death should have been inflicted. Although the nature of injury actually caused may often give considerable assistance in coming to a finding as to the intention of the accused, such intention may also be deduced from other circumstances, and may even, in some cases, be ascertained without any reference at all to actual wounds. The section makes a distinction between an act of the accused and its result, if any. Such an act may not be attended by any result so far as the person assaulted is concerned, but still there may be cases in which the culprit would be liable under this section. It is not necessary that the injury actually caused to the victim of the assault should be sufficient under ordinary circumstances to cause the death of the person assaulted. What the Court has to see is whether the act, irrespective of its result, was done with the intention or knowledge and under circumstances mentioned in this section. An attempt in order to be criminal need not be the penultimate act. It is sufficient in law, if there is present an intent coupled with some overt act in execution thereof."
>
> (Emphasis supplied)

This position in law was followed by subsequent benches of this Court. In ***State of M.P. v. Saleem, (2005) 5 SCC 554,*** this Court held thus:

> "13. It is sufficient to justify a conviction under Section 307 if there is present an intent coupled with some overt act in execution thereof. It is not essential that bodily injury capable of causing death should have been inflicted. The Section makes a distinction between the act of the accused and its result, if any. The Court has to see whether the act,

irrespective of its result, was done with the intention or knowledge and under circumstances mentioned in the Section. Therefore, an accused charged under Section 307 IPC cannot be acquitted merely because the injuries inflicted on the victim were in the nature of a simple hurt."

(Emphasis supplied)

In ***Jage Ram v. State of Haryana, (2015) 11 SCC 366,*** this Court held that to establish the commission of an offence under Section 307, it is not essential that a fatal injury capable of causing death should have been inflicted:

> "12. For the purpose of conviction under Section 307 IPC, the prosecution has to establish (i) the intention to commit murder; and (ii) the act done by the accused. The burden is on the prosecution that the accused had attempted to commit the murder of the prosecution witness. Whether the accused person intended to commit murder of another person would depend upon the facts and circumstances of each case. To justify a conviction under Section 307 IPC, it is not essential that fatal injury capable of causing death should have been caused. Although the nature of injury actually caused may be of assistance in coming to a finding as to the intention of the accused, such intention may also be adduced from other circumstances. The intention of the accused is to be gathered from the circumstances like the nature of the weapon used, words used by the accused at the time of the incident, motive of the accused, parts of the body where the injury was caused and the nature of injury and severity of the blows given, etc."

The above judgments of this Court lead us to the conclusion that proof of grievous or life-threatening hurt is not a *sine qua non* for the offence under Section 307 of the Penal Code. The intention of the accused can be ascertained from the actual injury, if any, as well as from surrounding circumstances. Among other things, the nature of the weapon used and the severity of the blows inflicted can be considered to infer intent.

•

134. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Section 354
EVIDENCE ACT, 1872 – Section 134
APPRECIATION OF EVIDENCE:

(i) Sexual offences, appreciation of evidence – Such offences are committed in lonely places – Therefore, sole testimony of prosecutrix is sufficient to prove the offence, if it seems to be reliable – She stands on higher pedestal than an injured witness does.

(ii) **Sexual offences – Delay in FIR, effect of – Explained – Held, delay is not fatal, if satisfactorily explained.**

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 - धारा 354

साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 134

साक्ष्य का मूल्यांकनः

(i) लैंगिक अपराधों में साक्ष्य का मूल्यांकन - ऐसे अपराध एकांत स्थानों पर किए जाते हैं - अतः, अपराध साबित करने के लिए अभियोक्त्री की एकल साक्ष्य पर्याप्त है, यदि यह विश्वसनीय प्रतीत होती हो - वह आहत साक्षी की तुलना में उच्च श्रेणी में आती है।

(ii) लैंगिक अपराध - प्रथम सूचना रिपोर्ट में विलंब का प्रभाव - समझाया गया - अभिनिर्धारित, विलंब घातक नहीं है, यदि संतोषजनक स्पष्टीकरण दिया गया है।

Shiv Kumar Kushwah v. State of Madhya Pradesh

Judgment dated 03.05.2017 passed by the High Court of Madhya Pradesh in Criminal Revision No. 263 of 2008, reported in ILR 2017 MP 1750

Relevant extracts from the judgment:

Generally in such types of offences, sole testimony of prosecutrix can be relied on, because accused would have committed the offence in lonely places, when he found the prosecutrix alone at her house. Therefore, it cannot be expected that in every case independent witness will be available. In case of ***Virendra Singh v. State of UP, AIR 2017 SC 869,*** the Apex Court has held that independent witness is not necessary in every case – non examination is not fatal. As per Section 134 of Evidence Act, no number of witness is prescribed to prove the offence. It is settled principle of law that not quantity but quality of evidence is evaluated. Therefore, sole witness can prove the commission of offence. In the instant case, the testimony of the prosecutrix itself seems reliable. In the case of ***State of Himachal Pradesh v. Sanjay Kumar @ Sunny, AIR 2017 SC 845,*** the Hon'ble Supreme Court has held that :

> "It is well settled that the testimony of a victim in cases of sexual offences is vital and unless there are compelling reasons which necessitate looking for corroboration of a statement, the Courts should find no difficulty to act on the testimony of the victim of a sexual assault alone to convict the accused. No doubt, her testimony has to inspire confidence. Seeking corroboration to a statement before relying upon the same as a rule, in such cases, would literally amount to adding insult to injury. Her evidence can be acted upon without corroboration. She stands at a higher pedestal than an injured witness does."

X X X

Learned counsel for the appellant has contended that the First Information Report (Ex.P-1) has been lodged after two days without any explanation, hence, it creates reasonable doubt in favour of the appellant. But with this regard no suggestion has been given to the prosecutrix and her husband (PW-2)/Dhaniram. In FIR (Ex.P/1), it is narrated that at the time of incident husband of the prosecutrix was out of station, hence FIR was lodged after two days. In case of ***Karnel Singh v. State of MP, AIR 1995 SC 2472,*** Hon'ble Supreme Court has held that :

> "In India women are slow and hesitant to complain of such assaults and if the prosecutrix happens to be a married person she will not do anything without informing her husband. Merely because the complaint was lodged less than promptly does not raise the inference that the complaint was false. The reluctance to go to the police is because of society's attitude towards such women; it casts doubt and shame upon her rather than comfort and sympathise with her. Therefore, delay in lodging complaints in such cases does not necessarily indicate that her version is false."

Likewise in the case of ***State of Punjab v. Gurmeet Singh and others, AIR 1996 SC 1392*** and ***State of Himachal Pradesh v. Sanjay Kumar @ Sunny, AIR 2017 SC 845,*** Hon'ble Supreme Court has held that :

> "The Courts cannot over-look the fact that in sexual offences delay in the lodging of the FIR can be due to variety of reasons particularly the reluctance of the prosecutrix or her family members to go to the police and complain about the incident which concerns the reputation of the prosecutrix and the honour of her family. It is only after giving it a cool thought that a complaint of sexual offence is generally lodged."

Therefore, the delay in filing of FIR is not fatal to prosecution. In the present case, the reason for delay in filing the FIR has been satisfactorily explained. Therefore, the contention of the learned counsel for the appellant is not acceptable.

•

135. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Section 396
EVIDENCE ACT, 1872 – Sections 3, 9 and 27
CRIMINAL TRIAL:

(i) Dacoity with murder, proof of – Factors enumerated.

(ii) Confessional statement of accused – Evidentiary value under Section 27 Evidence Act explained.

(iii) Failure to hold Test Identification Parade during investigation and non-identification of accused by prosecution witnesses; effect of – Explained. (*Kanta Prashad v Delhi Administration, 1958*

Cri.L.J 698 **and** *Vaikuntam Chandrappa and Ors v. State of Andhra Pradesh, AIR 1960 SC 1340,* **relied on)**

(iv) Failure to establish motive of the accused, effect of – Explained.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 - धारा 396

साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धाराएं 3, 9 एवं 27

आपराधिक विचारणः

(i) हत्या सहित डकैती का सबूत - कारक बतलाए गए।

(ii) अभियुक्त का संस्वीकृति कथन - धारा 27 साक्ष्य अधिनियम के तहत साक्ष्यिक मूल्य की व्याख्या की गई।

(iii) विवेचना के दौरान पहचान परेड कराने में असफल रहने तथा अभियोजन साक्षियों द्वारा अभियुक्त की पहचान न करने, का प्रभाव - व्याख्या की गई। (***कांता प्रशाद विरूद्ध दिल्ली एडमिनिस्ट्रेशन, 1958 सी.आर.एल.जे 698*** तथा ***वैकुंटम चंद्रप्पा तथा अन्य विरूद्ध आंध्र प्रदेश राज्य, एआईआर 1960 एससी 1340,*** अवलंबित)

(iv) अभियुक्त के हेतु को स्थापित करने में चूक का प्रभाव - व्याख्या की गई।

Raju Manjhi v. State of Bihar

Judgment dated 02.08.2018 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 1333 of 2009, reported in AIR 2018 SC 3592

Relevant extracts from the judgment:

First and foremost, considering the primary contention advanced on behalf of the appellant that there was no instance of alleged dacoity on the time and place of occurrence wherein the accused was a party, we find from the deposition of Reena Devi (PW1), daughter-in-law of the informant that on the intervening night of 11th and 12th January, 1999 on hearing some disturbance, she woke up and found the assailants armed with sticks, looting articles in the house. When she tried to resist, they assaulted her and took away her ornaments including golden bangle and a chain and also tried to snatch her child. A brief case of her husband Neeraj Kumar (PW2) containing clothes and cash of Rs. 5,200/- has also been stolen. Altogether the worth of stolen property would be Rs. 25,000/-. In that commotion, hearing her hue and cry her father-in-law—PW3 (informant) and mother-in-law came there who objected the assailants and they too were assaulted by the accused.

Corroborating the statement of PW1, PW2—Neeraj Kumar, stated that the accused caused injuries to Kameshwar Singh due to which he fell down on the ground and later on succumbed to the injuries in the hospital. The evidence of PW3—informant also on the same lines as that of PWs 1 and 2. According to Zamil Asghar—the Investigating Officer (PW10), on receiving information about the occurrence of dacoity, the FIR (Ext.5) was registered and thereafter he visited the place of occurrence and recorded the statement of the informant and other inmates of the house and sent the injured to Piligrim Hospital, Gaya

for their treatment. Upon knowing that the alleged assailants were at Mohalla Balapar where they were consuming wine, he proceeded to that place and then rushed to the house of main accused Munna Manjhi and apprehended him at Samitee Bhawan. On his confession about the commission of the offence and disclosure of the names of other assailants, the I.O. raided the houses of other accused and apprehended them. He categorically stated that the appellant herein has made confessional statement which was prepared by him (Ext.7/1). He has also visited one orchard belonging to Kamal Jain situated near Jag Jiwan College and from there he recovered two bloodstained wooden pieces (sticks) under Exts. III and III/1 allegedly used in the crime and also seized polythene wine bags under Exts. I to I/V, besides recovering money from the possession of accused in the denomination of ` 100 x 3 and Rs. 50 x 4. The evidence of other prosecution witnesses and also the confessional statements of accused assailants and the recoveries made by the police substantiate the act of dacoity took place at the house of the informant and the injuries sustained by the inmates.

The other ground urged on behalf of the appellant is that the so called confessional statement of the appellant has no evidentiary value under law for the reason that it was extracted from the accused under duress by the police. It is true, no confession made by any person while he was in the custody of police shall be proved against him. But, the Evidence Act provides that even when an accused being in the custody of police makes a statement that reveals some information leading to the recovery of incriminating material or discovery of any fact concerning to the alleged offence, such statement can be proved against him. It is worthwhile at this stage to have a look at Section 27 of the Evidence Act.

> ***27. How much of information received from accused may be proved.— Provided that, when any fact is deposed to as discovered in consequence of information received from a person accused of any offence, in the custody of a police officer, so much of such information, whether it amounts to a confession or not, as relates distinctly to the fact thereby discovered may be proved.***

In the case on hand, before looking at the confessional statement made by the accused—appellant in the light of Section 27 of the Evidence Act, may be taken into fold for limited purposes. From the aforesaid statement of the appellant, it is clear that he had explained the way in which the accused committed the crime and shared the spoils. He disclosed the fact that Munna Manjhi was the Chief/Head of the team of assailants and the crime was executed as per the plan made by him. It has also came into light by his confession that the accused broke the doors of the house of informant with the aid of heavy stones and assaulted the inmates with pieces of wood (sticks). He categorically stated that he and Rampati Manjhi were guarding at the outside while other accused were committing the theft. The recoveries of used polythene pouches of wine, money, clothes, chains and bangle were all made at the disclosure by the accused

which corroborates his confessional statement and proves his guilt. Therefore, the confessional statement of the appellant stands and satisfies the test of Section 27 of the Evidence Act.

As regards the claim of appellant that non-identification of the accused by the witness would not substantiate the prosecution case, admittedly no prosecution witness has identified the accused—appellant which does not mean that the prosecution case against the accused is on false footing. As a general rule,identification tests do not constitute substantive evidence. The purpose of identification test is only to help the investigating agency as to whether the investigation into the offence is proceeding in a right direction or not. In our view non-identification of the appellant by any prosecution witness would not vitiate the prosecution case. It is evident from the confessional statement of the accused that at the time of occurrence he and another accused Rampati Manjhi were guarding outside the informant's house while other accused were committing dacoity inside. We do not think that there is any justification to the argument that as none of the prosecution witnesses could be able to identify the appellant, he cannot be termed as accused. In our view, such non-identification would not be fatal to the prosecution case in the given facts and circumstances.

The identification parade belongs to the stage of investigation, and there is no provision in the Code which obliges the investigating agency to hold or confers a right upon the accused to claim, a test identification parade. They do not constitute substantive evidence and these parades are essentially governed by Section 162 of the Code. Failure to hold a test identification parade would not make inadmissible the evidence of identification in Court. The weight to be attached to such identification should be a matter for the Courts of fact. In appropriate cases it may accept the evidence of identification even without insisting on corroboration [See: ***Kanta Prashad v. Delhi Administration, 1958 CriLJ 698*** and ***Vaikuntam Chandrappa and others v. State of Andhra Pradesh, AIR 1960 SC 1340***].

Moving on to the other limb of argument advanced on behalf of the appellant that the accused—appellant had no motive and the Courts below have failed to consider the fact that the evidence on record is not sufficient to establish motive of the accused. Undoubtedly, 'motive' plays significant role in a case based on circumstantial evidence where the purpose would be to establish this important link in the chain of circumstances in order to connect the accused with the crime. But, for the case on hand, proving motive is not an important factor when abundant direct evidence is available on record. The confessional statement of the appellant itself depicts the motive of the team of accused in pursuit of which they committed the robbery at the house of informant and the appellant being part of it.

It is also clear from the statement of the accused—appellant that the inmates of the house suffered injuries at the hands of the accused party as they had beaten them with the pieces of wood (sticks) and created terror among them. The recovery of bloodstained sticks from the orchard of Kamal Jain and the FSL

report (Ext.X) proves the circumstance with no manner of doubt. Another facet of the case as portrayed by the appellant in his defense is that the informant implicated the appellant in the crime with the connivance of I.O. due to old enmity. However, we do not find any evidence or material on record in support of such claim made by the appellant. On the other hand, not only by the recovery of ` 400/- from the house of appellant his participation stands proved, but also with the other incriminating evidence available on record.

•

136. INDIAN PENAL CODE, 1860 – Section 448
CRIMINAL PROCEDURE CODE, 1973 – Section 456

(i) Power to restore possession of immovable property – Trial Court can pass an order for restoration of the possession of the property to the person who was forcibly dispossessed while convicting the accused of trespass – If the trial Court had not passed such order while convicting the accused, the order may be passed within one month from the date of conviction – The limitation would apply only if Trial Court had not passed any order in respect of case property while convicting accused.

(ii) Power to restore possession of immovable property – No limitation has been provided for appellate or revisional Court to make such order to restore possession of immovable property.

भारतीय दण्ड संहिता, 1860 - धारा 448

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 456

(i) स्थावर सम्पत्ति के आधिपत्य के पुनस्र्थापन की शक्ति - अतिचार के लिए अभियुक्त को दोषसिद्ध करते समय विचारण न्यायालय सम्पत्ति के आधिपत्य के पुनस्र्थापन के लिए ऐसे व्यक्ति के पक्ष में आदेश कर सकता है जो बलपूर्वक आधिपत्यच्युत किया गया है - यदि विचारण न्यायालय अभियुक्त की दोषसिद्धि के समय ऐसा आदेश नहीं करता है, तो ऐसा आदेश दोषसिद्धि की तिथि से एक माह के भीतर किया जा सकता है - यह परिसीमा तभी लागू होगी जब यदि विचारण न्यायालय ने अभियुक्त की दोषसिद्धि के समय प्रकरण की सम्पत्ति के संबंध में कोई आदेश नहीं किया है।

(ii) स्थावर सम्पत्ति के आधिपत्य का पुनस्र्थापन - स्थावर सम्पत्ति के आधिपत्य के पुनस्र्थापन हेतु अपीलीय अथवा पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा ऐसा आदेश करने के लिए कोई परिसीमा विहित नहीं की गई है।

Mahesh Dube v. Shivbodh

Judgment dated 12.02.2019 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 1104 of 2011, reported in AIR 2019 SC 938

Relevant extracts from the judgment:

Sub-Section 1 of Section 456 clearly indicates that the Trial Court can pass an order for restoration of the possession of the property to the person who was forcibly dispossessed. The proviso no doubt lays down that no such order shall be passed after one month of the date of conviction.

In this case, the Trial Court while convicting the accused had passed an order directing restoration of the property to the complainant Shankar Prasad Dube. In the order, it has been stated that the property in the case be handed over to the petitioner Prayag Prasad Dube. Keeping in view of the nature of the dispute, there is no other case property except the property whose possession was forcibly taken by the respondents and their father. Therefore, no separate order was required directing restoration of possession since such an order had been passed while convicting the respondents and their father.

It seems that after the appeal was filed, the order directing restoration of the possession was not given effect to. We may also make reference to Sub-Section 2 of Section 456 Cr.P.C. which provides that if the Court trying the offence has not made such an order, the Court of appeal, confirmation or revision can also make such an order while disposing of the proceedings pending before it. No limitation has been provided for the higher Courts to make such order. In this behalf, reference may be made to the judgment of this Court in ***H. P. Gupta v. Manohar Lal, AIR 1979 SC 443***.

In the present case, after the appeal filed by the respondents and their father was dismissed, the father of the present appellant applied for handing over possession to him in terms of the order already passed by the Trial Court while convicting the respondents and their father, in which eventually, the limitation of 30 days would not apply. It would apply only if the Trial Court had not passed any order in respect of the case property while convicting the accused.

•

137. LIMITATION ACT, 1963 – Section 64
EVIDENCE ACT, 1872 – Section 101

(i) Suit based on possessory title and suit based on proprietary title; distinction between – If suit brought within 12 years from the date of dispossession, such a suit is known in law as a suit based on possessory title as distinguishable from proprietary title.

(ii) Settled possession – Settled possession or effective possession of person without title – It entitles such person to protect his possession as if he were true owner.

(iii) Possessory title; proof of – Person who asserts possessory title over particular property will have to show that he is under settled or established possession of said property – Merely stray or intermittent acts of trespass do not give such right against true owner.

(iv) Burden of proof – Plaintiff has to prove his case to the satisfaction of the Court – He cannot rely on weaknesses of the defendant.

परिसीमा अधिनियम, 1963 - धारा 64

साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 101

(i) आधिपत्य विषयक स्वत्व पर आधारित वाद तथा स्वामित्व आधारित स्वत्व पर आधारित वाद में भेद - यदि आधिपत्यच्युति की तिथि से 12 वर्ष के भीतर वाद लाया जाता है तो ऐसे वाद को स्वामित्व आधारित वाद से सुभिन्न आधिपत्य विषयक स्वत्व आधारित वाद माना जाता है।

(ii) स्थापित आधिपत्य - बिना स्वत्व किसी व्यक्ति का सुस्थापित या प्रभावी आधिपत्य - यह ऐसे व्यक्ति को अपने आधिपत्य की सुरक्षा हेतु इस प्रकार अधिकृत करता है जैसे कि वह वास्तविक स्वामी हो।

(iii) आधिपत्य विषयक स्वत्व का सबूत - कोई व्यक्ति जो किसी विनिर्दिष्ट सम्पत्ति पर आधिपत्य विषयक स्वत्व का दावा करता है, उसे यह दर्शित करना होगा कि वह उस सम्पत्ति के सुस्थापित आधिपत्य में है - मात्र अतिचार के एकल या अंतरायिक (बीच-बीच के) कार्य वास्तविक स्वामी के विरूद्ध ऐसा अधिकार नहीं देते हैं।

(iv) सबूत का भार - वादी को अपना मामला न्यायालय के समाधान पर साबित करना होगा - वह प्रतिवादी की दुर्बलताओं पर भरोसा नहीं कर सकता है।

Poona Ram v. Moti Ram (D) Through LRs.

Judgment dated 29.01.2019 passed by the Supreme Court in Civil Appeal No. 4527 of 2009, reported in AIR 2019 SC 813

Relevant extracts from the judgment:

Section 64 of the Limitation Act, 1963 contemplates a suit for possession of immovable property based on previous possession and not on title, if brought within 12 years from the date of dispossession. Such a suit is known in law as a suit based on possessory title as distinguishable from proprietary title. It cannot be disputed and is by now well settled that 'settled possession' or effective possession of a person without title entitles him to protect his possession as if he were a true owner.

A person who asserts possessory title over a particular property will have to show that he is under settled or established possession of the said property. But merely stray or intermittent acts of trespass do not give such a right against the true owner. Settled possession means such possession over the property which has existed for a sufficiently long period of time, and has been acquiesced to by the true owner. A casual act of possession does not have the effect of interrupting the possession of the rightful owner. A stray act of trespass, or a possession which has not matured into settled possession, can be obstructed or removed by the true owner even by using necessary force. Settled possession

must be (i) effective, (ii) undisturbed, and (iii) to the knowledge of the owner or without any attempt at concealment by the trespasser. There cannot be a straitjacket formula to determine settled possession. Occupation of a property by a person as an agent or a servant acting at the instance of the owner will not amount to actual legal possession. The possession should contain an element of *animus possidendi*. The nature of possession of the trespasser is to be decided based on the facts and circumstances of each case.

The plaintiff has to prove his case to the satisfaction of the Court. He cannot succeed on the weakness of the case of the defendant.

•

138. MOTOR VEHICLES ACT, 1988 – Sections 134, 166 and 187
EVIDENCE ACT, 1872 – Sections 3 and 106

(i) Motor Accident Claim cases; standard of proof – Standard of proof must be of preponderance of probability and not strict standard of proof beyond all reasonable doubt as followed in criminal cases – Once foundational fact, namely; actual occurrence of accident has been established, then Tribunal's role would be to calculate quantum of just compensation, if accident had taken place by reason of negligence of driver of a motor vehicle.

(ii) Proof of accident – If presence of a witness at the time and place of the accident is proved, the entire version of his evidence cannot be discarded only on the ground of his inability to identify the age of the pillion rider.

(iii) Whether non-examination of best witness as pillion rider would be fatal in accident claim cases? Held, No.

(iv) Evaluation of evidence in claim cases – There is nothing in Motor Vehicles Act which prohibit to produce such a witness who has not been named in list of witnesses in criminal case – It is required that opposite party should get a fair opportunity to cross examine concerned witness – Once it is done, no complaint about prejudice will be entertained.

(v) Compensation; determination of – Objection about deduction of income tax from calculated income – Held, the objection about deduction of income tax from calculated income is not sustainable in view of the law laid down by the Apex Court in *National Insurance Company Limited v. Pranay Sethi and others, (2017) 16 SCC 680*.

मोटरयान अधिनियम, 1988 - धाराएं 134, 166 एवं 187
साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धाराएं 3 एवं 106

(i) वाहन दुर्घटना दावा मामलों के लिए सबूत का स्तर - सबूत का स्तर अधिसंभाव्यता की प्रबलता का होना चाहिए न कि सभी संदेह से परे होने का ऐसा

कठोर स्तर जिसे आपराधिक मामलों में अनुसरित किया जाता है - जब एक बार आधारभूत तथ्य, यथा, दुर्घटना का वस्तुतः घटित होना स्थापित हो जाता है, तो यदि दुर्घटना वाहन चालक की असावधानी के कारण घटित हुई हो तो अधिकरण की भूमिका न्यायोचित प्रतिकर की संगणना करने की होगी।

(ii) दुर्घटना का सबूत - यदि दुर्घटना के समय और स्थान पर साक्षी की उपस्थिति साबित हो जाती है, तो मात्र पिछली सीट पर बैठे व्यक्ति की आयु बताने में अक्षमता मात्र के आधार पर उसकी सम्पूर्ण साक्ष्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

(iii) क्या सर्वोत्तम साक्षी यथा पिछली सीट पर बैठे व्यक्ति की परीक्षा न कराया जाना दुर्घटना दावा प्रकरण के लिए घातक होगा? अभिनिर्धारित, नहीं।

(iv) दावा प्रकरणों में साक्ष्य का मूल्यांकन - मोटरयान अधिनियम में ऐसा कुछ भी नहीं है जो आपराधिक प्रकरण की साक्ष्य सूची में नामित न किए गए व्यक्ति को साक्षी के रूप में प्रस्तुतिकरण को प्रतिषिद्ध करता हो - अपेक्षित यह है कि प्रतिपक्ष को संबद्ध साक्षी की प्रतिपरीक्षा का उचित अवसर प्राप्त होना चाहिए - एक बार यह हो जाता है, तो प्रतिकूलतः प्रभावित होने के संबंध में कोई शिकायत स्वीकार नहीं की जाएगी।

(v) प्रतिकर का निर्धारण - संगणित आय से आयकर विकलित करने के संबंध में आपत्ति - अभिनिर्धारित ***-नैशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड विरूद्ध प्रणय सेठी तथा अन्य, (2017) 16 एससीसी 680***, के मामले में प्रतिपादित विधि के आलोक में संगणित आय से आयकर के विकलन संबंधी आपत्ति पोषणीय नहीं है।

Sunita v. Rajasthan State Road Transport Corporation

Judgment dated 14.02.2019 passed by the Supreme Court in Civil Appeal No. 1665 of 2019, reported in AIR 2019 SC 994

Relevant extracts from the judgment:

It is thus well settled that in motor accident claim cases, once the foundational fact, namely; the actual occurrence of the accident, has been established, then the Tribunal's role would be to calculate the quantum of just compensation if the accident had taken place by reason of negligence of the driver of a motor vehicle and, while doing so, the Tribunal would not be strictly bound by the pleadings of the parties. Notably, while deciding cases arising out of motor vehicle accidents, the standard of proof to be borne in mind must be of preponderance of probability and not the strict standard of proof beyond all reasonable doubt which is followed in criminal cases.

In the present case, we find that the Tribunal had followed a just approach in the matter of appreciation of the evidence/materials on record. Whereas, the High Court adopted a strict interpretation of the evidence on the touchstone of proof beyond reasonable doubt to record an adverse finding against the appellants and to reverse the well considered judgment of the Tribunal in a cryptic manner.

X X X

The inability of the witness to identify the age of the pillion rider cannot, per se, be a militating factor to discard his entire version especially since the presence of the witness at the time and place of the accident has remained unshaken and including his deposition regarding the manner of occurrence of the accident and identity of the driver of the offending vehicle. The filing of FIR and the subsequent filing of the charge-sheet corroborate the witnesses' evidence. The view taken by the Tribunal therefore, on the veracity of the evidence of witness to incident is unexceptionable and there was no reason for the High Court to interfere with the same.

X X X

The issue of non-examination of the pillion rider would not be fatal to the case of the appellants. The approach in examining the evidence in accident claim cases is not to find fault with non examination of some "best" eye witness in the case but to analyse the evidence already on record to ascertain whether that is sufficient to answer the matters in issue on the touchstone of preponderance of probability. This Court, in ***Dulcina Fernandes v. Joaquim Xavier Cruz, (2013) 10 SCC 646,*** faced a similar situation where the evidence of claimant's eye-witness was discarded by the Tribunal and the respondent was acquitted in the criminal case concerning the accident. This Court, however, took the view that the material on record was *prima facie* sufficient to establish that the respondent was negligent. In the present case, therefore, the Tribunal was right in accepting the claim of the appellants even without the deposition of the pillion rider, since the other evidence on record was good enough to *prima facie* establish the manner in which the accident had occurred and the identity of the parties involved in the accident.

X X X

There is nothing in the Act to preclude citing of a witness in motor accident claim who has not been named in the list of witnesses in the criminal case. What is essential is that the opposite party should get a fair opportunity to cross examine the concerned witness. Once that is done, it will not be open to them to complain about any prejudice caused to them. If there was any doubt to be cast on the veracity of the witness, the same should have come out in cross examination, for which opportunity was granted to the respondents by the Tribunal.

X X X

The importance of cross-examining a witness has been elucidated by this Court on several occasions, notably in ***Kartar Singh v. State of Punjab, (1994) 3 SCC 569,*** where a Five-Judge Bench of this Court elaborated:

> "278. Section 137 of the Evidence Act defines what cross-examination means and Sections 139 and 145 speak of the mode of cross-examination with reference to the documents as well as oral evidence. It is the jurisprudence of law that cross-examination is an acid test of the

truthfulness of the statement made by a witness on oath in examination-in-chief, the objects of which are:

(1) to destroy or weaken the evidentiary value of the witness of his adversary;

(2) to elicit facts in favour of the cross-examining lawyer's client from the mouth of the witness of the adversary party;

(3) to show that the witness is unworthy of belief by impeaching the credit of the said witness;

and the questions to be addressed in the course of cross-examination are to test his veracity; to discover who he is and what is his position in life; and to shake his credit by injuring his character.

279. The identity of the witness is necessary in the normal trial of cases to achieve the above objects and the right of confrontation is one of the fundamental guarantees so that he could guard himself from being victimized by any false and invented evidence that may be tendered by the adversary party."

X X X

In appeal before the High Court, the limited grievance was about deduction of income tax from the calculated income. That ground is unsustainable in light of the decision in ***National Insurance Company Limited v. Pranay Sethi and ors., (2017) 16 SCC 680.*** We cannot permit the appellants to widen the scope in the present appeal, much less pray for enhanced compensation. We are instead inclined to restore the award passed by the Tribunal as it has determined the just compensation amount, keeping in mind all the relevant parameters including the apportionment thereof between the family members of the deceased. Upholding that, award would be doing complete justice.

•

139. MOTOR VEHICLES ACT, 1988 – Sections 140 and 168

(i) Road accident – Rash and negligent driving – Collision of car behind a running truck – Distance between the two vehicles was only 10–15 feet – Held, this is not a safe distance – Driver of car was negligent.

(ii) Road accident – Contributory negligence; determination of – Explained – Held, question of contributory negligence arises only when both the parties were rash and negligent while driving.

(iii) Claim petition – Compensation – Liability of owner to pay – Liability of owner under Section 140 is regardless of the fact that vehicle was not driven rashly and negligently.

मोटर यान अधिनियम, 1988 - धाराएं 140 एवं 168

(i) सड़क दुर्घटना - उपेक्षा एवं उतावलेपन से वाहन चलाना - एक चलते हुए ट्रक के पीछे कार टकराई थी - दोनों वाहनों के बीच की दूरी मात्र 10-15 फीट थी - अभिनिर्धारित, यह एक सुरक्षित दूरी नहीं है - कार का चालक उपेक्षापूर्ण था।

(ii) सड़क दुर्घटना - योगदायी उपेक्षा का निर्धारण - समझाया गया - अभिनिर्धारित, योगदायी उपेक्षा का प्रश्न तभी उठता है जब दोनों पक्ष वाहन चलाते समय उतावलेपन व उपेक्षापूर्ण रहे हों।

(iii) दुर्घटना दावा - प्रतिकर - वाहन स्वामी का भुगतान करने का दायित्व - धारा 140 के अधीन वाहन स्वामी का दायित्व इस तथ्य पर निर्भर नहीं करता है कि वाहन को उतावलेपन व उपेक्षापूर्वक नहीं चलाया गया था।

Nishan Singh and others v. Oriental Insurace Company Ltd. Through Regional Manager and others

Judgment dated 27.04.2018 passed by the Supreme Court in Civil Appeal No. 10145 of 2016, reported in 2019 (1) MPLJ 535 (SC) (3 Judge Bench)

Relevant extracts from the judgment:

The maruti car was driven by none other than PW2 Manjeet Singh. In his evidence, he has admitted that the subject truck was running ahead of the maruti car for quite some time about one kilometre and at the time of accident, the distance between the truck and maruti car was only 10-15 feet. He has also admitted that the law mandates maintaining sufficient distance between two vehicles running in the same direction. It is also not in dispute that the road on which the two vehicles were moving was only about 14 feet wide. It is unfathomable that on such a narrow road, the subject truck would move at a high speed as alleged. In any case, the maruti car which was following the truck was expected to maintain a safe distance, as envisaged in Regulation 23 of the Rules of the Road Regulations, 1989, which reads thus:

> "23. Distance from vehicles in front. The driver of a motor vehicle moving behind another vehicle shall keep at a sufficient distance from that other vehicle to avoid collision if the vehicle in front should suddenly slow down or stop."

The expression 'sufficient distance' has not been defined in the Regulations or elsewhere. The thumb rule of sufficient distance is at least a safe distance of two to three seconds gap in ideal conditions to avert collision and to allow the following driver time to respond. The distance of 10-15 feet between the truck and maruti car was certainly not a safe distance for which the driver of the maruti car must take the blame. It must necessarily follow that the finding on the issue under consideration ought to be against the claimants.

X X X

The next question is whether the Tribunal should have at least answered the issue of contributory negligence of the truck driver in favour of the appellants (claimants). The question of contributory negligence would arise when both parties are involved in the accident due to rash and negligent driving. In a case such as the present one, when the maruti car was following the truck and no fault can be attributed to the truck driver, the blame must rest on the driver of the maruti car for having driven his vehicle rashly and negligently. The High Court has justly taken note of the fact that the driver and owner of the maruti car, as well as insurer of that vehicle, had not been impleaded as parties to the claim petition. The Tribunal has also taken note of the fact that in all probability, the driver and owner of the maruti car were not made party being close relatives of the appellants. In such a situation, the issue of contributory negligence cannot be taken forward.

However, even in such a case, the Tribunal could have been well advised to invoke Section 140 of the Motor Vehicles Act, 1988, (for short "the Act") providing for liability of the owner of the vehicle (subject truck) involved in the accident. It is a well settled position that fastening liability under Section 140 of the Act on the owner of the vehicle is regardless of the fact that the subject vehicle was not driven rashly and negligently. We may usefully refer to the decisions in ***Indra Devi and others v. Bagada Ram and another, (2010) 13 SCC 249*** and ***Eshwarappa alias Maheshwarappa and another v. C.S. Gurushanthappa and another, (2010) 8 SCC 620,*** which are directly on the point.

•

***140. MOTOR VEHICLES ACT, 1988 – Section 166**

Claim petition – Assessment of disability – Claimant suffered a major accident resulting in permanent disability by amputation of his left leg – Doctor certified the disability to be 60% on the ground that despite the amputation of his left leg, his remaining body is healthy – Held, with the amputated leg, claimant, cannot pursue his livelihood as driver or daily wage labourer – Hence, disability is 90%.

मोटर यान अधिनियम, 1988 - धारा 166

दुर्घटना दावा - विकलांगता का आंकलन - दावाकर्ता को एक बड़ी दुर्घटना का सामना करना पड़ा जिसके परिणामस्वरूप उसके बाएं पैर का विच्छेदन हो गया - चिकित्सक ने 60 प्रतिशत विकलांगता इस आधार पर प्रमाणित की कि उसके बाएं पैर के विच्छेदन के बावजूद उसका शेष शरीर स्वस्थ है - अभिनिर्धारित, विच्छेदित पैर के साथ, दावाकर्ता, वाहन चालक या दिहाड़ी मजदूर के रूप में अपनी आजीविका अर्जित नहीं कर सकता है - अतः, विकलांगता 90 प्रतिशत है।

Lal Singh Marabi v. National Insurance Company Limited andothers
Judgment dated 15.02.2017 passed by the Supreme Court in Civil Appeal No. 3764 of 2017, reported in ILR 2017 MP 1619

•

141. N.D.P.S. ACT, 1985 – Sections 21(c), 29 and 67
EVIDENCE ACT, 1872 – Section 30
Whether confessional statement of co-accused recorded under Section 67 of the N.D.P.S. Act can form the sole basis of conviction of another co-accused? Held, No – Confessional statement of co-accused cannot by itself be taken as a substantive piece of evidence against another co-accused – It can only be used to lend assurance to other evidence against co-accused – In the absence of any substantive evidence, it would be inappropriate to base the conviction of an accused purely on the statements of co-accused.
स्वापक औषधि एवं मनः प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 - धाराएं 21(ग), 29 एवं 67
साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 30
क्या स्वापक औषधि एवं मनः प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 की धारा 67 के तहत अभिलिखित सहअभियुक्त के संस्वीकृति कथन, अन्य सहअभियुक्त की दोषसिद्धि का एकमात्र आधार हो सकते हैं? अभिनिर्धारित, नहीं - सहअभियुक्त के संस्वीकृति कथन स्वमेव में अन्य सहअभियुक्त के विरूद्ध सारभूत साक्ष्य के रूप में नहीं लिए जा सकते - वे केवल सहअभियुक्त के विरूद्ध अन्य साक्ष्य को समर्थन प्रदान करने के लिए उपयोग किए जा सकते हैं - किसी सारभूत साक्ष्य के अभाव में, मात्र सहअभियुक्त के कथनों पर अभियुक्त की दोषसिद्धी आधारित करना अनुचित होगा।

Surinder Kumar Khanna v. Intelligence Officer, Directorate of Revenue Intelligence
Judgment dated 31.07.2018 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 949 of 2018, reported in AIR 2018 SC 3574.

Relevant extracts from the judgment:

The statements of co-accused were recorded under and in terms of Section 67 of the NDPS Act. As regards such statements, a bench of two Judges of this Court after referring to and relying upon the earlier Judgments, observed in ***Kanhaiyalal v. Union of India, (2008) 4 SCC 668,*** as under:

> "45. Considering the provisions of Section 67 of the NDPS Act and the views expressed by this Court in ***Raj Kumar Karwal v. Union of India, (1990) 2 SCC 409***, case with which we agree, that an officer vested with the powers of an officer in charge of a police station under Section 53 of the above Act is not a "police officer" within the meaning of Section 25 of the Evidence Act, it is clear that a statement made under Section 67 of the NDPS Act is not the same as a statement made under Section 161 of the Code, unless made under threat or coercion. It is this vital difference, which allows a statement made under Section 67 of the NDPS Act to be

used as a confession against the person making it and excludes it from the operation of Sections 24 to 27 of the Evidence Act."

Later, another bench of two Judges of this Court in ***Tofan Singh v. State of Tamil Nadu, (2013) 16 SCC 31,*** was of the view that the matter required reconsideration and therefore, directed that the matter be placed before a larger bench. It was observed in ***Tofan Singh*** (supra) as under:

> "40. In our view the aforesaid discussion necessitates a re-look into the ratio of ***Kanhaiyalal case*** (supra). It is more so when this Court has already doubted the dicta in ***Kanhaiyalal*** (supra) in ***Nirmal Singh Pehlwan v. Inspector, Customs, (2011) 12 SCC 298,*** wherein after noticing both ***Kanhaiyalal*** (supra) as well as ***Noor Aga v. State of Punjab and another, (2008) 16 SCC 417,*** this Court observed thus: (***Nirmal Singh Pehlwan case*** (supra) p. 302, para 15)
>
> > "15. We also see that the Division Bench in ***Kanhaiyalal case*** (supra) had not examined the principles and the concepts underlying Section 25 of the Evidence Act, 1872 *vis-à-vis* Section 108 of the Customs Act and the powers of a Customs Officer who could investigate and bring for trial an accused in a narcotic matter. The said case relied exclusively on the judgment in ***Raj Kumar case*** (supra). The latest judgment in point of time is ***Noor Aga case*** (supra) which has dealt very elaborately with this matter. We thus feel it would be proper for us to follow the ratio of the judgment in ***Noor Aga case*** (supra) particularly as the provisions of Section 50 of the Act which are mandatory have also not been complied with."
>
> 41. For the aforesaid reasons, we are of the view that the matter needs to be referred to a larger Bench for reconsideration of the issue as to whether the officer investigating the matter under the NDPS Act would qualify as police officer or not.
>
> 42. In this context, the other related issue *viz.* whether the statement recorded by the investigating officer under Section 67 of the Act can be treated as confessional statement or not, even if the officer is not treated as police officer also needs to be referred to the larger Bench, inasmuch as it is intermixed with a facet of the 1st issue as to whether such a statement is to be treated as statement under Section 161 of the Code or it partakes the character of statement under Section 164 of the Code."

Thus the issue whether statement recorded under Section 67 of the NDPS Act can be construed as a confessional statement even if the officer who recorded such statement was not to be treated as a police officer, has now been referred to a larger Bench.

Even if we are to proceed on the premise that such statement under Section 67 of the NDPS Act may amount to confession, in our view, certain additional features must be established before such a confessional statement could be relied upon against a co-accused. It is noteworthy that unlike Section 15 of Terrorist and Disruptive Activities Act, 1987 (Similarly: Section 18 of Maharashtra Control of Organised Crime Act, 1999) which specifically makes confession of a co-accused admissible against other accused in certain eventualities; there is no such similar or identical provision in the NDPS Act making such confession admissible against a co-accused. The matter therefore has to be seen in the light of the law laid down by this Court as regards general application of a confession of a co-accused as against other accused.

In ***Kashmira Singh v. State of Madhya Pradesh, AIR 1952 SC 159,*** this Court relied upon the decision of the Privy Council in ***Bhuboni Sahu v. The King, AIR 1949 PC 257,*** and laid down as under:

> "Gurubachan's confession has played an important part in implicating the appellant, and the question at once arises, how far and in what way the confession of an accused person can be used against a co-accused? It is evident that it is not evidence in the ordinary sense of the term because, as the Privy Council say in ***Bhuboni Sahu v. The King*** (supra) "It does not indeed come within the definition of 'evidence' contained in Section 3 of the Evidence Act., It is not required to be given on oath, nor in the presence of the accused, and it cannot be tested by cross examination." Their Lordships also point out that it is "obviously evidence of a very weak type......... It is a much weaker type of evidence than the evidence of an approver, which is not subject to any of those infirmities."

They stated in addition that such a confession cannot be made the foundation of a conviction and can only be used in "support of other evidence." In view of these remarks it would be pointless to cover the same ground, but we feel it is necessary to expound this further as misapprehension still exists. The question is, in what way can it be used in support of other evidence? Can it be used to fill in missing gaps? Can it be used to corroborate an accomplice or, as in the present case, a witness who, though not an accomplice, is placed in the same category regarding credibility because the judge refuses to believe him except in so far as he is corroborated?

In our opinion, the matter was put succinctly by ***Sir 'Lawrence Jenkins in Emperor v. Lalit Mohan Chuckerbutty, (1911) ILR 38, CAL 559 at 588,*** where he said that such a confession can only be used to "lend assurance to other evidence against a co-accused" or, to put it in another way, as Reilly J. did in ***In re Periyaswami Moopan, (1931) ILR 54 MAd. 75 at 77***,

> "the provision goes no further than this-where there is evidence against the co-accused sufficient, if believed, to support his conviction, then the kind of confession described in Section 30 may be thrown into the scale as an additional reason for believing that evidence."

Translating these observations into concrete terms they come to this. The proper way to approach a case of this kind is, first, to marshal the evidence against the accused excluding the confession altogether from consideration and see whether, if it is believed, a conviction could safely be based on it. If it is capable of belief independently of the confession, then of course it is not necessary to call the confession in aid. But cases may arise where the judge is not prepared to act on the other evidence as it stands even though, if believed, it would be sufficient to sustain a conviction. In such an event the judge may call in aid the confession and use it to lend assurance to the other evidence and thus fortify himself in believing what without the aid of the confession he would not be prepared to accept."

The law laid down in ***Kashmira Singh*** (supra) was approved by a Constitution Bench of this Court in ***Hari Charan Kurmi and Jogia Hajam v. State of Bihar, AIR 1964 SC 1184,*** wherein it was observed:

> "As we have already indicated, this question has been considered on several occasions by judicial decisions and it has been consistently held that a confession cannot be treated as evidence which is substantive evidence against a co-accused person. In dealing with a criminal case where the prosecution relies upon the confession of one accused person against another accused person, the proper approach to adopt is to consider the other evidence against such an accused person, and if the said evidence appears to be satisfactory and the Court is inclined to hold that the said evidence may sustain the charge framed against the said accused person, the Court turns to the confession with a view to assure itself that the conclusion which it is inclined to draw from the other evidence is right. As was observed by Sir Lawrence Jenkins in ***Emperor v. Lalit Mohan Chuckerburty,*** (supra) a confession can only be used to "lend assurance to other evidence against a co-accused". In re ***Periyaswami Moopan*** (supra) Reilly. J., observed that the provision of Section 30 goes not further than this: "where

there is evidence against the co-accused sufficient, if believed, to support his conviction, then the kind of confession described in Section 30 may be thrown into the scale as an additional reason for believing that evidence". In ***Bhuboni Sahu v. King*** (supra) the Privy Council has expressed the same view. Sir John Beaumont who spoke for the Board, observed that "a confession of a co-accused is obviously evidence of a very weak type. It does not indeed come within the definition of "evidence" contained in Section 3 of the Evidence Act. It is not required to be given on oath, nor in the presence of the accused, and it cannot be tested by cross-examination. It is a much weaker type of evidence than the evidence of an approver, which is not subject to any of those infirmities. Section 30, however, provides that the Court may take the confession into consideration and thereby, no doubt, makes it evidence on which the Court may act; but the Section does not say that the confession is to amount to proof. Clearly there must be other evidence. The confession is only one element in the consideration of all the facts proved the case; it can be put into the scale and weighed with the other evidence". It would be noticed that as a result of the provisions contained in Section 30, the confession has no doubt to be regarded as amounting to evidence in a general way, because whatever is considered by the Court is evidence; circumstances which are considered by the Court as well as probabilities do amount to evidence in that generic sense. Thus, though confession may be regarded as evidence in that generic sense because of the provisions of Section 30, the fact remains that it is not evidence as defined by Section 3 of the Act. The result, therefore, is that in dealing with a case against an accused person, the Court cannot start with the confession of a co-accused person; it must begin with other evidence adduced by the prosecution and after it has formed its opinion with regard to the quality and effect of the said evidence, then it is permissible to turn to the confession in order to receive assurance to the conclusion of guilt which the judicial mind is about to reach on the said other evidence. That, briefly stated, is the effect of the provisions contained in Section 30. The same view has been expressed by this Court in ***Kashmira Singh v. State of Madhya Pradesh*** (supra) where the decision of the Privy Council in ***Bhuboni Sahu*** (supra) case has been cited with approval."

The law so laid down has always been followed by this Court except in cases where there is a specific provision in law making such confession of a co-accused admissible against another accused. (For example: ***State v. Nalini, (1999) 5 SCC 253, paras 424 and 704***).

In the present case it is accepted that apart from the aforesaid statements of co-accused there is no material suggesting involvement of the appellant in the crime in question. We are thus left with only one piece of material that is the confessional statements of the co-accused as stated above. On the touchstone of law laid down by this Court such a confessional statement of a co-accused cannot by itself be taken as a substantive piece of evidence against another co-accused and can at best be used or utilized in order to lend assurance to the Court. In the absence of any substantive evidence it would be inappropriate to base the conviction of the appellant purely on the statements of co-accused. The appellant is therefore entitled to be acquitted of the charges leveled against him.

•

142. NEGOTIABLE INSTRUMENTS ACT, 1881 – Sections 118, 138 and 139

Rebuttal of presumption under Section 139 – Respondent issued promissory note which mentioned that it was being issued against a loan – Two cheques also issued towards discharge of liability for investments made in respondent's company – Complainants/appellants case found to be proved that the two cheques were issued towards the discharge of an existing liability and legally enforceable debt – Respondent also admitted his signature in cheques and pronote – Held, presumption under Section 139 would operate – But respondent failed to produce any credible evidence to rebut the statutory presumption – Conviction held proper.

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 - धाराएं 118, 138 एवं 139

धारा 139 के तहत उपधारणा का खंडन - प्रत्यर्थी ने प्राॅमिसरी नोट जारी किया जिसमें यह उल्लेखित कि यह ऋण के लिए जारी किया जा रहा था - प्रत्यर्थी की कंपनी में किए गए निवेश के दायित्व के उन्मोचन हेतु दो चैक भी जारी किए गए - आवेदकगण/अपीलार्थीगण का मामला, कि दो चैक विद्यमान दायित्व तथा वैध रूप से प्रवर्तनीय ऋण के उन्मोचन के लिए जारी किए गए थे, प्रमाणित पाया गया - प्रत्यर्थी ने भी चैकों व प्रोनोट पर अपने हस्ताक्षर स्वीकार किए - अभिनिर्धारित, धारा 139 के तहत उपधारणा प्रवर्तनीय होगी - पर वैधानिक उपधारणा के खंडन में विश्वसनीय साक्ष्य प्रस्तुत करने में प्रत्यर्थी असफल रहा - अतः, दोषसिद्धी उचित ठहराई गई।

T. P. Murugan (Dead) Through LRs v. Bojan and Posa Nandhi Represented through POA Holder, T. P. Murugan

Judgment dated 31.07.2018 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 950 of 2018, reported in AIR 2018 SC 3601

Relevant extracts from the judgment:

Under Section 139 of the N.I. Act, once a cheque has been signed and issued in favour of the holder, there is statutory presumption that it is issued in discharge of a legally enforceable debt or liability (Refer to***K.N. Beena v. Muniyappan and another, AIR 2001 SC 2895*** and ***Rangappa v. Shrimohan, AIR 2010 SC 1891***). This presumption is a rebuttable one, if the issuer of the cheque is able to discharge the burden that it was issued for some other purpose like security for a loan.

In the present case, the respondent has failed to produce any credible evidence to rebut the statutory presumption. This would be evident from the following circumstances:-

(i) The respondent-accused issued a Pronote for the amount covered by the cheques, which clearly states that it was being issued for a loan;

(ii) The defence of the respondent that he had allegedly issued 10 blank cheques in 1995 for repayment of a loan, has been disbelieved both by the Trial Court and Sessions Court, on the ground that the respondent did not ask for return of the cheques for a period of seven years from 1995. This defence was obviously a cover-up, and lacked credibility, and hence was rightly discarded.

(iii) The letter dated 09.11.2002 was addressed by the respondent after he had issued two cheques on 07.08.2002 for ` 37,00,000/- and ` 14,00,000/- knowing fully well that he did not have sufficient funds in his account. The letter dated 09.11.2002 was an after-thought, and was written to evade liability. This defence also lacked credibility, as the appellants had never asked for return of the alleged cheques for seven years.

(iv) The defence of the respondent that the Pronote dated 07.08.2002 signed by him, was allegedly filled by one Mahesh-DW.2, an employee of N.R.R. Finances, was rejected as being false. DW.2 himself admitted in his cross-examination, that he did not file any document to prove that he was employed in N.R.R. Finances. On the contrary, the appellants-complainants produced PW.2 and PW.4, Directors of N.R.R. Finances Investment Pvt. Ltd., and PW.3, a Member of N.R.R. Chit funds, who deposed that DW.2 was never employed in N.R.R. Finances.

The appellants have proved their case by overwhelming evidence to establish that the two cheques were issued towards the discharge of an existing liability and legally enforceable debt. The respondent having admitted that the cheques and Pronote were signed by him, the presumption under S.139 would operate. The respondent failed to rebut the presumption by adducing any cogent or credible evidence. Hence, his defence is rejected.

•

***143. NEGOTIABLE INSTRUMENTS ACT, 1881 – Section 138**

Conviction for offence under Section 138 NI Act – Quantum of sentence – Accused was sentenced to undergo two months simple imprisonment with Rs. 10,000/- fine and further directed to pay compensation of Rs. 6,00,000/- – She deposited the fine and amount of compensation – Considering that she was just 24 years of age and the only earning member in her family, her father was unwell and physically incapable of doing any work, she was serving as a teacher and her monthly income was around Rs. 4,000/- – If she is compelled to undergo the sentence of two months, she would lose her job and her entire family would suffer penury situation – Hence, jail sentence was modified to additional compensation of Rs. 50,000/-.

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 - धारा 138

धारा 138 एनआईएक्ट के अधीन दण्डनीय अपराध में दोषसिद्धि - दण्ड की मात्रा - अभियुक्त को दो माह के साधारण कारावास के साथ रूपये 10,000/- का अर्थदण्ड एवं रूपये 6,00,000/- का प्रतिकर अदा करने का निर्देश दिया गया - उसने अर्थदण्ड और प्रतिकर की राशि जमा कर दी - इन तथ्यों पर विचार करते हुए कि अभियुक्त मात्र 24 वर्ष की थी और अपने परिवार की एकमात्र आय अर्जित करने वाली सदस्य थी, उसके पिता अस्वस्थ थे और शारीरिक रूप से कोई भी काम करने में असमर्थ थे, वह एक शिक्षक के रूप में सेवा कर रही थी और उसकी मासिक आय लगभग रूपये 4000/- थी - यदि उसे दो माह का कारावास भुगतने के लिए भेजा जाता है, तो वह अपनी नौकरी खो देगी और उसके पूरे परिवार को दरिद्रता की स्थिति भुगतनी होगी - अतः, कारावासीय दण्ड को रूपए 50,000/- के अतिरिक्त प्रतिकर में बदल दिया गया।

Ms. Priyanka Nagpal v. State (Govt. of NCT of Delhi) and another

Judgment dated 08.01.2018 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 116 of 2018, reported in 2018 (2) Crimes 162 (SC)

•

144. PROTECTION OF CHILDREN FROM SEXUAL OFFENCES ACT, 2012 – Sections 2 (1)(d) and 27

INTERPRETATION OF STATUTES:

(i) Child – Whether Section 2 (1)(d) of the POCSO Act that defines "child" to mean any person below the age of 18 years, engulfs and embraces, in its connotative expanse, "mental age" of a person irrespective of his or her biological age? Held, No – Purpose of POCSO Act is to treat minors as a class by itself and treat them separately so that no sexual offence is committed against them – This Act categorically makes a distinction between a child and an adult – To include mental competence of a victim or mental retardation as a factor willtantamount to incorporating certain words to definition – This is not within the sphere of Courts.

(ii) Medical examination of child – Held, is mandatory whether POCSO Act is mentioned in FIR or not.

(iii) Interpretation of statutes – Purposive interpretation – POCSO Act is a benevolent beneficial legislation – Provisions must be construed to help in carrying out the beneficient purpose of the Act and should not unduly expand the scope of a provision.

लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 - धाराएं 2 (1)(घ) एवं 27

संविधियों का निर्वचनः

(i) बालक - क्या पाॅक्सो अधिनियम की धारा 2(1)(घ), जो 18 वर्ष से कम आयु के किसी भी व्यक्ति को 'बालक' के रूप में परिभाषित करती है, अपने सहवर्ती विस्तार में, किसी व्यक्ति की 'मानसिक आयु' को भी सम्मिलित एवं अंतर्विष्ट करती है, चाहे ऐसे व्यक्ति की जैविक आयु कुछ भी हो? अभिनिर्धारित, नहीं - पाक्सो अधिनियम का उद्देश्य अवयस्कों को एक वर्ग के रूप में चिन्हित कर उनके साथ अलग व्यवहार करना है ताकि उनके विरूद्ध कोई यौन अपराध न हो सके - यह अधिनियम स्पष्ट रूप से एक बालक और एक वयस्क के मध्य अंतर करता है - पीड़ित की मानसिक योग्यता अथवा मानसिक मंदता को एक कारक के रूप में स्वीकार करने का प्रभाव परिभाषा में कुछ शब्दों को जोड़ना होगा - यह न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र में नहीं है।

(ii) बालक का चिकित्सीय परीक्षण - अभिनिर्धारित, यह अनिवार्य है चाहे पाॅक्सो अधिनियम का उल्लेख एफआईआर में हो अथवा नहीं।

(iii) संविधियों का निर्वचन - उद्देश्यपरक व्याख्या - पाॅक्सो अधिनियम हितकारी विधि है - अधिनियम के उपबंधों का अर्थान्वयन हितकारी उद्देश्य को पूरा करने में सहायता करने के लिए किया जाना चाहिए और प्रावधान के विषय क्षेत्र का अनुचित विस्तार नहीं करना चाहिए।

Ms. Eera Through Dr. Manjula Krippendorf v. State (Govt. of NCT of Delhi) and another

Judgment dated 21.07.2017 passed by the Supreme Court in Criminal Appeal No. 1217 to 1219 of 2017, reported in 2018 (2) Crimes 99 (SC)

Relevant extracts from the judgment:

On that basis, an argument has been structured to treat the mental age of an adult within the ambit and sweep of the term "age" that pertains to age under the POCSO Act. In this regard, I am obligated to say what has been provided in the IPC is on a different base and foundation. Such a provision does treat the child differently and carves out the nature of offence in respect of an insane person or person of unsound mind. There is a prescription by the statute. Learned counsel would impress upon us that I can adopt the said prescription and apply it to dictionary clause of

POCSO Act so that mental age is considered within the definition of the term “age”. I am not inclined to accept the said submission.

In this regard, it is worthy to note that the legislature despite having the intent in its Statement of Objects and Reasons and the long Preamble to the POCSO Act, has thought it wise to define the term “age” which does not only mention a child but adds the words “below the age of 18 years”. Had the word “child” alone been mentioned in the Act, the scope of interpretation by the Courts could have been in a different realm and the Court might have deliberated on a larger canvass. It is not so.

The purpose of POCSO Act is to treat the minors as a class by itself and treat them separately so that no offence is committed against them as regards sexual assault, sexual harassment and sexual abuse. The sanguine purpose is to safeguard the interest and well being of the children at every stage of judicial proceeding. It provides for a child friendly procedure. It categorically makes a distinction between a child and an adult. On a reading of the POCSO Act, it is clear to us that it is gender neutral. In such a situation, to include the perception of mental competence of a victim or mental retardation as a factor will really tantamount to causing violence to the legislation by incorporating a certain words to the definition. By saying “age” would cover “mental age” has the potential to create immense anomalous situations without there being any guidelines or statutory provisions. Needless to say, they are within the sphere of legislature. To elaborate, an addition of the word “mental” by taking recourse to interpretative process does not come within the purposive interpretation as far as the POCSO Act is concerned.

X X X

Section 27 stipulates that medical examination of a child in respect of whom any offence has been committed under the Act is to be conducted in accordance with Section 164A of the CrPC. It is also significant to note that the said examination has to be done notwithstanding an FIR or complaint has not been registered for the offences under the POCSO Act. I shall refer to Section 164A CrPC at a later stage. Section 28 of the POCSO Act deals with Special Courts. Section 31 provides that the CrPC shall apply to the proceedings before a Special Court. Section 32 requires the State Government to appoint a Special Public Prosecutor for every Special Court for conducting the cases under the provisions of the POCSO Act. Chapter VIII deals with the procedure and powers of the Special Courts and recording of evidence. Section 35 provides for a period for recording of evidence of child and disposal of case. Section 36 stipulates that child should not see the accused at the time of testifying. The said provision protects the child and casts an obligation on the Special Court to see that the child, in no way, is exposed to the accused at the time of recording of evidence. Recording of the statement of a child is through video conferencing or by utilizing single visibility mirrors or curtains or any other device is permissible. This provision has its own sanctity. Section 37 deals with trials to be conducted in

camera and Section 38 provides assistance of an interpreter or expert while recording evidence of a child. Section 42A lays the postulate that POCSO Act is not in derogation of the provisions of any other law.

•

***145. PROTECTION OF WOMEN FROM DOMESTIC VIOLENCE ACT, 2005 – Sections 12, 26 and 36**
DISSOLUTION OF MUSLIM MARRIAGE ACT, 1939 – Section 2

(i) Whether Muslim women can claim relief under Protection of Women from Domestic Violence Act? Held, Yes – Section 3 of the Act does not indicate any intention either express or implied to exclude Muslim women – Scheme of the enactment neither restricts the applicability of provisions to a particular category of women nor to women of a particular religion.

(ii) Proceeding initiated by wife for divorce under Dissolution of Muslim Marriage Act, whether dis-entitles wife to claim relief under DV Act ? Held, No – Though, Muslim women are governed by several other enactments, (Protection of Rights on Divorce Act, 1986 and Dissolution of Muslim Marriage Act, 1939, etc.) however, other enactments in no way curtail the protection granted under DV Act – Apart this, Sections 26 and 36 of DV Act entitles the aggrieved person to seek any relief under DV Act in addition to and alongwith any other relief pending in any legal proceedings before a Civil, Family or Criminal Courts.

घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 - धाराएं 12, 26 एवं 36
मुस्लिम विवाह विघटन अधिनियम, 1939 - धारा 2

(i) क्या एक मुस्लिम महिला घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम के अंतर्गत अनुतोष की माँग कर सकती है? अभिनिर्धारित, हाँ - अधिनियम की धारा 3 अभिव्यक्त या विवक्षित रूप से मुस्लिम महिला के अपवर्जन का कोई आशय इंगित नहीं करती है - अधिनियमित की योजना प्रावधानों की प्रयोज्यता को न तो महिलाओं के किसी विशिष्ट वर्ग तक और न ही किसी विशिष्ट धर्म तक सीमित करती है।

(ii) पत्नी द्वारा मुस्लिम विवाह विघटन अधिनियम के अंतर्गत विवाह विच्छेद हेतु प्रारंभ की गई कार्यवाही, क्या पत्नी को घरेलू हिंसा अधिनियम के अंतर्गत अनुतोष की माँग से वंचित करती है? अभिनिर्धारित, नहीं - यद्यपि, मुस्लिम महिलाएँ कई अन्य अधिनियमितियों से शासित होती हैं, (तलाक पर अधिकारों का संरक्षण अधिनियम, 1986 एवं मुस्लिम विवाह विघटन अधिनियम, 1939 इत्यादि) फिर भी अन्य अधिनियम घरेलू हिंसा अधिनियम के अंतर्गत प्रदत्त संरक्षण को किसी भी रूप में कम नहीं करते हैं - इसके अलावा, घरेलू हिंसा अधिनियम की धाराएँ 26

एवं 36 व्यथित व्यक्ति को किसी सिविल, कुटुम्ब या दाण्डिक न्यायालय के समक्ष किसी विधिक कार्यवाही में लंबित किसी अन्य अनुतोष के साथ और अतिरिक्त में घरेलू हिंसा अधिनियम के अंतर्गत अनुतोष की माँग का हकदार बनाती है।

Mr. Ali Abbas Daruwala v. Mrs. Shehnaz Daruwala

Judgment dated 04.05.2018 passed by the Bombay High Court in Writ Petition No. 114 of 2018, reported in 2018 (3) R.C.R. (Criminal) 106

•

146. PUBLIC PREMISES (EVICTION OF UNAUTHORIZED OCCUPANTS) ACT, 1971 – Section 3 (b)

Jurisdiction of Estate Officer – Public premises in question situated at Akola – Notice issued to respondent to attend proceedings at Mumbai in relation to unauthorized occupation of such premises – Held, Estate Officer has to exercise its jurisdiction in relation to the public premises falling in the local limits specified in the notification issued under Section 3 of the Act – Further held, since in this case, the notification, in clear terms specified that the Mill is situated at Akola, the proceedings in relation to such public premises under the Act could only be initiated at Akola that being the area falling in the local limits specified in the notification for exercise of powers by the Estate officer – Notices quashed – Fresh notices ordered to be issued.

सरकारी स्थान (अप्राधिकृत अधिभोगियों की बेदखली) अधिनियम, 1971 - धारा 3(ख)

संपदा अधिकारी का क्षेत्राधिकार - प्रश्नगत सरकारी स्थान अकोला में स्थित - ऐसे स्थान के अप्राधिकृत अधिभोग के संबंध में मुंबई में हो रही कार्यवाहियों में उपस्थित होने हेतु प्रत्यर्थी को सूचना पत्र जारी - अभिनिर्धारित, अधिनियम की धारा 3 के तहत जारी अधिसूचना में निर्दिष्ट स्थानीय सीमाओं में आने वाले सरकारी स्थान के संबंध में संपदा अधिकारी को क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना है - आगे यह भी अभिनिर्धारित कि, चूंकि इस मामले में, अधिसूचना में यह स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट है कि कारखाना अकोला में स्थित है, तब ऐसे सरकारी स्थान के संबंध में अधिनियम के तहत कार्यवाही केवल अकोला में आरंभ की जा सकती थी क्योंकि अधिसूचना में संपदा अधिकारी के अधिकारों के प्रयोग हेतु निर्दिष्ट स्थानीय सीमाओं में यही क्षेत्र आता है - सूचना पत्र अपास्त - नवीन सूचना पत्र जारी करने के निर्देश।

Savatram Rampratap Mills v. Radheyshyam s/o. Laxminarayan Goenka (D) through LRs. and another

Judgment dated 20.08.2018 passed by the Supreme Court in Civil Appeal. No. 751 of 2008, reported in AIR 2018 SC 3916

Relevant extracts from the judgment:

The short question, which arose for consideration before the High Court, was that when the public premises in question is situated at Akola, whether the proceedings in relation to such public premises can be initiated under the Act at Mumbai or it has to be initiated at Akola, that being the place falling in the local limits specified in the notification issued under Section 3 of the Act for exercise of jurisdiction by the Estate Officer.

Section 3(b) of the Act, which is relevant for this case, reads as under:

> "3.Appointment of estate officers- The Central Government may, by notification in the Official Gazette-
>
> (a)…………………………
>
> (b) define the local limits within which, or the categories of public premises in respect of which, the estate officers shall exercise the powers conferred, and perform the duties imposed, on estate officers by or under this Act."

Construing the expression "local limits within which" occurring in Section 3(b) of the Act, the High Court held and, in our opinion, rightly that the Estate Officer has to exercise its jurisdiction in relation to the public premises falling in the local limits specified in the notification.

Since in this case, the notification (Annexure P-1), in clear terms, specified that the Mill is situated at Akola [see Item 5(15)], *a fortiori*, the proceedings in relation to such public premises under the Act could only be initiated at Akola that being the area falling in the local limits specified in the notification for exercise of powers by the Estate Officer. The High Court was, therefore, right in interpreting Section 3(b) of the Act and, in consequence, was legally justified in quashing the notices impugned in the writ petition as being without jurisdiction.

Before parting, we consider it apposite to state that the appellant would be free to issue fresh notices to respondent No.1 under the Act and initiate the proceedings for their eviction from the public premises at Akola.

•

***147. SERVICE LAW:**

(i) Whether right for compassionate appointment is a vested right? Held, No – Compassionate appointment is not vested right but only in the nature of concession in favour of claimant. [*State Bank of India and another v. Raj Kumar, (2010) 11 SCC 661,* relied on]

(ii) Compassionate appointment – Basis of consideration – While considering an application for compassionate appointment, policy prevailing at the time of consideration of the application is applicable. [*Bank of Maharashtra and others v. Manoj Kumar Dehria and another, 2010 (3) MPLJ 213,* relied on]

सेवा विधि:

(i) क्या अनुकम्पा नियुक्ति का अधिकार निहित अधिकार है? अभिनिर्धारित, नहीं - अनुकंपा नियुक्ति निहित अधिकार नहीं है अपितु दावेदर के पक्ष में मात्र रियायत की प्रकृति का है। (***स्टेट बैंक आॅफ इण्डिया तथा अन्य विरूद्ध राजकुमार, (2010) 11 एससीसी 661,*** अवलंबित)

(ii) अनुकंपा नियुक्ति - विचार हेतु आधार - अनुकंपा नियुक्ति हेतु आवेदन पर विचार करते समय, आवेदन पर विचार के समय अभिभावी नीति लागू होती है। (***बैंक आॅफ महाराष्ट्र तथा अन्य विरूद्ध मनोज कुमार डेहरिया तथा अन्य, 2010 (3) एमपीएलजे 213,*** अवलंबित)

State of MP and others v. Laxman Prasad Raikwar

Order dated 04.10.2018 passed by the High Court of Madhya Pradesh in Review Petition No. 868 of 2018, reported in 2018 (4) MPLJ 657 (FB)

•

***148. SPECIFIC RELIEF ACT, 1963 – Section 20**

Specific performance – Of unregistered agreement to sale dated 16th October, 1981 – Attestors and scribes not examined to prove execution and explanation or justification also not given for such failure – Defendants denied signature in agreement but plaintiff/appellant did not discharge the burden by examining any handwriting expert – Co-owner also not joined as party in the agreement – Other two purchasers alongwith whom the suit agreement was executed, also not examined – No proof of payment of earnest money either at the time of execution or otherwise – Factum of possession also not proved – An earlier initial agreement to sale dated 30th June 1977 also executed in favour of other nine persons – But no document or endorsement to show that they had relinquished their possession in favour of the appellant/plaintiff – Held, factum of execution of suit agreement itself being doubted, appellant/plaintiff not entitled to the relief of specific performance – Further held, proof of execution of suit agreement is a must to take the relief of specific performance.

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 - धारा 20

विनिर्दिष्ट अनुपालन - दिनांक 16 अक्टूबर 1981 का अपंजीकृत विक्रय करार - निष्पादन प्रमाणित करने हेतु साक्षी तथा लेखक परीक्षित नहीं कराए गए तथा ऐसी चूक का कोई स्पष्टीकरण अथवा न्यायोचित कारण भी दर्शित नहीं - प्रतिवादीगण ने करार में हस्ताक्षर से इंकार किया पर वादी/अपीलार्थी ने हस्तलिपि विशेषज्ञ का परीक्षण कराकर भार का निर्वहन नहीं किया - सहस्वामी को भी करार में पक्षकार के रूप में नहीं जोड़ा गया - अन्य दो क्रेतागण जिनके साथ वाद करार निष्पादित किया गया, का भी परीक्षण नहीं कराया गया - निष्पादन के समय अथवा अन्यथा अग्रिम धन का

भुगतान भी प्रमाणित नहीं - आधिपत्य का तथ्य भी प्रमाणित नहीं - अन्य नौ व्यक्तियों के पक्ष में एक पूर्व प्राथमिक विक्रय करार दिनांक 30 जून 1977 भी निष्पादित - पर उनके द्वारा अपीलार्थी/वादी के पक्ष में कब्जा छोड़ने के तथ्य को दर्शित करने हेतु कोई दस्तावेज या पृष्ठांकन नहीं - अभिनिर्धारित, वाद करार के निष्पादन का तथ्य ही स्वमेव शंकास्पद होने से अपीलार्थी/वादी विनिर्दिष्ट अनुपालन की सहायता का हकदार नहीं - आगे यह भी अभिनिर्धारित कि, विनिर्दिष्ट अनुपालन की सहायता प्राप्त करने के लिए वाद करार के निष्पादन का सबूत आवश्यक है।

Lakshmi Sreenivasa Co-operative Building Society v. Puvvada Rama (Dead) by LRs and others

Judgment dated 31.07.2018 passed by the Supreme Court in Civil Appeal No. 6620 of 2008, reported in AIR 2018 SC 3580

•

149. SPECIFIC RELIEF ACT, 1963 – Section 38
EVIDENCE ACT, 1872 – Section 101

(i) Relief of perpetual injunction; grant of – The relief can only be granted to a person who is in actual and lawful possession of suit property on the date of suit.

(ii) Burden of proof – Burden of proof lies upon plaintiff to prove that he was in actual and physical possession of the property on the date of suit – The fact of possession of the plaintiff cannot be inferred from circumstances and plaintiff is bound to prove it.

(iii) Lawful possession – A person who is not paying rent for more than fifteen years cannot be said to be in lawful possession.

विर्निदिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 - धारा 38
साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 101

(i) शाश्वत व्यादेश के अनुतोष का अनुदत्त किया जाना - यह अनुतोष केवल ऐसे व्यक्ति को ही अनुदत्त किया जा सकता है जो वाद की तिथि पर वादग्रस्त सम्पत्ति के वास्तविक एवं विधिपूर्ण आधिपत्य में हो।

(ii) सबूत का भार - यह साबित करने का भार वादी पर है कि वह वाद की तिथि पर सम्पत्ति के वास्तविक एवं भौतिक आधिपत्य में था - वादी के आधिपत्य के तथ्य का परिस्थितियों से अनुमान नहीं निकाला जा सकता है और वादी इसे साबित करने के लिए आबद्ध है।

(iii) विधिपूर्ण आधिपत्य - ऐसा व्यक्ति जो विगत पंद्रह वर्षों से भाटक संदाय नहीं कर रहा है, विधिपूर्ण आधिपत्य में नहीं कहा जा सकता है।

Balkrishna Dattatraya Galande v. Balkrishna Rambharose Gupta

Judgment dated 06.02.2019 passed by the Supreme Court in Civil Appeal No. 1509 of 2019, reported in AIR 2019 SC 933

Relevant extracts from the judgment:

In a suit filed under Section 38 of the Specific Relief Act, permanent injunction can be granted only to a person who is in actual possession of the property. The burden of proof lies upon the first respondent-plaintiff to prove that he was in actual and physical possession of the property on the date of suit.

Grant of permanent injunction results in restraining the defendant's legitimate right to use the property as his own property. Under Section 38 of the Specific Relief Act, an injunction restraining the defendant from disturbing possession may not be granted in favour of the plaintiff unless he proves that he was in actual possession of the suit property on the date of filing of the suit.

The possession of the plaintiff cannot be based upon the inferences; drawn from circumstances. The plaintiff has to prove actual possession for grant of permanent injunction.

The First Appellate Court did not keep in view that the first respondent-plaintiff has not shown that he has paid any rent after 1991 and that without paying rent, he cannot have any legitimate right to be in possession of the suit premises. The party seeking injunction based on the averment that he is in possession of the property and seeking assistance of the Court while praying for permanent injunction restraining other party who is alleged to be disturbing the possession of the plaintiff, must show his lawful possession of the property. Having not paid rent for more than fifteen years, it cannot be said that possession of the first respondent-plaintiff can be said to lawful possession entitling him to grant of permanent injunction.

In a suit filed under Section 38 of the Specific Relief Act, possession on the date of suit is a must for grant of permanent injunction. When the first respondent-plaintiff has failed to prove that he was in actual possession of the property on the date of the suit, he is not entitled for the decree for permanent injunction.

•

150. TRANSFER OF PROPERTY ACT, 1882 – Section 43

Transfer by unauthorised person – The transfer was under fraudulent/erroneous representation about being authorised to transfer – Such person subsequently acquires interest in property transferred – In the circumstances, the suit by the heirs of the transferor for cancellation of the sale deed would not be maintainable – Rights of transferee would be protected by operation of Section 43 of the Act.

संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 - धारा 43

अनधिकृत व्यक्ति द्वारा अंतरण - अंतरण करने के लिए अधिकृत होने के संबंध में कपटपूर्ण/मिथ्या व्यपदेशन के अधीन अंतरण - तत्पश्चात अंतरित सम्पत्ति में ऐसा

व्यक्ति हित अर्जित करता है - ऐसी परिस्थितियों में अंतरणकर्ता के उत्तराधिकारियों के द्वारा विक्रय पत्र को निरस्त करने का वाद संधारणीय नहीं होगा - अधिनियम की धारा 43 के प्रवर्तन द्वारा अंतरिती के अधिकार संरक्षित होंगे।

Tanu Ram Bora v. Promod Ch. Das (D) through LRs

Judgment dated 08.02.2019 passed by the Supreme Court in Civil Appeal No.1575 of 2019, reported in AIR 2019 SC 927

Relevant extracts from the judgment:

Section 43 of the T.P. Act provides that where a person fraudulently or erroneously represents that he is authorised to transfer certain immovable property and professes to transfer such property for consideration, such transfer shall, at the option of the transferee, operate on any interest which the transferor may acquire in such property at any time during which the contract of transfer subsists. Thus, if at the time of transfer, the vendor/transferor might have a defective title or have no title and/or no right or interest, however subsequently the transferor acquires the right, title or interest and the contract of transfer subsists, in that case at the option of the transferee, such a transfer is valid. In such a situation, the transferor cannot be permitted to challenge the transfer and/or the transferor has no option to raise the dispute in making the transfer.

The intention and objects behind Section 43 of the T.P. Act seems to be based on the principle of estoppel as well as the equity. The intention and objects seems to be that after procuring the money (sale consideration) and transferring the land, thereafter the transferor is estopped from saying that though he has sold/transferred the property/land on payment of sale consideration, still the transfer is not binding to him. That is why Section 43 of the T.P. Act gives an option to the transferee and not the transferor. The intention of Section 43 of the Act seems to be that nobody can be permitted to take the benefits of his own wrong. In the facts and circumstances of the case, Section 43 of the Act would come into play and protect the rights of the original plaintiff.

An identical question came to be considered by this Court in the case of ***Ram Pyare v. Ram Narain, (1985) 2 SCC 162***. In the aforesaid decision, on considering Section 43 of the Act, it is observed and held by this Court that as the sale deed in favour of the vendee was result of an erroneous representation of the vendor, thereafter the sons of the vendor, cannot claim to be transferees in good faith and therefore their suit for cancellation of the sale deed would not be maintainable. In the aforesaid decision, this Court considered the following observations of this Court in another decision in the case of ***Jumma Masjid v. Kodimaniandra Deviah, AIR 1962 SC 847***:

> "This reasoning is open to the criticism that it ignores the principle underlying Section 43. That Section embodies, as already stated, a rule of estoppel and enacts that a person

who makes a representation shall not be heard to allege the contrary as against a person who acts on that representation. It is immaterial whether the transferor acts *bonafide* or fraudulently in making the representation. It is only material to find out whether in fact the transferee has been misled. It is to be noted that when the decision under consideration was given, the relevant word of Section 43 were, "where a person erroneously represents", and now, as amended by Act 20 of 1929, they are "where a person fraudulently or erroneously represents", and that emphasises that for the purpose of the Section it matters not whether the transferor act fraudulently or innocently in making the representation, and that what is material is that he did make a representation and the transferee has acted on it. Where the transferee knew as a fact that the transferor did not possess the title which he represents he has, then he cannot be said to have acted on it when taking a transfer. Section 43 would then have no application, and the transfer will fail under Section 6(a). But where the transferee does act on the representation, there is no reason why he should not have the benefit of the equitable doctrine embodied in Section 43, however fraudulent the act of the transferor might have been."

At this stage, it is required to be noted that as observed hereinabove in the present case as such the heirs of the original vendor are not contesting the proceedings and they have never disputed the right, title or interest of the original plaintiff, and it is the original defendant no.1 and now his heirs who are contesting the proceedings. Heirs of the original vendor have never initiated any proceedings for cancellation of the registered sale deed dated 06.01.1990, and/or they have never claimed any right, title or interest in the suit land after the registered sale deed dated 06.01.1990. As such, in the case of ***Ram Pyare*** (supra), applying Section 43 of the Act, this Court has specifically observed and held that once there was an erroneous representation by the vendor, thereafter the suit by the heirs of the vendor for cancellation of the sale deed would not be maintainable. Under the circumstances and in the facts and circumstances of the case, the rights of the original plaintiff in the suit land by a sale deed dated 06.01.1990 would be protected by operation of Section 43 of the Act. Therefore, the finding recorded by all the Courts below that the original plaintiff has no right, title or interest in the suit land on the basis of a registered sale deed dated 06.01.1990 cannot be sustained and the same deserves to be quashed and set aside.

•

PART - II A

DIRECTIVES ISSUED BY SUPREME COURT FOR EFFECTIVE IMPLEMENTATION OF WITNESS PROTECTION SCHEME, 2018

Witnesses are important players in the judicial system, who help the judges in arriving at correct factual findings. The witnesses play a vital role in facilitating the Court to arrive at correct findings on disputed questions of facts and to find out where the truth lies. They are, therefore, backbone in decision making process. It is for this reason that Bentham stated more than 150 years ago that **"witnesses are eyes and ears of justice".**

This principle applies with more vigor and strength in criminal cases inasmuch as most of such cases are decided on the basis of testimonies of the witnesses, particularly, eye-witnesses, who may have seen actual occurrence/crime. Because of the lack of Witness Protection Programme in India and the treatment that is meted out to them, there is a tendency of reluctance in coming forward and making statement during the investigation and/or to testify in Courts. These witnesses neither have any legal remedy nor do they are suitably treated. The present legal system takes witnesses completely for granted. They are summoned to Court regardless of their financial and personal conditions. Many times they are made to appear long after the incident of the alleged crime, which significantly hampers their ability to recall necessary details at the time of actual crime. They are not even suitably remunerated for the loss of time and the expenditure towards conveyance etc.

It hardly needs to be emphasised that one of the main reasons for witnesses turning hostile is that they are not accorded appropriate protection by the State. It is a harsh reality, particularly, in those cases where the accused persons/criminals are tried for heinous offences, or where the accused persons are influential persons or in a dominating position that they make attempts to terrorize or intimidate the witnesses because of which these witnesses either avoid coming to Courts or refrain from deposing truthfully. This unfortunate situation prevails because of the reason that the State has not undertaken any protective measure to ensure the safety of these witnesses, commonly known as 'witness protection'.

Hon'ble Supreme Court had on several occations expressed its anguish over the pathetic state of witnesses turning hostile resulting in low rate of convictions in ***Sakshi v. Union of India, (2004) 5 SCC 518, K. Anbazhagan v. Supt. of Police, (2004) 3 SCC 767*** and ***State v. Sanjeev Nanda, (2012) 8 SCC 450.*** Recently, in ***Ramesh Kumar and others v. State of Haryana, (2017) 1 SCC 529,*** the Supreme Court had noted some of the reasons which make witnesses turn hostile and observed that:-

> "It is a matter of common experience that in recent times there has been a sharp decline of ethical values in public life even in developed countries much less developing one, like ours, where the ratio of decline is higher. Even in ordinary cases, witnesses are not inclined to depose or their evidence is not found to be credible Courts for manifold reasons. One of the reasons may be that they do not have courage to depose against an accused because of threats to their life, more so when the offenders are habitual criminals or high-ups in the Government or close to powers, which may be political, economic or other powers including muscle power."

In ***Ramesh Kumar*** (supra), on the analysis of various cases, the following reasons were discerned which make witnesses retracting their statements before the Court and turning hostile:

(i) Threat/Intimidation.
(ii) Inducement by various means.
(iii) Use of muscle and money power by the accused.
(iv) Use of stock witnesses.
(v) Protracted trials.
(vi) Hassles faced by the witnesses during investigation and trial.
(vii) Non-existence of any clear-cut legislation to check hostility of witness.

The Law Commission of India in its 198th Report titled **"Witness Identity Protection And Witness Protection Programmes"** has also suggested to bring a legislation on witness protection. However, no concrete action was taken.

These issues were again raised in a petition filed under Article 32 of the Constitution of India before Supreme Court in ***Mahender Chawla and Others v. Union of India and Others, AIR ONLINE 2018 SC 829,*** by the petitioners who were vulnerable witnesses in various cases instituted against godman Asharam and his son Narayan Sai. Hon'ble Supreme Court considered the seriousness of the matter and has stepped into the shoes of legislature invoking Article 141 and 142 of the Constitution of India and has implemented the ***Witness Protection Scheme, 2018*** prepared by the Central Government.

Considering various directions issued previously, it has been held by Supreme Court that there is a paramount need to have witness protection regime, in a statutory form, which all the stakeholders and all the players in the criminal justice system concede. At the same time no such legislation has been brought about. These considerations influenced the Court to issue directions implementing Witness Protection Scheme which should be considered as law under Article 141 of the Constitution till a suitable law is framed.

The directions are as follows :

(i) This Court has given its imprimatur to the Scheme prepared by respondent No.1 which is approved hereby. It comes into effect forthwith.

(ii) The Union of India as well as States and Union Territories shall enforce the Witness Protection Scheme, 2018 in letter and spirit.

(iii) It shall be the 'law' under Article 141/142 of the Constitution, till the enactment of suitable Parliamentary and/or State Legislations on the subject.

(iv) In line with the aforesaid provisions contained in the Scheme, in all the district Courts in India, vulnerable witness deposition complexes shall be set up by the States and Union Territories. This should be achieved within a period of one year, *i.e.*, by the end of the year 2019. The Central Government should also support this endeavour of the States/Union Territories by helping them financially and otherwise.

WITNESS PROTECTION SCHEME, 2018

PREFACE

Aims and Objective:

The ability of a witness to give testimony in a judicial setting or to cooperate with law enforcement and investigations without fear of intimidation or reprisal is essential in maintaining the rule of law. The objective of this Scheme is to ensure that the investigation, prosecution and trial of criminal offences is not prejudiced because witnesses are intimidated or frightened to give evidence without protection from violent or other criminal recrimination. It aims to promote law enforcement by facilitating the protection of persons who are involved directly or indirectly in providing assistance to criminal law enforcement agencies and overall administration of Justice. Witnesses need to be given the confidence to come forward to assist law enforcement and Judicial Authorities with full assurance of safety. It is aimed to identify series of measures that may be adopted to safeguard witnesses and their family members from intimidation and threats against their lives, reputation and property.

Need and justification for the scheme:

Jeremy Bentham has said that ***"Witnesses are the eyes and ears of justice."*** In cases involving influential people, witnesses turn hostile because of threat to life and property. Witnesses find that there is no legal obligation by the state for extending any security.

Hon'ble Supreme Court also held in ***State of Gujrat v. Anirudh Singh (1997) 6 SCC 514,*** that: "It is the salutary duty of every witness who has the knowledge of the commission of the crime, to assist the State in giving evidence." Malimath Committee on Reforms of Criminal Justice System, 2003 said in its report that

"By giving evidence relating to the commission of an offence, he performs a sacred duty of assisting the Court to discover the truth".In ***Zahira Habibulla H. Shiekh and another v. State of Gujarat, 2004 (4) SCC 158 SC,*** the Apex Court while defining Fair Trial said "If the witnesses get threatened or are forced to give false evidence that also would not result in a fair trial''.

First ever reference to Witness Protection in India came in 14th Report of the Law Commission of India in 1958. Further reference on the subject are found in 154th and 178th report of the Law Commission in India. 198th Report of the Law Commission of India titled as "Witness Identity Protection and Witness Protection Programmes, 2006" is dedicated to the subject. Hon'ble Supreme Court observed in ***Zahira case*** (supra) – "Country can not afford to expose its morally correct citizens to the peril of being harassed by anti-social elements like rapists and murderers". The 4th National Police Commission Report, 1980 noted 'prosecution witnesses are turning hostile because of pressure of accused and there is need of regulation to check manipulation of witnesses."

Legislature has introduced Section 195A IPC in 2006 making CriminalIntimidation of Witnesses a criminal offence punishable with seven years of imprisonment. Likewise, statutes namely Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2015, Whistle Blowers Protection Act, 2011, Protection of Children from Sexual offences Act, 2012 and Scheduled Castes and Scheduled Tribes (Prevention of Atrocities) Act, 1989 also provide for safeguarding witnesses against the threats. However no formal structured programme has been introduced as on date for addressing the issue of witness protection in a holistic manner.

In recent year's, extremism, terrorism and organized crimes have grown and are becoming stronger and more diverse. Hence it is essential that witnesses, have trust in criminal justice system. Witnesses need to have the confidence to come forward to assist law enforcement and prosecuting agencies. They need to be assured that they will receive support and protection from intimidation and the harm that criminal groups might seek to inflict upon them in order to discourage them from co-operating with the law enforcement agencies and deposing before the Court of law. Hence, it is high time that a scheme is put in place for addressing the issues of witness protection uniformly in the country.

Scope of the Scheme:

Witness Protection may be as simple as providing a police escort to the witness up to the Courtroom or using modern communication technology (such as audio video means) for recording of testimony. In other more complex cases, involving organised criminal group, extraordinary measures are required to ensure the witness's safety *viz*. anonymity, offering temporary residence in a safe house, giving a new identity, and relocation of the witness at an undisclosed

place. However, Witness protection needs of a witness may have to be viewed on case to case basis depending upon their vulnerability and threat perception.

1.SHORT TITLE AND COMMENCEMENT:

(a) The Scheme shall be called "Witness Protection Scheme, 2018"

(b) It shall come into force from the date of Notification.

PART – I

2. DEFINITIONS:

(a) **"Code"** means the Code of Criminal Procedure, 1973 (2 of 1974);

(b) **"Concealment of Identity of Witness"** means and includes any condition prohibiting publication or revealing, in any manner, directly or indirectly, of the name, address and other particulars which may lead to the identification of the witness during investigation, trial and post-trial stage;

(c) **"Competent Authority"** means a Standing Committee in each District chaired by District and Sessions Judge with Head of the Police in the District as Member and Head of the Prosecution in the District as its Member Secretary.

(d) **"Family Member"** includes parents/guardian, spouse, live-in partner, siblings, children, grandchildren of the witness;

(e) **"Form"** means "Witness Protection Application Form" appended to this Scheme;

(f) **"In Camera Proceedings"** means proceedings wherein the Competent Authority/Court allows only those persons who are necessary to be present while hearing and deciding the witness protection application or deposing in the court;

(g) **"Live Link"** means and includes a live video link or other such arrangement whereby a witness, while not being physically present in the courtroom for deposing in the matter or interacting with the Competent Authority;

(h) **"Witness Protection Measures"** means measures spelt out in Clause 7, Part-III, Part-IV and Part V of the Scheme.

(i) **"Offence"** means those offences which are punishable with death or life imprisonment or an imprisonment up to seven years and above and also offences punishable punishable under Section 354, 354A, 354B, 354C, 354D and 509 of IPC.

(j) **"Threat Analysis Report"** means a detailed report prepared and submitted by the Head of the Police in the District, investigating the case with regard to the seriousness and credibility of the threat perception to the witness or his family members. It shall contain specific details about the nature of

threats by the witness or his family to their life, reputation or property apart from analyzing the extent, the person or persons making the threat have the intent, motive and resources to implement the threats.

It shall also categorize the threat perception apart from suggesting the specific witness protection measures which deserves to be taken in the matter;

(k) **"Witness"** means any person, who posses information or document about any offence;

(l) **"Witness Protection Application"** means an application moved by the witness in the prescribed form before a Competent Authority for seeking Witness Protection Order. It can be moved by the witness, his family member, his duly engaged counsel or IO/SHO/SDPO/Prison SP concerned and the same shall preferably be got forwarded through the Prosecutor concerned;

(m) **"Witness Protection Fund"** means the fund created for bearing the expenses incurred during the implementation of Witness Protection Order passed by the Competent Authority under this scheme;

(n) **"Witness Protection Order"** means an order passed by the Competent Authority detailing the witness protection measures to be taken.

(o) **"Witness Protection Cell"** means a dedicated Cell of State/UT Police or Central Police Agencies assigned the duty to implement the witness protection order.

PART – II

3.CATEGORIES OF WITNESS AS PER THREAT PERCEPTION:

Category 'A' : Where the threat extends to life of witness or his family members, during investigation/trial or thereafter.

Category 'B' : Where the threat extends to safety, reputation or property of the witness or his family members, during the investigation/trial or thereafter.

Category 'C' : Where the threat is moderate and extends to harassment or intimidation of the witness or his family member's, reputation or property, during the investigation/trial or thereafter.

4.STATE WITNESS PROTECTION FUND:

(a) There shall be a Fund, namely, the Witness Protection Fund from which the expenses incurred during the implementation of Witness Protection Order passed by the Competent Authority and other related expenditure, shall be met.

(b) The Witness Protection Fund shall comprise the following:-

i. Budgetary allocation made in the Annual Budget by the State Government;

ii. Receipt of amount of costs imposed/ordered to be deposited by the courts/tribunals in the Witness Protection Fund;
iii. Donations/contributions from Charitable Institutions/ Organizations and individuals permitted by Central/State Governments.
iv. Funds contributed under Corporate Social Responsibility.

(c) The said Fund shall be operated by the Department/Ministry of Home under State/UT Government.

5. FILING OF APPLICATION BEFORE COMPETENT AUTHORITY:

The application for seeking protection order under this scheme can be filed in the prescribed form before the Competent Authority of the concerned District where the offence is committed, through its Member Secretary along with supporting documents, if any.

6. PROCEDURE FOR PROCESSING THE APPLICATION:

(a) As and when an application is received by the Member Secretary of the Competent Authority, in the prescribed form, it shall forthwith pass an order for calling for the Threat Analysis Report from the ACP/DSP in charge of the concerned Police Sub-Division.

(b) Depending upon the urgency in the matter owing to imminent threat, the Competent Authority can pass orders for interim protection of the witness or his family members during the pendency of the application.

(c) The Threat Analysis Report shall be prepared expeditiously while maintaining full confidentiality and it shall reach the Competent Authority within five working days of receipt of the order.

(d) The Threat Analysis Report shall categorize the threat perception and also include suggestive protection measures for providing adequate protection to the witness or his family.

(e) While processing the application for witness protection, the Competent Authority shall also interact preferably in person and if not possible through electronic means with the witness and/or his family members/employers or any other person deemed fit so as to ascertain the witness protection needs of the witness.

(f) All the hearings on Witness Protection Application shall be held in-camera by the Competent Authority while maintaining full confidentiality.

(g) An application shall be disposed of within five working days of receipt of Threat Analysis Report from the Police authorities.

(h) The Witness Protection Order passed by the Competent Authority shall be implemented by the Witness Protection Cell of the State/UT or the Trial Court, as the case may be. Overall responsibility of implementation of all

witness protection orders passed by the Competent Authority shall lie on the Head of the Police in the State/UT.

However, the Witness Protection Order passed by the Competent Authority for change of identity and/or relocation shall be implemented by the Department of Home of the concerned State/UT.

(i) Upon passing of a Witness Protection Order, the Witness Protection Cell shall file a monthly follow-up report before the Competent Authority.

(j) In case, the Competent Authority finds that there is a need to revise the Witness Protection Order or an application is moved in this regard, and upon completion of trial, a fresh Threat Analysis Report shall be called from the ACP/DSP in charge of the concerned Police Sub- Division.

7. TYPES OF PROTECTION MEASURES:

The witness protection measures ordered shall be proportionate to the threat and shall be for a specific duration not exceeding three months at a time. They may include:

(a) Ensuring that witness and accused do not come face to face during investigation or trial;

(b) Monitoring of mail and telephone calls;

(c) Arrangement with the telephone company to change the witness's telephone number or assign him or her an unlisted telephone number;

(d) Installation of security devices in the witness's home such as security doors, CCTV, alarms, fencing etc;

(e) Concealment of identity of the witness by referring to him/her with the changed name or alphabet;

(f) Emergency contact persons for the witness;

(g) Close protection, regular patrolling around the witness's house;

(h) Temporary change of residence to a relative's house or a nearby town;

(i) Escort to and from the court and provision of Government vehicle or a State funded conveyance for the date of hearing;

(j) Holding of in-camera trials;

(k) Allowing a support person to remain present during recording of statement and deposition;

(l) Usage of specially designed vulnerable witness court rooms which have special arrangements like live video links, one way mirrors and screens apart from separate passages for witnesses and accused, with option to modify the image of face of the witness and to modify the audio feed of the witness' voice, so that he/she is not identifiable;

(m) Ensuring expeditious recording of deposition during trial on day to day basis without adjournments;

(n) Awarding time to time periodical financial aids/grants to the witness from Witness Protection Fund for the purpose of re-location, sustenance or starting a new vocation/profession, if desired;

(o) Any other form of protection measures considered necessary.

8. MONITORING AND REVIEW:

Once the protection order is passed, the Competent Authority would monitor its implementation and can review the same in terms of follow-up reports received in the matter. However, the Competent Authority shall review the Witness Protection Order on a quarterly basis based on the monthly follow-up report submitted by the Witness Protection Cell.

PART – III

9. PROTECTION OF IDENTITY:

During the course of investigation or trial of any offence, an application for seeking identity protection can be filed in the prescribed form before the Competent Authority through its Member Secretary.

Upon receipt of the application, the Member Secretary of the Competent Authority shall call for the Threat Analysis Report. The Competent Authority shall examine the witness or his family members or any other person it deem fit to ascertain whether there is necessity to pass an identity protection order.

During the course of hearing of the application, the identity of the witness shall not be revealed to any other person, which is likely to lead to the witness identification. The Competent Authority can thereafter, dispose of the application as per material available on record.

Once, an order for protection of identity of witness is passed by the Competent Authority, it shall be the responsibility of Witness Protection Cell to ensure that identity of such witness/his or her family members includingname/parentage/occupation/address/digital footprints are fully protected.

As long as identity of any witness is protected under an order of the Competent Authority, the Witness Protection Cell shall provide details of persons who can be contacted by the witness in case of emergency.

PART – IV

10. CHANGE OF IDENTITY:

In appropriate cases, where there is a request from the witness for change of identity and based on the Threat Analysis Report, a decision can be taken for conferring a new identity to the witness by the Competent Authority.

Conferring new identities includes new name/profession/parentage and providing supporting documents acceptable by the Government Agencies. The new identities should not deprive the witness from existing educational/ professional/property rights.

PART – V

11. RELOCATION OF WITNESS:

In appropriate cases, where there is a request from the witness for relocation and based on the Threat Analysis Report, a decision can be taken for relocation of the witness by the Competent Authority. The Competent Authority may pass an order for witness relocation to a safer place within the State/UT or territory of the Indian Union keeping in view the safety, welfare and wellbeing of the witness. The expenses shall be borne by the Witness Protection Fund.

PART – VI

12. WITNESSES TO BE APPRISED OF THE SCHEME:

Every state shall give wide publicity to this Scheme. The IO and the Court shall inform witnesses about the existence of “Witness Protection Scheme” and its salient features.

13. CONFIDENTIALITY AND PRESERVATION OF RECORDS:

All stakeholders including the Police, the Prosecution Department, Court Staff, Lawyers from both sides shall maintain full confidentiality and shall ensure that under no circumstance, any record, document or information in relation to the proceedings under this scheme shall be shared with any person in any manner except with the Trial Court/Appellate Court and that too, on a written order. All the records pertaining to proceedings under this scheme shall be preserved till such time the related trial or appeal thereof is pending before a Court of Law. After one year of disposal of the last Court proceedings, the hard copy of the records can be weeded out by the Competent Authority after preserving the scanned soft copies of the same.

14. RECOVERY OF EXPENSES:

In case the witness has lodged a false complaint, the Home Department of the concerned Government can initiate proceedings for recovery of the expenditure incurred from the Witness Protection Fund.

15. REVIEW:

In case the witness or the police authorities are aggrieved by the decisions of the Competent Authority, a review application may be filed within 15 days of passing of the orders by the Competent Authority.

Witness Protection Application
under
Witness Protection Scheme, 2018

(To be filed in duplicate)

Before,
The Competent Authority,
District ....
Application for:

1. Witness Protection
2. Witness Identity Protection
3. New Identity
4. Witness Relocation

1.	Particulars of the Witness (Fill in Capital):	
	1) Name 2) Age 3) Gender (Male/Female/Other) 4) Father's/Mother's Name 5) Residential Address 6) Name and other details of family membersof the witness who are receiving orperceiving threats 7) Contact details (Mobile/e-mail)	
2.	Particulars of Criminal matter 1) FIR No. 2) Under Section 3) Police Station 4) District 5) D.D. No. (in case FIR not yet registered) 6) Criminal Case No. (in case of private complaint)	

3.	Particulars of the Accused (if available/known):	
	1) Name 2) Address 3) Phone No. 4) Email id	
4.	Name & other particulars of the person giving/suspected of giving threats	
5.	Nature of threat perception. Please give brief details of threat received in the matter with specific date, place, mode and words used	
6.	Type of witness protection measures prayed by/for the witness	

• Applicant/witness can use extra sheets for giving additional information.

....
(Full Name with signature)

Date: ....

Place:..............................

UNDERTAKING

1. I undertake that I shall fully cooperate with the competent authority and the Department of Home of the State and Witness Protection Cell.
2. I certify that the information provided by me in this application is true and correct to my best knowledge and belief.
3. I understand that in case, information given by me in this application is found to be false, competent authority under the scheme reserves the right to recover the expenses incurred on me from out of the Witness Protection Fund.

....
(Full Name with signature)

Date: ....

Place:..............................

•

PART – IV

IMPORTANT CENTRAL/STATE ACTS & AMENDMENTS

AMENDMENTS IN THE HIGH COURT OF MADHYA PRADESH RULES, 2008

उच्च न्यायालय, मध्यप्रदेश, जबलपुर

Jabalpur, the 14/15th February 2019

No.A-561.– In exercise of the powers conferred by Articles 225 of the Constitution of India, Section 54 of the States Reorganisation Act, 1956, clauses 27 and 28 of the letters patent, Section 3 of the Madhya Pradesh Uchcha Nyayalaya (Khandpeeth ko Appeal) Adhiniyam, 2005, the High Court of Madhya Pradesh, hereby, makes the following amendments in the High Court of Madhya Pradesh Rules, 2008, namely :-

AMENDMENTS

In the-said rules,-

1. In Chapter-XII.-

After Rule 6, the following Rule shall be inserted :-

"6A. In a criminal appeal where a sentence of imprisonment for a term 10 years or more has been imposed, an application for suspension of sentence shall be posted before the Principal Registrar/Registrar (Judicial) within three days of filing and if no written objection is filed within next three days by the State then the suspension application shall be listed without delay before the bench;

Provided that an application for temporary suspension of sentence on the ground other than on merits shall be posted directly before the bench within three days of filing."

•

AMENDMENTS IN THE MADHYA PRADESH CIVIL COURT RULES, 1961

No. C-802.-In exercise of the powers conferred by Article 227 of the Constitution of India read with Section 122 of the Code of Civil Procedure, 1908 and Section 23 of the Madhya Pradesh Civil Courts Act, 1958, the High Court of Madhya Pradesh, hereby, makes the following further amendment in the Madhya Pradesh Civil Courts Rules, 1961, namely :-

AMENDMENT

1. In the said rules,-
    1. After rule 594, the following rule shall be added namely :-

       "595. Special provision for person under disability.–The Court may, wherever it deems necessary, direct any person or authority to provide copy of any pleading or document to any person in Braille script".
    2. This amendment shall come into force from the date of its publication in the Gazette.

•

AMENDMENTS IN THE MADHYA PRADESH RULES AND ORDERS (CRIMINAL)

In exercise of the powers conferred by Section 477 of the Code of Criminal Procedure, 1973 (2 of 1974), the High Court of Madhya Pradesh, hereby, makes the following amendment in the Madhya Pradesh Rules and Orders (Criminal), namely :-

AMENDMENT

1. In the said rules,-
    1. After rule 433, the following rule shall be added, namely :-

       "434, Special provision for person under disability.– The Court may, wherever it deems necessary, direct any person or authority to provide copy of any pleading or document to any person in Braille script".
    2. This amendment shall come into force from the date of its publication in the Gazette.

•

AMENDMENTS IN THE DISTRICT COURTS OF MADHYA PRADESH DIGITIZATION OF RECORDS RULES, 2016

The High Court of Madhya Pradesh, hereby, makes the following amendments in the District Courts of Madhya Pradesh Digitization of Records Rules, 2016, namely :-

AMENDMENT

In the said rules.-

1. In rule 2, sub-rule (3) shall be omitted.
2. In rule 5.-
   (1) for sub-rule (5), the following sub-rule shall be substituted, namely :-
   "(5) The scanned and digitally signed images of the physical records, shall be kept in such format and in such medium as may, from time to time, be specified by the Chief Justice of the High Court of Madhya Pradesh.";
   (2) After sub rule (6), the following sub-rule shall be added, namely :-
   "(7) The Chief Justice may, from time to time, issue directions for effective implementation of these Rules and the Madhya Pradesh Civil Courts Rules, 1961 and Madhya Pradesh Rules and Orders (Criminal).''; .
3. The Note shall be omitted.

REGISTRAR GENERAL
High Court of Madhya Pradesh

•

MADHYA PRADESH VIDEO CONFERENCING RULES, 2018

There is an urgent need for a user-friendly video conferencing facility for the purpose of recording of evidence of witnesses unable to attend the Court with intent to avoid delay in judicial proceeding due to non-availability of witnesses and accused. The Information Technology is a good tool for speedy trial and speedy justice.

The video conferencing will be an integrated web technology capable of running seamlessly over Internet/Intranet, Virtual Private Network (VPN) which allows the District Courts of Madhya Pradesh to ensure the presence of witness, accused and other Stakeholders.

Therefore, in exercise of the powers, conferred by Article 227 of the Constitution of India, read with Section 122 of the Code of Civil Procedure, 1908 and Section 23 of the Madhya Pradesh Civil Courts Act, 1958 and Section 477 of the Code of Criminal Procedure, 1973, the High Court of Madhya Pradesh, hereby, makes the following rules to ensure the presence of witness, accused for the purpose of recording of evidence through video conferencing facility, namely.-

RULES

1. Short title, extent and commencement:

(1) These rules may be called the District Courts of Madhya Pradesh Video Conferencing Rules, 2018.

(2) It shall apply to all District Court Establishments in the State of Madhya Pradesh.

(3) It shall come into force from the date of their notification in the Official Gazette.

2. Definitions: (1) Unless the context otherwise requires,-

(a) "Cr.P.C." means "The Code of Criminal Procedure, 1973".

(b) "Electronic records" shall bear the same meaning as assigned under the Information Technology Act, 2000.

(c) "Guidelines" means the guidelines issued by the High Court of Madhya Pradesh and appended to these rules;

(d) "Video conferencing" means and includes to conduct a conference between two or more participants at different sites by using computer networks to transmit audio and video data.

(2) The words and phrases not defined herein shall bear the same meaning as assigned to them in the Madhya Pradesh Civil Court Rules, 1961, Rules and Orders (Criminal) and the Information Technology Act, 2000.

3. Recording of Evidence through Video Conferencing:

(1) Where infrastructure for video conferencing is available, a witness may be examined electronically through video conferencing, as far as may be, in the manner specified in Appendix-I (as may, from time to time, beamended).

(2) The video conferencing be preferably for outstation witnesses.

(3) Where the Court is of the view that owing to the need to actually show documents to the witness, his evidence cannot be effectively recorded through video conferencing, the Court may, in its discretion decline to examine such witness through video conferencing.

(4) Any party, other than Public Prosecutor, proposing to examine any witness through video conferencing, shall file an application for permission.

(5) The witness proposing to be examined through video conferencing shall display his identity proof to the satisfaction of the Court, if required.

(6) All other provisions of any law or rule for time being in force for summoning and examination of a witness and recording of evidence shall apply *mutatis mutandis* to examination through video conferencing.

(7) A copy of the deposition of witness shall be prepared and kept in record.

(8) The expenses and the cost of examination through video conferencing shall be borne by the party proposing such examination, if it is not payable by the Government.

(9) The Commissioner appointed by the Court shall adhere to these Rules while recording the deposition.

4. Judicial Remand:

The Court may, at its discretion, authorize detention of an accused through video conferencing;

Provided that judicial remand at the first instance; or Police remand shall not be granted through video conferencing.

5. Framing of charge:

The Court may, at its discretion, frame charge in a criminal trial through video conferencing.

6. Examination of accused:

The Court may, at its discretion, examine the accused under Section 313 of Cr.P.C. through video conferencing.

7. Proceeding under Section 164 of the Cr.P.C.:

The Court may, at its discretion, examine a witness or an accused under Section 164 of Cr.P.C. through Video Conferencing.

8. Wherever any action is taken by the Court through video conferencing, that fact shall be specifically mentioned in the Order Sheet; and it shall not be necessary to acquire the signature/thumb impression on any document, of any person who is not physically present before the Court.

9. Plea Bargaining

On an application from an accused not previously convicted, the Court may, in its discretion, arrange a meeting of accused with the victim through video conferencing. The Court may provide an opportunity to the pleaders

of respective parties to participate in the meeting where, after the meeting, a satisfactory disposal of the case is probable, the Court shall record this fact and may, in its discretion, dispose of the case on the basis of plea-bargaining, as per law.

APPENDIX – I
VIDEO CONFERENCING GUIDELINES

1. General :-

(1) In these guidelines, reference to the 'Court point' means the Courtroom or other place where the Court is sitting or the place where Commissioner appointed by the Court to record the evidence by video conference is sitting or the place where enquiring officer is sitting and the 'remote point' is the place where person required to be present or appear via video conference is located.

(2) Person required to be present or appear includes a person whose deposition or statement is required to be recorded or in whose presence certain proceedings are to be recorded or an Advocate who intends to cross-examine a witness or any person who is required to makesubmissions before the Court or any other person who is permitted by the Court to appear through video conference.

(3) Wherever possible, proceedings by way of video conference shall be conducted as judicial proceedings and the same courtesies and protocols will be observed. All relevant statutory provisions applicable to judicial proceedings including the provisions of the Information Technology Act, 2000 and the Indian Evidence Act, 1872 shall apply to the recording of evidence by video conference.

(4) Video conferencing facilities can be used in all matters including remands, bail applications and in civil and criminal trials where a person required to be present or appear is located intrastate, interstate, or overseas. However, these guidelines will not apply to the confessions under Section 164 of the Cr.P.C.

(5) The guidelines applicable to a Court will *mutatis mutandis* apply to a Commissioner appointed by the Court to record the evidence and the enquiry officer conducting the enquiry. The reference to 'Court' directing Video Conferencing includes the Enquiry Officer conducting the enquiry, unless the context otherwise requires.

2. Appearance by video conference- .

A Court may, either suo motu or on application of a party or a witness, direct by reasoned order that any person shall appear before it or be examined or give evidence or make a submission to the Court through video conference.

3. Preparatory arrangements for video conference:-

(1) There shall be coordinators both at the Court point as well as at the remote point.

(2) In the High Court, person nominated by the High Court shall be the coordinator at the Court point.

(3) In the District Courts, a person nominated by the High Court or the District Judge, shall be the co-ordinator at the Court point as well as the remote point.

(4) The co-ordinator at the remote point may be any of the following.-

(i) Where the person required to be present or appear is overseas, the Court may specify the co-ordinator out of the following:-

(a) the official of Consulate/Embassy of India,

(b) duly certified Notary Public/Oath Commissioner,

(ii) Where the person required to be present or appear is in another State/U.T, any responsible official as may be nominated by the District Judge concerned.

(iii) Where the person required to be present or appear is in custody, the concerned Jail Superintendent or any other responsible official nominated by him.

(iv) Where the person required to be present or appear is in a hospital, public or private, whether run by the Central Government, the State Government, local bodies or any other person, the Medical Superintendent or In-charge of the said hospital or any other responsible official nominated by him;

(v) Where the person required to be present or appear is a juvenile or a child who is an inmate of an Observation Home/Special Home/Children's Home/ Shelter Home, the Superintendent/ Officer In-charge of that Home or any other responsible official nominated by him.

(vi) Where the person required to be present or appear, is in custody or care of any other government organisation or institution, the Superintendent/Officer In-Charge of such organisation or institution or any other responsible official nominated by him.

(vii) Where the person required to be present or appear is a government servant or working in any government organisation, the Head of the Office or any other responsible official nominated by him.

(viii) Wherever co-ordinator is to be appointed at the remote point under clause 3(4), sub-clause (iii), (iv), (v), (vi) and (vii) and video conferencing facilities are not available in that Office, organisation or institution, the Court concerned will make formal request to District Judge concerned in whose jurisdiction the remote point is located to appoint a co-ordinator and to provide facility of Video conferencing from Court premises of such remote location.

(ix) In case of any other person, as may be ordered by the Court.

(5) The co-ordinators at both the points shall ensure that the minimum requirements as mentioned in the Guideline No.4 are in position at Court point and remote point and shall conduct a test between both the points well in advance, to resolve any technical problem so that the proceedings are conducted without interruption.

(6) It shall be ensured by the co-ordinator at the remote point that:-

(i) The person required to be present or appear is available and ready at the room earmarked for the video conference at least 30 minutes before the scheduled time.

(ii) No other recording device is permitted except the one installed in the video conferencing room.

(iii) Entry into the video conference room is regulated.

(iv) The person to be examined is not helped, prompted or tutored by any other person and is not referring to any document, script or device without the permission of the Court during his examination.

(7) (i) Where the witness is to be examined through video conferencing or it is otherwise expedient to do so, the Court shall send sufficiently in advance the schedule of video conference, and may send in appropriate cases, non-editable digital scanned copies of all or any part of the record of the proceeding on official E-mail account of the concerning authority defined in clause 3(4)

or by email through NIC or any other Indian service provider to the co-ordinator at remote point.

(ii) It shall be ensured by the co-ordinator at the Court point that the co-ordinator at the remote point has certified copies or print out of non-editable scanned copies of all or any part of record of proceeding in a sealed cover or the soft copy thereof sent by the Court sufficiently in advance of the scheduled video conference. But, the same shall be permitted to be utilised by the person to be present or appear, under permission of the Court.

(8) The Court shall order the co-ordinator at the remote point or at the Court point wherever it is more convenient, to provide:-

(i) a translator in case the person to be examined is not conversant with Court language;

(ii) an expert in sign languages in case the person to be examined is speech and/or hearing impaired;

(iii) for reading of documents in case the person to be examined is visually challenged;

(iv) an interpreter or special educator, as the case may be, in case the person to be examined is temporarily or permanently mentally or physically disabled.

4. Minimum requisites for video conference:-

(i) A desktop or laptop computer

(ii) Device ensuring uninterrupted power supply

(iii) Device ensuring uninterrupted internet connectivity

(iv) Video Camera

(v) Microphones and speakers

(vi) Display unit

(vii) Printer

(viii) Scanner including mobile scanner

(ix) Comfortable sitting arrangements ensuring privacy

(x) Adequate lighting

(xi) Insulations as far as possible/proper acoustics

5. Cost of video conferencing:-

The Court may make an order as to expenses, if any, in facilitating proceedings through video conferencing, as it considers appropriate taking into account rules/instructions regarding payment of expenses to complainant and witnesses as may be prevalent from time to time.

6. Procedures generally:-

(1) The identity of the person required to be present or appear shall be confirmed by the Court with the assistance of the co-ordinator at remote point at the time of proceedings through video conferencing and a note to such identification shall be recorded by the concerned Court.

(2) In civil cases, party requesting for presence or appearance of any person through video conferencing shall confirm to the Court his location, his willingness to be present or appear by video conferencing, place and facility of such video conferencing and a note to such confirmation shall be recorded by the concerned Court.

(3) In criminal cases, where the person to be examined is a prosecution witness or Court witness or a person is to make submission for prosecution, the prosecution and where person to be examined is a defence witness or a person is to make submission for defence, the defence counselor the accused will confirm to the Court his location, his willingness to be present or appear by video conferencing, place and facility of such video conferencing.

(4) In case person to be examined or appear is an accused, prosecution/ defence counsel will confirm his location at remote point.

(5) Video conference shall ordinarily take place during the Court hours. However, the Court may pass suitable directions with regard to timings of the video conferencing as the circumstances may dictate.

(6) The record of proceedings including transcription of statement shall be prepared at the Court point under supervision of the Court and accordingly authenticated as per existing rules of procedure.

(7) If digital signatures are available at both points, the soft copy of transcript digitally signed by the presiding officer at the Court point shall be sent by official e-mail account through NIC or any other Indian service provider to the remote point where printout of the same will be taken and signed by the deponent. Scanned copy of the statement digitally signed by co-ordinator at the remote point would be sent by e-mail to the Court point. The hard copy would also be sent subsequently, preferably within three days by the co-ordinator at the remote point to the Court point by recognised courier/post.

(8) Where digital signatures are not available, the printout of the transcript shall be signed by the presiding officer and the representative of the parties, if any, at the Court point and shall be sent in non-editable scanned format by e-mail through NIC or any other Indian service provider to the remote point where printout of the same will be taken and signed by the deponent and counter signed by the co-ordinator at the remote point. Non-editable scanned format of the transcript so signed shall be sent by email to the Court point where printout of the same will be taken and shall be made part of the record. The hard copy would also be sent subsequently, preferably within three days by the co-ordinator at the remote point to the Court point by recognised courier/post.

(9) (i) The audio-visual of the examination of witnesses through video conferencing shall be recorded at the Court point. An encrypted master copy with hash value shall be retained in the Court as a part of the record, if possible.

(ii) The Court may, at the request of a person to be examined, or on its own motion, taking into account the best interests of the person to be examined, direct appropriate measures to protect his privacy keeping in mind his age, gender and physical condition.

(10) Where a party or a lawyer requests that in the course of video-conferencing some privileged communication may have to take place, Court will pass appropriate directions in that regard.

(11) Where a person required to be present or appear is not capable of visiting Court point or remote point due to any sickness or other physical infirmity, or whose presence cannot be secured without undue delay or expense, the Court may authorise any of its subordinate staff as coordinator to facilitate video conferencing from place of his convenience. Such staff or coordinator can be provided with portable video conferencing system including Laptop to facilitate video conferencing from such place.

(12) In case any party or his/her authorized person is desirous of being physically present at the remote point at the time of recording of the evidence, it shall be open for such party to make arrangements at party's own costs including for appearance/representation at the remote point subject to orders to the contrary by the Court.

7. Examination of Medical and other experts:-

(1) The examination of medical and other experts shall as far as practicable, be conducted through, video conferencing.

(2) Whoever wishes to examine a medical or other expert in his favour shall disclose the current place of posting or practice of the concerned expert along with his email address and/or contact number.

(3) The co-ordinator shall fix the time of the video conferencing in consultation with the Medical or other expert and the Court concerned.

(4) Where available, digitally signed soft copies/scanned non-editable copies of the MLC reports, PM reports and FSL reports shall be posted on official website of High Court of Madhya Pradesh or the State Government and such expert can refer those documents at the time of recording of evidence through Video Conferencing.

(5) All documents which are not available over the server including query reports shall be made available to such experts well in advance by the Court through the co-ordinator at remote point. .

(6) If the documents to be proved by the Medical or other expert are in possession of a third person or party, a simultaneous direction would be issued by the Court requiring that person to make available the documents in the Court sufficiently before the time of recording of evidence of the medical or other expert through video conferencing,

(7) In civil cases, the concerned Court will fix a date, before which the examination-in-chief will be furnished by the Medical Expert or other expert concerned, to the Court.

(8) On the given time, the Court will organize two ways or three-ways video conferencing i.e. between Court, Medical Expert or other expert and the Central/District Jail, if the accused is in custody and not in Court to facilitate recording of the statement of the medical or other experts.

(9) Until video conferencing facilities are established in Civil Hospitals, Private Hospitals, Medical Colleges, Forensic Science Laboratories and other related institutions, the medical or other experts may go to the District/Civil Court or any other Government organisation or undertaking where video conferencing facility is available. The District Judge or Head of the organisation or undertaking, as the case may be, would facilitate recording of evidence of medical or other experts by permitting them access to the VC rooms.

8. Putting documents to a person at remote point:-

If in the course of examination of a person at remote point by video-conference, it is necessary to put a document to him, the Court may permit the document to be put in the following manner:-

(a) if the document is at the Court point, by transmitting a copy of it to the remote point electronically including through a document visualizer or video camera and the copy so transmitted being then put to the person,

(b) if the document is at the remote point, by putting it to the person and transmitting a copy of it to the Court point electronically including through a document visualizer or video camera. The hard copy would also be sent subsequently to the Court point by courier/mail.

9. Persons unconnected with the cases:-

(1) Third parties may be allowed to be present during video conferencing subject to orders to the contrary, if any, by the Court.

(2) Where, for any reason, a person unconnected with the case is present at the remote point, then that person shall be identified by the co-ordinator at the remote point at the start of the proceedings and the purpose for his being present explained to the Court.

10. Conduct of proceedings:-

(1) Establishment and disconnection of links between the Court point and the remote point would be regulated by orders of the Court.

(2) The Court shall satisfy itself that the person required to be present or appear at the remote point can be seen and heard clearly and similarly that the person to be examined at the remote point can clearly see and hear the Court.

11. Cameras:-

(1) The Court shall, at all times have the ability to control the camera view at remote point so that there is an unobstructed view of all the persons present in the room.

(2) The Court shall have a clear image of each deponent to the extent possible so that the demeanour of such person may be observed.

12. Residuary Clause :-

Such matters with respect to which no express provision has been made in these guidelines shall be decided by the Court consistent with furthering the interests of justice.

ए. के. शुक्ला,
रजिस्ट्रार जनरल

•

THE MADHYA PRADESH EXCISE (AMENDMENT) ACT, 2014

(NO. 14 OF 2014)

(Received the assent of the Governor on the 12th August, 2014; assent first published in the “Madhya Pradesh Gazette (Extra-ordinary)”, dated the22nd August, 2014.)

An Act further to amend the Madhya Pradesh Excise Act, 1915.

Be it enacted by the Madhya Pradesh Legislature in the sixty-fifth year of the Republic of India as follows:-

1. **Short title and commencement.–** (1) This act may be called the Madhya Pradesh Excise (Amendment) Act, 2014.

   (2) It shall come into force on the date of its publication in the official gazette.

2. **Amendment of Section 48. –** In Section 48 of the Madhya Pradesh Excise Act, 1915 (hereinafter referred to as the Principal Act), in sub-section (1), in clause (a), for the word and figure “Section 37”, the words and figures “Section 34 for contravention of any condition of a licence, permit or pass granted under this Act, Section 37” shall be substituted.

3. **Amendment of Section 54. –** In Section 54 of the Principal Act, for the word “after recording the grounds of his belief’ the words “after recording the grounds of his belief and subject to such condition as may be prescribed” shall be substituted.

4. **Amendment of Section 61. –** In Section 61 of the Principal Act, in sub-section (1), in clause (a), for the word and figure “Section 37”, the words and figures “Section 34 for the contravention of any condition of a licence, permit or pass granted under this Act, Section 37” shall be substituted.

•

miscarriage of justice which may arise from acquittal of the guilty is no less than from the conviction of an innocent",'

Dr Arjit Pasayat, J. in State of U.P. v. Satish, (2005) 3 SCC 114, para 24

मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय, जबलपुर

मध्य प्रदेश राज्य न्यायिक अकादमी

मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय, जबलपुर - 482 007